मध्यस्थ दर्शन - सहअस्तित्ववाद

# संवाद

( भाग-1 )

मान्यता: ज्ञान की व्यापकता एवं प्रकृति का अनादित्व
सिद्धांत : श्रम-गति-परिणाम


ए. नागराज
श्री भजनाश्रम, अमरकंटक,
जिला अनूपपुर, म.प्र. ( भारत ) 484886


---

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन

---

**प्रकाशक :**
जीवन विद्या प्रकाशन
दिव्यपथ संस्थान
अमरकंटक, जिला अनूपपुर (म.प्र.) भारत - 484886

**प्रणेता एवं लेखक :**
ए. नागराज
सर्वाधिकार प्रणेता एवं लेखक के पास सुरक्षित

**पूर्व संस्करण :** प्रथम अक्टूबर 2011
**मुद्रण :** जनवरी, 2018

**सहयोग राशि :** 200/-

**जानकारी :**
Website : www.madhyasth-darshan.info
Emal : info@madhyasth-darshan.info

**सदुपयोग नीति :**
यह प्रकाशन, सर्वशुभ के अर्थ में है और इसका कोई व्यापारिक उद्देश्य नहीं है। इसका उपयोग एवं नकल, निजी अध्ययन के लिए उपलब्ध है। इसके अलावा किसी भी अर्थ में प्रयोग (नकल, मुद्रण, आदि) करने के लिए 'दिव्य पथ संस्थान', अमरकंटक, जिला अनूपपुर (म.प्र.), भारत - 484886 से पूर्व में लिखित अनुमति लेना अनिवार्य है। यह अपेक्षित है कि इन अवधारणाओं को दूसरी जगह प्रयोग करते समय इस ग्रन्थ का पूर्ण उद्धरण (संदर्भ) दिया जायेगा।

**Good Use Policy :**
This publication is for 'Universal Good' and has no commercial intent. It may be used and copied for personal study purposes. Any use (copy, reproduction, etc.) for any other purpose other than stated has to be compulsorily authorized beforehand in writing by 'Divya Path Sansthan'. Amarkantak, Anuppur, (M.P.) 484886 (India). It is expected that you provide the full reference of this book when using these concepts elsewhere.

# विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक-रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व जानने-मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सहअस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययन गम्य हो चुकी है।

   अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए. नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान ''ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'' जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

   | | |
   |---|---|
   | उपासना | :- देवी देवाताओं के संदर्भ में। |
   | कर्म | :- स्वर्ग मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में) |
   | मनु धर्म शास्त्र में | :- चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है। |
   | कर्म काण्डों में | :- गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्मकाण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है। |

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है? तत्कालीन वेदज्ञों एवं

विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य सम्पन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव विधि से पूर्ण, समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वाङ्गमय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केन्द्रित चिंतन ज्ञान तथा परंपरा के अनुसार ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार – ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोधगम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रूप में स्पष्ट हुआ।

6. अस्थिरता, अनिश्चियता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केन्द्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात भी कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित सम्पूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।

7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुयें व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही ''मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र सूत्र है।

## सत्यापन

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर-गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि-धुन के रूप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना, आराधना, अर्चना, स्तवन कार्य सम्पन्न होता रहा।

9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवाभावी तथा श्रमशील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्न चिह्न रहे।

10. प्रथम प्रश्न उभरा कि –

ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे?

दूसरा प्रश्न –

ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे?

तीसरा प्रश्न –

शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण?

आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्‌गाता प्रमाण?

शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण?

समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

चौथा प्रश्न –

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

वोट-नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जन प्रतिनिधि कैसा?

संविधान में धर्म निरपेक्षता – एक वाक्य एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

संविधान में समानता – एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसकी प्रक्रिया होना।

जनतंत्र – शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट-नोट का गठबंधन होना।

ये कैसा जनतंत्र है?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्माननीय ऋषि-महर्षियों के सुझाव से –

(1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एकमात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार

किया।

(2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।

(3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।

सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।

(4) सन् 1970 में समाधि सम्पन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा, विचार, इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अट्ठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, धारणा, ध्यान क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम सम्पन्न होने की क्रिया में भी 12 से 18 घण्टे लगते रहे। फलस्वरूप संपूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व सहज रूप में रहना, होना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वाङ्गमय ''मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र के रूप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़-चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रूप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में 'जीवन' होना, रहना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई 'जीवन' रूप में होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही सम्पूर्ण भौतिक रासायनिक प्राणावस्था रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रूपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना सम्पन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रूप में मानव परंपरा होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था

और

- प्राण पद
- भ्रांति पद
- देव पद
- दिव्य पद
- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति

तथा जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैंने सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो
धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

**– ए. नागराज**

# मध्यस्थ दर्शन के मूल तत्व

## 1. उद्घोष

- जीने दो और जियो।

## 2. मंगल कामना

- भूमिः स्वर्गताम् यातु,
  मानवो यातु देवताम्,
  धर्मो सफलताम् यातु,
  नित्यं यातु शुभोदयम्।।

- भूमि स्वर्ग हो,
  मानव देवता हों,
  धर्म सफल हो,
  नित्य मंगल हो।।

## 3. अनुभव ज्ञान

- सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति, सत्ता (व्यापक) में सम्पृक्त जड़-चैतन्य इकाईयाँ अनन्त।
- व्यापक (पारगामी व पारदर्शी) सत्ता में सम्पृक्त सभी इकाईयाँ रूप, गुण, स्वभाव व धर्म सम्पन्न, त्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है।

## 4. सिद्धान्त

- श्रम-गति-परिणाम।

## 5. उपदेश

- जाने हुए को मान लो।

  माने हुए को जान लो।

## 6. स्थिति

- स्थितिपूर्ण सत्ता में सम्पृक्त स्थितिशील प्रकृति।
- सहअस्तित्व नित्य वर्तमान।

## 7. प्रमाण

- अनुभव व्यवहार प्रयोग
- अनुभव ही प्रमाण परम

  प्रमाण ही समझ ज्ञान

  समझ ही प्रत्यक्ष,

  प्रत्यक्ष ही समाधान, कार्य-व्यवहार,

  कार्य-व्यवहार ही प्रमाण,

  प्रमाण ही जागृत परंपरा,

  जागृत परंपरा ही सहअस्तित्व।

## 8. यथार्थ

- ब्रह्म सत्य, जगत शाश्वत।
- ब्रह्म (सत्ता) व्यापक, जीवन पुंज अनेक।
- जीवन पुंज में अविभाज्य आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन।

  जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का वैभव।
- ईश्वर व्यापक, देवता अनेक।
- मानव जाति एक, कर्म अनेक।
- भूमि (अखण्ड राष्ट्र) एक, राज्य अनेक।
- मानव धर्म एक, समाधान अनेक।
- जीवन नित्य, जन्म-मृत्यु एक घटना।

## 9. वास्तविकता

- सहअस्तित्व में विकास क्रम, विकास।
- जागृति क्रम, जागृति।
- जागृति पूर्वक अभिव्यक्तियाँ समझदार मानव परंपरा।

## 10. ज्ञान

- सहअस्तित्व में जीवन ज्ञान।
- सहअस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान।
- मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान।
- अनुभव ही ज्ञान।

## 11. अनुसंधान

- गठन पूर्णता।
- क्रिया पूर्णता।
- आचरण पूर्णता।

## 12. आधार

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति (सहअस्तित्व)

## 13. प्रतिपादन

- भौतिक रासायनिक प्रकृति ही विकास क्रम में है। परमाणु ही विकसित रूप में चैतन्य इकाई है।
- चैतन्य इकाई अर्थात् जीवन ही जागृति पूर्वक मानव परंपरा में अखण्ड सामाजिकता सहज प्रमाण।
- सतर्कतापूर्ण मानवीयता, देव मानवीयता एवं सामाजिकता।
- सजगतापूर्ण दिव्य मानवीयता।
- गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता एवं आचरण पूर्णता।

## 14. सत्यता

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति ही सृष्टि।
- प्रकृति ही नियति।
- नियति ही व्यवस्था।
- व्यवस्था ही विकास एवं जागृति।
- विकास एवं जागृति ही सृष्टि है।
- नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही ऐश्वर्य (सहअस्तित्व), ऐश्वर्यानुभूति ही आनन्द, आनन्द ही जीवन, जीवन में नियम है।
- भ्रमित मानव ही कर्म करते समय स्वतंत्र एवम् फल भोगते समय परतन्त्र है।
- जागृत मानव कर्म करते समय तथा फल भोगते समय स्वतंत्र है।

## 15. मानव शरण

- अखण्ड सामाजिकता सार्वभौम व्यवस्था (सहअस्तित्व) सहज प्रमाण परंपरा।

## 16. मानवीय व्यवस्था

- मानवीयता। मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी।

## 17. व्यक्ति में पूर्णता

- क्रिया पूर्णता।
- आचरण पूर्णता।

## 18. समाज में पूर्णता

- सर्वतोमुखी समाधान।
- समृद्धि।

- अभय।
- सहअस्तित्व सहज प्रमाण परंपरा।

**19. राष्ट्र में पूर्णता**

- कुशलता।
- निपुणता।
- पाण्डित्य।

**20. अन्तर्राष्ट्र में पूर्णता ( अखण्ड राष्ट्र )**

- मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि, व्यवस्था में एकात्मता (सार्वभौमता)।

**21. मानव धर्म**

- सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्द।

**22. धर्म नीति का आधार**

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ के सदुपयोग हेतु व्यवस्था।

**23. राज्य नीति का आधार**

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ की सुरक्षा हेतु व्यवस्था।

**24. अनुगमन और चिन्तन**

- स्थूल से सूक्ष्म।
- सूक्ष्म से कारण।
- कारण से महाकारण।

**25. जागृति का प्रमाण**

- अमानवीयता से मानवीयता।
- मानवीयता से देव मानवीयता।
- देव मानवीयता से दिव्य मानवीयता।

## 26. मांगल्य

- जीवन मंगल।
- उदय मंगल।
- समाधान मंगल।
- अनुभव मंगल।
- जागृति मंगल।

## 27. सर्व मांगल्य

- मानव के चारों आयाम (कार्य, व्यवहार, विचार व अनुभूति), पाँचों स्थिति (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र) तथा दश सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में निर्विषमता (सामरस्यता) एवं एकसूत्रता।

## 28. महा मांगल्य

- सत्यानुभूति जागृति (भ्रम मुक्ति)।

## 29. उपलब्धि

- सहअस्तित्व में स्थापित मूल्यों में अनुभूति।
- समाधान, समृद्धि अभय, सहअस्तित्व सहज प्रमाण - यही सर्वशुभ।
- भ्रम मुक्ति और नित्य जागरण।

## 30. शिक्षा में पूर्णता

- चेतना विकास मूल्य शिक्षा।
- कारीगरी (तकनीकी) शिक्षा।

## 31. परंपरा में सम्पूर्णता

- मानवीय शिक्षा संस्कार।
- मानवीय संविधान।
- मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था।

# प्राक्कथन

संवाद करीब 200 पेज में लिखा हुआ, उसको पढ़कर देखा। यह मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के अनुरूप प्रस्तुति है। इसमें प्रश्न भी है और उत्तर भी। इसे संभालकर लिपिबद्ध किया है। इसको यथावत् छपाकर लोगों के हाथ में पहुँचाने का प्रयास स्वागतीय है। इसकी उपयोगिता जिज्ञासुओं के लिये प्रेरक होना सहज है। यह संवाद राकेश गुप्ता, बंगलोर और श्रीराम नरसिंहन, पुणे के साथ सम्पन्न हुआ।

सर्वशुभ हो! जय हो! मंगल हो!

**ए. नागराज**
प्रणेता-लेखक : मध्यस्थदर्शन
(सहअस्तित्ववाद)

# समाधान के बिना समृद्धि की कल्पना भी नहीं किया जा सकता

मध्यस्थ दर्शन ने मानव लक्ष्य को समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व के रूप में पहचाना है। हर मानव का यही लक्ष्य है। समाधान के लिए अध्ययन विधि प्रस्तावित की है।

समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व क्रम से मानव द्वारा प्रमाणित होते हैं। सहअस्तित्व पहले हो जाए, समाधान बाद में हो जाए यह हो नहीं सकता। समृद्धि पहले हो जाए समाधान बाद में हो जाए यह भी हो नहीं सकता।

व्यक्ति के स्तर पर समाधान प्रमाणित होता है। समाधान प्रमाणित होने का मतलब है हर क्यों और कैसे का का उत्तर स्वयं में से निर्गमित होने लगना। अनुभव हो जाना = समझदारी = समाधान सम्पन्नता। समझदारी के लिए ध्यान देना होता है। अनुभव के बाद ध्यान बना ही रहता है।

परिवार के स्तर पर समृद्धि प्रमाणित होती है। आवश्यकताओं का ध्रुवीकरण परिवार में ही सम्भव है। निश्चित आवश्यकता के लिए कितना और कैसे उत्पादन करना है, यह निश्चित किया जा सकता है। अनिश्चित आवश्यकताओं के लिए उत्पादन कितना करना है, यह निश्चित नहीं हो पाता। समाधान के बिना समृद्धि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। श्रम से समृद्धि होती है।

सम्पूर्ण मानव जाति के स्तर पर अभय प्रमाणित होता है। जब तक सम्पूर्ण धरती पर सभी मानवीयता पूर्वक नहीं जीते तब तक अभय प्रमाणित नहीं होता। मध्यस्थ दर्शन के लोकव्यापीकरण का सूत्र है समाधान और समृद्धि। समाधान, समृद्धि प्रमाण के बिना इस प्रस्ताव का लोकव्यापीकरण नहीं हो सकता। लोकव्यापीकरण शिक्षा विधि से होगा।

चारों अवस्थाओं के साथ सहअस्तित्व प्रमाणित होता है। चारों अवस्थाओं की निरंतरता ''रहने'' के रूप में प्रमाणित होना ही सहअस्तित्व प्रमाण है। इसके पहले मानव को समाधान, समृद्धि और अभय को प्रमाणित करना होगा।

(जून 2008, बंगलोर)

# समाधान की गति समृद्धि के साथ है

समझदारी के बाद ही हमारा न्याय पूर्वक, समाधान पूर्वक जीना बनता है। समाधान की गति समृद्धि के साथ है।

मध्यस्थ दर्शन के प्रस्तुत होने के पहले ऐसा सोचा जाता था समझदार लोगों की जरूरतों के लिए सामग्री समाज उपलब्ध कराएगा। इस तरीके से साधना करने वाले साधना ही करते रह गए। साधना के फल को समाज और परम्परा तक पहुँचा नहीं पाये। जिस समाज ने साधना करने वालों को संरक्षण दिया उस समाज की गति के लिए उनसे कोई सूत्र नहीं निकला। इस तरीके से व्यक्तिवाद और समुदायवाद ही निकला। जिससे धरती ही बीमार हो गयी है।

समृद्धि के साथ ही हम समाधान को गतिशील बनाते हैं, प्रमाणित करते हैं। समझने के बाद कोई चोरी अपराध नहीं कर सकता। समझने के बाद समृद्धि भावी हो जाती है। समाधान, समृद्धि के बिना कोई व्यवस्था में जी नहीं सकता। व्यवस्था का पूरा ढाँचा-खाँचा समाधान, समृद्धि पर आधारित है। समाधान, समृद्धि प्रमाणित होने के बाद आदमी के पास उपकार करने के अलावा कुछ बचता भी नहीं है। जनता के पैसे से या दान-चंदा आदि से उपकार तो नहीं हो सकता। यदि जनता के पैसे से दाना खाते हैं तो हवाबाजी के अलावा हम कुछ कर भी नहीं सकते। हवाबाजी का मतलब दूसरों का पैसा मारना और भाषण बाजी करना। समाधान  अधिकार में पर मुख अपेक्षा स्वीकृत नहीं होता। समस्या से ग्रसित व्यक्ति ही पर मुख अपेक्षा करता है।

समझदारी से संपन्न होने के बाद यह आता है हम समाधान, समृद्धि पूर्वक दायित्वों को भी पूरा कर सकते हैं। जीव चेतना में चले संसार को झेलने के बाद ही हम समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने के लिए स्वयं तैयार हो पाते हैं। इसको घायल बना कर, काट कर कोई रास्ता नहीं है। हम जब पूरा समझ जाते हैं, हमको अपने में समृद्धि पूर्वक जीने की तमीज आ जाती है। उसमें परिवार जनों की भी संतुष्टि हो जाती है, इसलिए हम अच्छे कार्यों में लग सकते हैं। यह बात हर व्यक्ति के पकड़ में आ सकता है। मेरे पकड़ में यह आ सकता है, तो बाकी लोगों के पकड़ में कैसे नहीं आयेगा? साधना काल में मैं विरक्ति विधि से ही रहा। 55 वर्ष की आयु में मैं समाधि संयम से उठने के बाद समृद्धि के कार्यक्रम बनाने में लगा। आज की स्थिति में उससे सभी अच्छे ही हैं।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## पैसे के आबंटन से किसी को संतुष्टि नहीं है

**पैसे के चक्कर से किसी एक व्यक्ति को भी संतुष्टि नहीं मिली।** पैसे का संग्रह करने जाते हैं तो और संग्रह करने की जगह बना ही रहता है। पैसे को बाँटने (दान आदि करने) जाते हैं तो और बाँटने की जगह रखा ही रहता है। पैसे को गाड़ने जाते हैं तो और गाड़ने की जगह बना ही रहता है। इससे संतुष्टि की जगह तो कभी किसी को मिलती नहीं है। इसके तृप्ति बिन्दु की कोई जगह ही नहीं है। इसके तृप्ति बिन्दु की कोई दिशा भी नहीं है। स्वयं हम पैसे से संतुष्ट हो नहीं सकते। पैसे को बाँटने से भी संतुष्ट नहीं हो सकते। ज्यादा पैसे इकट्ठा कर लिए उससे कोई समझदार हो गया हो, यह प्रमाणित नहीं हुआ। कुछ भी पैसे नहीं रख कर, घर बार बेच कर कोई समझदार हो गया हो, यह भी प्रमाणित नहीं हुआ। ज्यादा कम लगा ही रहता है। न ज्यादा में तृप्ति है, न कम में तृप्ति है, न ही बीच की किसी स्थिति में। पैसे के चक्कर में लक्ष्य सुविधा संग्रह ही बनता है। सुविधा संग्रह का कोई तृप्ति बिन्दु नहीं है। कितना भी कर लो और चाहिए, यह बना ही रहता है। पैसे के चक्कर में मानव की संतुष्टि का कोई निश्चित स्वरुप निकल ही नहीं सकता इस बात पर हम एक निश्चय पर पहुँच सकते हैं।

मध्यस्थ दर्शन से मानव के संतुष्टि का स्वरुप निकला समाधान, समृद्धि। समाधान, समृद्धि एक निश्चित लक्ष्य है। समाधान, समृद्धि सर्व मानव के लिए तृप्ति बिन्दु है। समाधान, समृद्धि सब को मिल सकता है। समाधान से पहले समृद्धि होता नहीं। समाधान के लिए अध्ययन है। समाधान का अर्थ है आध्यात्मिक, वैचारिक, व्यवहारिक और भौतिक सभी मुद्दों पर पूरी तरह सुलझा हुआ होना। समाधान आधा-अधूरा नहीं होता। समाधान संपन्न परिवार अपनी आवश्यकताओं का निश्चयन करता है। आवश्यकताओं का निर्धारण समाधान संपन्न परिवार में ही सम्भव है। निश्चित आवश्यकताओं के लिए उत्पादन कार्य को निश्चित किया जा सकता है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन करके समृद्धि का अनुभव किया जा सकता है।

दो समाधान, समृद्धि संपन्न परिवारों में किसी भी मुद्दे पर खींचतान हो ही नहीं सकती। और पैसे के चक्कर में खींचतान के अलावा कुछ हो नहीं सकता।

(जून 2008, बंगलोर)

## शब्द का अर्थ

शब्द का अर्थ होता है।

अर्थ के मूल में अस्तित्व में वस्तु होता है।

वस्तु को इंगित करना ही शब्द का काम है।

उसको पहचान लेना मानव का काम है।

पहचान लिया = समझ में आया।

नहीं पहचाना = समझ में नहीं आया।

पहचान पूरा हो जाना = अध्ययन पूरा होना।

अध्ययन पूरा होना = सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व में बोध संपन्न होना।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## व्यवस्था का आधार परिवार है

मध्यस्थ दर्शन से मानवीय व्यवस्था का आधार परिवार है, यही निकलता है।

इससे पहले व्यवस्था का आधार ''राजा'' बताया था। जो असफल हुआ। राजाओं के तौर-तरीकों को लोग पहचान गए और उनको नकार दिए।

उसके बाद व्यवस्था का आधार ''सभा'' बताया। वह भी असफल हो चुका है।

व्यवस्था का आधार परिवार ही है। समाधान, समृद्धि का प्रमाण व्यवस्था का पहला बीज रूप परिवार ही है। इस जगह में मार्क्स नहीं पहुँचा, इस जगह में मनु (मनु धर्म शास्त्र) नहीं पहुँचा, इस जगह में ऐडम स्मिथ नहीं पहुँचा। इस जगह में आज तक कोई नहीं पहुँचा।

परिवार देश की व्यवस्था का आधार हो सकता है, यह अभी तक किसी देश में नहीं है।

मुझे इसको पहचानने का सौभाग्य मिला उसको मैं उत्सव मानूँ कि नहीं?

व्यवस्था का मूल आधार परिवार है, न कि सभा या व्यक्ति। अब मैं यह सोचता हूँ (1) एक ग्राम में स्वराज्य व्यवस्था प्रमाणित करना, (2) एक कक्षा एक से बारह तक एक विद्यालय प्रमाणित करना (इस समझ पर आधारित)। ये दो रिक्त स्थलियाँ हैं अभी। इन दो जगह प्रमाणित होने के बाद यह दावानल है। इस बात की आवश्यकता है यह ध्वनि के रूप में पहुँच रहा है। आंशिक रूप में यह उत्साह के रूप में भी दिखता है। भागीदारी की बात उसकी आंशिकता में दिखता है।

इसकी आवश्यकता तो आ गयी है। इस को आप कैसे करेंगे यह आप के ऊपर निर्भर है। तकनीकी तो आप के पास है!

(अगस्त 2006 अमरकंटक)

## प्रस्तावना, समीक्षा, निर्णय

अनुभव मूलक विधि से बातचीत करने के तीन ही भाग हैं।

(1) प्रस्तावना

(2) समीक्षा

(3) निर्णय

प्रस्तावना का मतलब है अपनी बात को रखना। प्रस्तावना के रूप में मध्यस्थ दर्शन की किसी भी बात को रखा जाए। उसको जाँचने का अधिकार सामने वाले व्यक्ति के पास है। उसी तरह हर सुनी हुई बात को प्रस्तावना के रूप में ही लिया जाए, उसको दूसरे की अवहेलना या विरोध करने के लिए नहीं लिया जाए।

शुभ जो घटित नहीं हुआ अपेक्षा में ही रह गया, उसकी समीक्षा होती है। जो प्रमाणित हो गया उसका ही मूल्यांकन होता है। जिसकी समीक्षा कर रहे हैं यदि उससे भविष्य में अपेक्षा नहीं रखते, तो वह विरोध ही हो जाता है।

तीसरा बातचीत का भाग है निर्णय। निर्णय होता है कार्ययोजना के अर्थ में। इसका मतलब हम किस तरह अपनी समझदारी को प्रमाणित करेंगे, इस बात का निर्णय होता है।

## ज्ञानावस्था का वैभव

सत्ता व्यापक होने के आधार पर नियति विधि से सहअस्तित्व में उद्देश्य बनी चारों अवस्थाओं का प्रमाणित होना। चौथी अवस्था (ज्ञानावस्था) में सहअस्तित्व सहज प्रमाण में ही परम्परा बनता है। यही ज्ञान अवस्था सहज वैभव है। यही जागृति का अर्थ है।

## ज्ञान की बात

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन्द्रियों का जो ज्ञान है वह किसको होता है? शरीर को होता है, या शरीर के अलावा और किसी को होता है? विगत में ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय ब्रह्म

को ही बताया। साथ ही ब्रह्म को अव्यक्त और अनिर्वचनीय बता दिया। अब ज्ञान जो वचनीय भी हो, हम समझ भी सकें, समझा भी सकें ऐसे हमको चलना है। ज्ञान का मतलब ही यही होता है जो मैं समझ सकता हूँ और जो मैं समझा पाता हूँ।

यहाँ एक समीक्षा हो सकती है विगत ने हमको क्या दिया? विगत से आयी आदर्शवाद और भौतिकवाद (बनाम विज्ञान) ने हमको क्या दिया? आदर्शवाद ने हमको शब्द ज्ञान दिया जिसके लिए उसका धन्यवाद है। भौतिकवाद (विज्ञान) ने सभी तरह के ''काल'' और ''देश'' के नाप-तौल की विधियाँ दी, जिससे कार्य को पहचाना गया जिसके लिए उसका धन्यवाद है। अब बाकी और क्या ज्ञान की जरूरत है? धरती बीमार हो गयी है अब आदर्शवाद और भौतिकवाद से इसका कोई रास्ता निकल नहीं रहा है, इसलिए हमको इनके आगे समझने की जरूरत है। यही आधार बिंदु है मध्यस्थ दर्शन का अध्ययन शुरू करने के लिए। ''आवश्यकता'' के अर्थ में एक ध्रुव रखना पड़ेगा। यदि आवश्यकता ही नहीं है तो हम अध्ययन क्यों करेंगे? इस ध्रुव को भूलना नहीं। यदि ध्रुव को नहीं रखते तो देश और काल का निर्णय कैसे करोगे? इस ध्रुव के आधार पर पता चलता है, हमने इतने देश और काल में क्या किया। उसी के आधार पर हम कार्य को तय करते हैं।

कार्य की पहचान भी ज्ञान ही है क्रिया ज्ञान के रूप में। ज्ञान और क्रिया में क्या अन्तर है? भौतिक संसार में कार्य ऊर्जा होती है तभी तो भौतिक संसार क्रियाशील है। मूल ऊर्जा व्यापक ही है। मानव में कार्य ज्ञान ही कार्य ऊर्जा है। मानव में ''कार्य ज्ञान'' होता है यह बात परम्परा में आ चुकी है। इस आधार पर हम कार्य का प्रशिक्षण लेते हैं। अब कार्य ज्ञान के मूल में जो प्रवृत्ति है उसे हम ''ज्ञान'' कह रहे हैं। यह वही मूल ऊर्जा है। यह वही साम्य ऊर्जा है। मानव में यह ऊर्जा ज्ञान के स्वरुप में जुड़ा है। ''होने'' के आधार पर साम्य ऊर्जा, ''रहने'' के आधार पर कार्य ऊर्जा की पहचान होती है।

इस बात को अच्छे से डूब के समझ लो। यह यदि चुकता है, तो हम पुनः पटरी से उतर जायेंगे।

(अगस्त 2006 अमरकंटक)

## हर कर्म फलवती होता है

हर क्रिया का फल होता है। हर व्यवहार का फल होता है। हम जो कुछ भी कर्म करते हैं, सोचते हैं, बोलते हैं उससे या तो समस्या होगा या समाधान होगा। तीसरा कोई कर्म का फल नहीं होता।

जागृति की दिशा पकड़ने के बाद श्राप, ताप और पाप तीनों ख़त्म हो जाते हैं। जागृति के पास आने से पहले पूर्व कर्मों का फल जीवन भोग चुकता हैं। जिस क्षण से हमारी प्रवृत्ति सही की ओर हो जाती हैं, उसी क्षण से हमारे द्वारा पूर्व में की गयी गलतियों का प्रभाव हम पर से ख़त्म हो जाता हैं।

(अगस्त 2006 अमरकंटक)

## समझने में तर्क नहीं है समझने के लिये तर्क है

तर्क से हम कुंठित होने की जगह में पहुँचते हैं। हर मानव में जो सुखी होने की प्यास है उसको पहचान लेने पर उसको पूरा करने के लिए जो अध्ययन करना है, वह हम करने में लगते हैं। सकारात्मक भाग को लेकर प्यास हर व्यक्ति में बना हुआ है।

वैदिक विचार में निषेध का प्रयोग करके कहा गया कि उससे हर व्यक्ति में विधि का उदय होगा। अर्थात् यह सच्चाई नहीं है, यह भी सच्चाई नहीं है इस तरीके से वैदिक विचार का प्रस्तुति रहा। इस तरह यह सोचा गया था कि ऐसे करते करते एक ऐसी जगह में पहुँच जायेंगे, जिसमें हम केवल ''जो सच्चाई है'' उस तक पहुँच जायेंगे वह प्रमाणित नहीं हो पाया।

मध्यस्थ दर्शन का तरीका है ''जो है'' उसका अध्ययन करना। अस्तित्व है ही उसी का अध्ययन करना। सम्पूर्ण अस्तित्व क्यों है और कैसा है यह स्पष्ट होना। अस्तित्व में ही अविभाज्य मानव क्यों है, कैसा है? और कैसा रहना है? इसके अलावा कुछ बचता नहीं है। इसके बाद अध्ययन का अध्याय ही पूरा।

(जनवरी 2006, अमरकंटक)

**''होना'' अस्तित्व में प्रगटन विधि से है।** अस्तित्व प्रयोजनशील है इसलिए इसमें उत्तरोत्तर विकास क्रम और जागृति क्रम का क्रमिक प्रगटन भावी है। इस क्रम में पदार्थावस्था समृद्ध होने पर प्राण अवस्था प्रगट हुई, प्राण अवस्था समृद्ध होने के बाद जीव अवस्था प्रगट हुई, जीव अवस्था समृद्ध होने पर ज्ञान अवस्था (मानव) प्रगट हुई।''होने'' को चारों अवस्थाएं प्रमाणित करते ही रहते हैं। मानव में ही ''होने'' और ''रहने'' दोनों को प्रमाणित करने की बात रहती है ''होने'' के अर्थ में अस्तित्व में सारा प्रगटन विकास क्रम, विकास और जागृति क्रम के स्वरुप में हुआ है। ''रहने'' का विकास मानव को ही करना है।

**''होना'' सभी अवस्थाओं का कर्तव्य है!** अस्तित्व में हर इकाई नियति क्रम में अपने प्रगटन के अनुसार अपने ''होने'' को प्रगटन करने के लिए बाध्य है।

**''रहना'' मानव के जागृत होने पर ही प्रमाणित होता है।** ''रहने'' का दृष्टा मानव ही है।

''होने'' के प्रगटन क्रम में मानव जाति इस धरती पर प्रगट हुई। मानव के प्रगटन हेतु पिछली सभी अवस्थाएं संतुलन में रही। मानव स्वयं असंतुलित होने के कारण पिछली सभी अवस्थाओं के साथ हस्तक्षेप किया जिससे वे सभी विकृत हुए। जागृत मानव के साथ ही मानवेत्तर प्रकृति के संतुलित रहने की व्यवस्था है। मानव को छोड़ कर मानवेत्तर प्रकृति के संतुलन का कोई अर्थ भी नहीं है। मानव से कम में संतुलन की सम्पूर्णता होती ही नहीं है। पिछली अवस्थाओं के संतुलन का प्रयोजन मानव को प्रगट करना था। मानव अपने प्रयोजन और इनके प्रयोजन को अब तक नहीं पहचाना इसलिए जितना कुकर्म करना था, सब कर दिया।

**प्रयोजन का स्वरुप चारों अवस्थाओं के साथ ही स्पष्ट होता है।** ''होने'' और ''रहने'' का स्वरुप मानव जागृति पूर्वक चारों अवस्थाओं के साथ सहअस्तित्व के स्वरुप में प्रमाणित करता है। जागृति अस्तित्व का प्रयोजन है। मानव ही जागृति के प्रमाण को प्रस्तुत करता है।

(बंगलोर, जून 2008)

## जिज्ञासा, पात्रता और अभिव्यक्ति

जितना तुम जिज्ञासा करते हो, उतने को समझने की धारक-वाहकता (पात्रता) तुम्हारे पास रहता है। जब तुमको उसका उत्तर मिल जाता है तो वह तुम्हारे व्यवहार में प्रमाणित होने की श्रृंखला बन जाती है।

जिज्ञासा पात्रता का एक अनुमान है। पात्रता है तभी जिज्ञासा करते हो। जिज्ञासा के अनुरूप समझने के बाद ही आपकी पात्रता प्रमाणित होती है। यह बात हर व्यक्ति के साथ है। जितना हम जिज्ञासा करते हैं उसके उत्तर को लेकर चलने का अधिकार हम में बना रहता है।

जिज्ञासा कोई आवेश नहीं है। मूल जिज्ञासा आवेश नहीं है। आवेश के लिए कोई संघर्ष बिन्दु चाहिए। जिज्ञासा के उत्तर में अभिव्यक्ति होती है अनुभव संपन्न व्यक्ति के द्वारा। अभिव्यक्ति स्वयं स्फूर्त होती है, आवेश दूसरे के कारण से होता है। आपकी जिज्ञासा का उत्तर करते हुए मुझ पर कोई दबाव या आवेश नहीं है। आवेश विधि से सच्चाई का पता नहीं लग पाता। हम सच्चाई के बिन्दु से चूक जाते हैं।

जिज्ञासा और अभिव्यक्ति में आवेश नहीं होता। इसलिये इनमें सामरस्यता होने की अपेक्षा रहती है। यह मंगल मैत्री का अनुपम सूत्र है। यह मंगल मैत्री का सूत्र दूर-दूर तक फैल जाता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## नाप-तौल और आवश्यकता का निश्चयन

विज्ञान से नाप-तौल करने के तरीके मिले। छोटे और बड़े दोनों स्तरों पर। इन नाप-तौलों से कोई संतुष्टि का बिन्दु मिला नहीं। और छोटा या और बड़ा नाप सकते हैं यह हमेशा शेष रहता है। कितना भी छोटा नाप लें और छोटा नाप सकते हैं यह कल्पना जाती ही है। कितना भी बड़ा नाप लें और बड़ा नाप सकते हैं यह कल्पना जाती ही है। कितना नापोगे? कहाँ तक नापोगे? हम जितना नापते हैं उससे और अधिक नापने की अपेक्षा या अर्हता हम में बना ही रहता है।

नापना और तौलना हम आवश्यकता के अनुसार ही कर पायेंगे। नापना तौलना हम अपनी आशा या अपेक्षा के अनुसार कर नहीं पायेंगे। जीवन शक्तियाँ अक्षय हैं इसलिए हमारी आशा और अपेक्षा अक्षय हैं। आशा या अपेक्षा के अर्थ में आवश्यकता को मिलाना असंभव है। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही हम उत्पादन कार्य करते हैं। इस प्रकार हम अपनी आशा और अपेक्षा के अर्थ में अपने उत्पादन कार्य को निश्चित कर ही नहीं सकते।

कार्य का निश्चयन तभी हो सकता है जब हम अपनी आवश्यकताओं का निश्चयन कर पाएं। निश्चित आवश्यकताओं के लिए क्या और कितना उत्पादन कार्य करना है यह आसानी से तय किया जा सकता है। अध्ययनपूर्वक समाधान को हम प्राप्त कर लेते हैं। समाधान निश्चित है और सर्वतोमुखी है। इसलिए समाधान पूर्वक हम अपनी आवश्यकताओं का निश्चयन कर सकते हैं। आवश्यकताओं का निश्चयन समाधान के पहले हो नहीं सकता क्योंकि जीवन में आशा और अपेक्षा को संयत करने का आधार समाधान से ही आता है।

आवश्यकताओं का निश्चयन परिवार की सीमा में ही सम्भव है अकेले में नहीं। परिवार ही उत्पादन कार्य की मूल इकाई है। परिवार में आवश्यकता के निश्चयन से श्रम नियोजन पूर्वक आवश्यकता से अधिक उत्पादन करके समृद्धि को प्रमाणित किया जाता है। समाधान, समृद्धि संपन्न परिवार ही व्यवस्था में भागीदारी करने के योग्य होता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु

दो स्थितियाँ हम अपने सामने देख सकते हैं:

(1) धरती का बीमार होना।

(2) व्यापार का शोषण ग्रस्त होना (लाभ-उन्मादिता)

मानव के पास स्वत्व के रूप में जो कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता है जब तक उसके तृप्ति बिन्दु को हम नहीं पहचानेंगे, तब तक इन दोनों स्थितियों का दवाई नहीं बन सकता।

अभी हम कारखाने में जो उत्पाद तैयार करते हैं, उनको लाभ के आधार पर ही बाजार में बेचते हैं। अभी तक भौतिकवादी विधि से यही माना गया ''केवल सक्षम व्यक्ति को ही जीने का अधिकार है।'' अक्षम व्यक्ति को जीने का अधिकार नहीं है ऐसा भौतिकवादी सोच से निकलता है। सक्षम और अक्षम को इस विधि से पहचानने गए तो यह निकला: ज्यादा पैसा = ज्यादा सक्षम। कम पैसा = अक्षम। इस ढंग से ज्यादा कम वाला स्थिति बना ही रहेगा। इस तरह कितने लोगों को अक्षम कह कर मारा जाए, काटा जाए, अलग किया जाए और कितने लोगों को धरती पर रहने दिया जाए? इस तरह से दुष्ट प्रवृत्ति बनती है। इस प्रवृत्ति के आधार पर हर देश ने अपना सीमा सुरक्षा बनाया। इसके आधार पर ही धरती का शोषण हुआ और धरती बीमार हो गयी। यह इसलिये हुआ क्योंकि कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु मानव जाति को हाथ नहीं लगा। यह बात मानव परम्परा में नहीं है, अध्ययन में आज तक नहीं है, शिक्षा में आज तक नहीं है, संविधान में आज तक नहीं है, न ही व्यवस्था में है। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के तृप्ति बिन्दु के प्रमाणित होने की गवाही इस धरती के किसी देश में आज तक नहीं है।

कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के तृप्ति बिन्दु को हमें पहचानना होगा। उससे पहले मानव जाति अपराध प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हो सकता। मानव के साथ किया हुआ अपराध भी अंततोगत्वा धरती के साथ ही जुड़ता है सूक्ष्म विधि से सोचें तो हमको यह पता चलता है।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसंधान से निकला सहअस्तित्व में अनुभव ही मानव की कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु है। जागृति को प्रमाणित करना ही कर्मस्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु

है। सहअस्तित्व में अध्ययनपूर्वक इस तृप्ति बिन्दु तक पहुँचा जा सकता है। इसके अलावा इस तृप्ति बिन्दु तक पहुँचने का और कोई रास्ता नहीं है। इस तरह कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के तृप्ति बिन्दु को पहचानने का प्रमाण है अपराध मुक्ति।

(अगस्त 2006 अमरकंटक)

## तृप्ति की अपेक्षा और तृप्ति का प्रमाण

सर्व मानव में तृप्ति की अपेक्षा है।

भक्ति विरक्ति विधि से तृप्ति का प्रमाण नहीं मिला। सुविधा संग्रह विधि से भी तृप्ति का प्रमाण नहीं मिला।

प्रश्न: तृप्ति के लिए क्या किया जाए?

उत्तर: स्वयं में विश्वास संपन्न हुआ जाए।

यह उत्तर मध्यस्थ दर्शन के अनुसन्धान से निकला।

स्वयं में विश्वास सहअस्तित्व में अध्ययन विधि से आएगा, उपदेश विधि से आएगा नहीं, घटना विधि से आएगा नहीं। मेरे तृप्त हो जाने मात्र से सभी तृप्त हो जायेंगे ऐसा होता नहीं।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## भ्रम से जागृति की ओर भ्रमित मानव की परिभाषा है

**न्याय का याचक बने रहना और गलती करने के अधिकार का प्रयोग करते रहना।**

भ्रमित मानव को गलती करने का अधिकार है। इसकी गवाही है भ्रमित मानव गलती करता है। यह जो धरती बीमार हुई है, इसके मूल में भ्रमित मानव ही है। भ्रमित मानव की गलतियों से ही यह धरती बीमार हुई है।

भ्रमित मानव को न्याय करने का अधिकार नहीं रहता है। इसकी गवाही है भ्रमित मानव अपने संबंधों में मूल्यों (जैसे विश्वास, सम्मान, स्नेह आदि) को प्रमाणित नहीं कर पाता है। भ्रमित मानव को भी मूल्यों की आवश्यकता है इसलिए भ्रमित मानव न्याय का याचक बना रहता है।

पूरी मानव परम्परा ही भ्रमित होने के कारण गलतियाँ बढ़ती गईं। अपराध बढ़ता गया। अब जब धरती ही बीमार हो गयी तो उसकी दवाई खोजने के लिए भ्रमित मानव का ध्यान गया है। यह दवाई आदर्शवाद और भौतिकवाद दोनों विचार धाराओं से नहीं निकल के आ सकती। इन दोनों विचार धाराओं पर चले हुए लोगों ने मिल कर इस धरती को बीमार किया है। इन दोनों विचार धाराओं का विकल्प चाहिए। वह विकल्प मध्यस्थ दर्शन है। मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववादी विचार धारा को लेकर आया है। इस विचार में प्रसक्त होने पर, इसको अपना स्वत्व बनाने का निश्चयन होता है। ऐसा निश्चयन होने पर उसके लिए अध्ययन करने पर यह अपना स्वत्व बन जाता है। समझदारी स्वत्व बनने पर जागृति ही प्रमाणित होती है, न्याय ही प्रमाणित होता है, धर्म ही प्रमाणित होता है, सत्य ही प्रमाणित होता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## सुख की चाहत

शरीर को जीवन मानने पर जीवन की साढ़े चार क्रियाएं प्रगट हो जाती हैं। सभी मानव में साढ़े चार क्रियाएं क्रियाशील हैं इसके प्रमाण में सुख की चाहत प्रगट हो गयी। यह चाहत बाकी साढ़े पाँच क्रियाओं के चालित हुए बिना पूरा होता नहीं है।

**प्रश्नः ''मैं सुख चाहता हूँ।'' क्या इस तथ्य का मेरी बुद्धि में मुझे ''बोध'' पहले से ही रहता है?**

**उत्तरः** नहीं। इसमें बोध की कोई बात नहीं है। यह ''चाहत'' है जो मन में जीने की आशा का ही स्वरुप है। मन में यह आशा ही वृत्ति में विचार और चित्त में इच्छा तक पहुँचता है। आशा, विचार और इच्छा में सबसे ज्यादा ताकत इच्छा में है। इच्छा के आधार पर ही आगे अध्ययन की व्यवस्था रखी है।

**प्रश्नः ''सुख की चाहत'' मानव में कैसे आया?**

**उत्तरः** मानव ने चार विषयों (आहार, निद्रा, भय और मैथुन) और पाँच संवेदनाओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) में सुख को खोजने का अजस्त्र प्रयास किया जिसमें वह असफल रहा। यहाँ असफल होने पर ही ''सुख की चाहत'' बनी।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसंधान द्वारा इस चाहत के पूरा होने का रास्ता मिल गया। यह रास्ता अनुभवगामी विधि या अध्ययन विधि है।

(जून 2008, बंगलोर)

# क्यों और कैसे का उत्तर

समाधान = क्यों और कैसे का उत्तर

अस्तित्व ही समझने की वस्तु है। हर वस्तु क्यों है और कैसे है यह समझ में आ जाना ही समाधान है। मानव ही समझने वाली इकाई है।

हर वस्तु प्रकाशमान है। इसका मतलब हर वस्तु अपने आप को व्यक्त करती है। यह व्यक्त करने का स्वरुप है रूप, गुण, स्वभाव और धर्म। इन चारों आयामों को मिला कर वस्तु की पूरी व्याख्या सम्भव है।

रूप और गुण मानव को इन्द्रियों से भी समझ में आते हैं। इन्हीं के आधार पर मानव ने बाकी तीनों अवस्थाओं की वस्तुओं का उपयोग किया। किंतु स्वभाव और धर्म समझ में नहीं आने के कारण मानव का इन अवस्थाओं के साथ पूरक होना, या उपकारी होना नहीं बन पाया। यहीं कमी रह गयी। इस से असंतुलन हुआ। प्रकृति में मानव तभी प्रगट हुआ, जब बाकी तीनों अवस्थाओं के द्वारा परिस्थितियाँ मानव के जीने के अनुकूल बन गयी थी। मानव से धरती की जो आवश्यकता थी, उसका मानव ने निर्वाह नहीं किया। जिससे धरती स्वयं बीमार हो कर मानव को बता दी कि अब मानव को धरती पर रहना है तो उसको प्रत्येक इकाई में स्वभाव और धर्म को समझना ही पड़ेगा।

किसी भी इकाई का स्वभाव उसके सहअस्तित्व सहज प्रयोजन को स्पष्ट करता है। कोई भी इकाई अस्तित्व में ‘‘क्यों’’ है? इस प्रश्न का उत्तर उसके स्वभाव को पहचानने से मिलता है। स्वभाव ही वस्तु का मूल्य है या मौलिकता है। जब मानव किसी इकाई के स्वभाव को पहचान लेता है तब उसके साथ कैसे निर्वाह करना है, यह उसको स्पष्ट हो जाता है।

किसी भी इकाई का धर्म उसके ‘‘होने’’ को स्पष्ट करता है। कोई भी इकाई अस्तित्व में ‘‘कैसे’’ है? इस प्रश्न का उत्तर उसके धर्म को पहचानने से मिलता है। सहअस्तित्व में प्रगटन विधि है इस प्रगटन क्रम में चारों अवस्थाएं क्रम से प्रगट हुई हैं। धर्म शाश्वतीयता के अर्थ में है। धर्म को प्रमाणित करने के अर्थ में स्वभाव है।

अस्तित्व में सभी इकाईयों के ‘‘होने’’ की गवाही मानव ही देता है। मानव ही दृष्टा है। ‘‘होने’’ का ही दर्शन है। ‘‘होने’’ को समझने के बाद ही मानव जागृति को ‘‘रहने’’ के रूप में चारों अवस्थाओं के साथ प्रमाणित करता है।

(जून 2008, बंगलोर)

## काल की पहचान

काल = क्रिया की अवधि।

गणितात्मक भाषा को जब प्रयोग में लाये तब क्रिया के आधार पर काल को पहचानना शुरू किया। तकलीफ तब शुरू हुई जब हमने विखण्डन विधि से गणित करना शुरू किया। एक वस्तु को विखण्डित करते-करते इसके एक भाग के साथ कितना ''काल'' हुआ, यह जब गिनने लगे तब काल का मूल अवधारणा पीछे छूट गया। इसके आधार पर जो कुछ भी निष्कर्ष निकालते चले गए वे सब गलत होते चले गए।

जैसे मानव को जब पहचानने जाते हैं और यदि मानव को हम किसी कालखण्ड में पहचानने का प्रयास करते हैं और कालखण्ड को छोटा और छोटा करते चले जाते हैं, तो मानव स्वयं एक निरंतर क्रिया है यह पकड़ में नहीं आता। मानव को पहचानने का आधार ''क्रिया की अवधि'' नहीं है। जिस क्रिया के आधार पर काल को पहचाना था जैसे धरती का सूरज के चारों तरफ चक्कर लगाना वह भी अपने में निरंतर है। क्रिया को भुलावा देना मतलब अस्तित्व को भुलावा देना है। कालखण्ड को शून्य करके किसी क्रिया की समग्रता को पहचानने का कोई तरीका ही नहीं बचता। वस्तु को छोड़ देते हैं, गणित को पकड़ लेते हैं। अस्तित्व को भुलावा देकर जो भी निष्कर्ष निकालते हैं वे अपराधिक ही होते हैं। गणित लिखने में आता है उससे कोई वस्तु मिलता नहीं है। सारी विज्ञान की दौड़ गणित के साथ जुड़ी है।

कालखण्ड के आधार पर कोई दर्शन नहीं होता। अस्तित्व नित्य वर्तमान है। वर्तमान को शून्य करके हमारी गति पहचानने की कोई जगह ही नहीं है। वर्तमान को शून्य करके जो भी निष्कर्ष निकालते हैं सब निराधार होते हैं।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## स्वयं को कैसे जाँचे?

**प्रश्नः अध्ययन में स्वयं को जाँचने की बात रहती है। स्वयं को हम कैसे जाँचें?**

**उत्तरः** यह तीन बिन्दुओं में होता है।

(1) क्या यह प्रस्ताव मुझसे जुड़ा है या नहीं? क्या इसको मैं समझा हूँ या नहीं?

(2) क्या इस प्रस्ताव को प्रमाणित करने के लिए मैं सहमत हूँ या नहीं?

(3) क्या इस प्रस्ताव को मैं प्रमाणित कर पा रहा हूँ या नहीं? प्रस्ताव के अनुसार

आचरण कर रहा हूँ कि नहीं?

जैसे सहअस्तित्व का प्रस्ताव। क्या मुझे सहअस्तित्व समझ में आया? मैं सहअस्तित्व से कैसे जुड़ा हूँ? यह अपने को जाँचने का पहला मुद्दा है। दूसरा क्या मैं सहअस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए सहमत हूँ? तीसरा मैं सहअस्तित्व के प्रस्ताव को कहाँ तक प्रमाणित कर पा रहा हूँ?

दूसरा उदाहरण: संतान के साथ सम्बन्ध। क्या मुझे संतान के साथ सम्बन्ध समझ में आया? मैं अपनी संतान के साथ कैसे सम्बंधित हूँ? दूसरा क्या मैं अपनी संतान के साथ सम्बन्ध को प्रमाणित करने के लिए सहमत हूँ? तीसरा क्या मैं अपनी संतान के साथ सम्बन्ध को प्रमाणित कर पा रहा हूँ?

स्वयं को जाँचने से ही अध्ययन सफल होता है। मध्यस्थ दर्शन से स्वयं को जाँचने का एक ठोस आधार मिल गया है।

(बंगलोर, जून 2008)

## प्रबोधन कैसे होना चाहिए?

**प्रश्नः मध्यस्थ दर्शन का प्रबोधन कैसे होना चाहिए? पठन विधि से, भाषण विधि से, उपदेश विधि से या प्रमाण विधि से।**

**उत्तर:** प्रमाण विधि से ही प्रबोधन सार्थक है। प्रमाण विधि से प्रबोधन का मतलब है इस सत्यापन के साथ प्रस्तुत होना "जो मैं कह रहा हूँ, उसको मैं समझा हूँ, पारंगत हूँ और जीता हूँ।" उससे कम में प्रबोधन सफल नहीं हो सकता।

**प्रश्नः जब तक पारंगत नहीं हुए हैं तब तक क्या करें?**

**उत्तर:** पारंगत होने के लिए अध्ययन कीजिये। तब तक पूर्णता के सन्दर्भ के साथ, अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए प्रस्तुत कीजिये।

(जून 2008, बंगलोर)

## अध्ययन काल

**प्रश्नः अध्ययन काल में मुझ में उत्साह और उत्सव का क्या आधार हो?**

**उत्तर:** अध्ययन काल में जब मैं इस बात में पक्का हो जाऊँ कि "मैं समझ सकता हूँ।"

तो वही मेरे उत्साह और उत्सव का ठोस आधार बन जाता है। जब मैं यह मान लेता हूँ कि ''मैं नहीं समझ सकता।'' तो वह मेरे निरुत्साह और निराशा का स्वरुप बन जाता है। अध्ययन पूरा होने के बाद स्वयं में अनुभव प्रमाण ही उत्साह और उत्सव का नित्य आधार होता है।

**प्रश्न: अध्ययन कराने के लिए स्त्रोत व्यक्ति को कैसे पहचाना जाए?**

**उत्तर:** अध्ययन का स्त्रोत अस्तित्व है जो सबके लिए समान है। उसके बाद स्त्रोत व्यक्ति की बात है। समाधान, समृद्धि अभय सहअस्तित्व को जो प्रमाणित किया है, वही अध्ययन कराने के लिए स्त्रोत व्यक्ति है। इसके पहले स्त्रोत व्यक्ति होता नहीं चाहे कुछ भी कर लो! सहअस्तित्व के ढाँचे में ही कुछ ऐसा है।

(जून 2008, बंगलोर)

## प्रमाण और जिज्ञासा के संयोग में अध्ययन होता है

अनुभव मूलक विधि से जिए बिना कोई अध्ययन करवा नहीं सकता। अध्ययन प्रमाण और जिज्ञासा के संयोग में होता है। प्रमाण जीने में ही होता है। प्रमाण का स्वरुप है समाधान और समृद्धि पूर्वक जीना।

(जून 2008, बंगलोर )

## मध्यस्थ क्रिया का स्वरूप

मध्यस्थ क्रिया वह है जो सम और विषम से अप्रभावित रहता है और सम और विषम क्रियाओं को संतुलित बना कर रखता है। इसके दो स्वरुप हैं।

**( 1 ) परमाणु में संतुलन**

परमाणु में संतुलन बनाए रखने की जो बात है वह उसके मध्यांश द्वारा है। यह परिवेशीय अंशों को निश्चित अच्छी दूरी में स्थित करने के रूप में होता है।

**( 2 ) चारों अवस्थाओं में परस्पर संतुलन**

इसके केन्द्र में मानव ही है। चारों अवस्थाओं को संतुलित बना कर रखना यही मानव के ज्ञान अवस्था में प्रतिष्ठा का वैभव है। मानव जब तक भ्रमित है तब तक चारों अवस्थाओं के संतुलित रह पाने का कोई स्वरुप ही नहीं निकल सकता। मानव जाति भ्रमवश मध्यस्थता के इस स्वरुप को प्रमाणित नहीं कर पाया, उल्टे अपराध में ग्रसित हो गया। भ्रमवश मानव ने

मानव का शोषण किया और बाकी तीनों अवस्थाओं का शोषण किया जिससे ही यह धरती बीमार हुई है। मध्यस्थता के स्वरुप को प्रमाणित करना मानव की ही जिम्मेदारी है।

(जून 2008, बंगलोर)

## धर्म और स्वभाव

अस्तित्व धर्म चारों अवस्थाओं में साम्य रूप से है। पदार्थ अवस्था में अस्तित्व धर्म है। प्राण अवस्था में अस्तित्व सहित पुष्टि धर्म है। जीव अवस्था में अस्तित्व, पुष्टि सहित आशा धर्म है। ज्ञान अवस्था (मानव) में अस्तित्व, पुष्टि, आशा सहित सुख धर्म है। धर्म ''स्व'' है किसी भी इकाई को उसके धर्म (स्व) से अलग नहीं किया जा सकता। स्वभाव ''त्व'' है या मौलिकता है। किसी भी इकाई का स्वभाव उसके ''स्व'' का सहअस्तित्व में प्रकाशन है। स्वभाव इकाई का सहअस्तित्व में प्रयोजन है। जैसे प्राण अवस्था 'अस्तित्व सहित पुष्टि' धर्म का सहअस्तित्व में अपनी पूरकता और उपयोगिता का जिस प्रकार प्रकाशन करती है, वही प्राण अवस्था का स्वभाव है।

स्वभाव अवस्थाओं में बदलता गया है। नियति क्रम में मानव का प्रगटन हुआ। मानव जीवों के जैसे जीने गया तो मानव का स्वभाव प्रमाणित नहीं हुआ।

बाकी अवस्थाएं नियति क्रम में अपने प्रगटन होने मात्र से अपने आप अपने स्वभाव को प्रमाणित करती गयी। मानव के साथ ऐसा नहीं हुआ क्योंकि मानव अस्तित्व को सही-सही समझने पर ही अपने स्वभाव को प्रमाणित कर सकता है। मानव के धरती पर प्रगटन होने से ही उसका 'स्व' तो सुख ही रहा जिसकी वजह से वह अनेक तरीकों से सुख को खोजने की निरंतर कोशिश करता रहा। ये कोशिशें दो तरीके की रही पहली, भक्ति विरक्ति (आदर्शवाद), दूसरी सुविधा संग्रह (भौतिकवाद)। लेकिन ये दोनों कोशिशें सफल नहीं हो पायीं क्योंकि इन दोनों विधियों से अस्तित्व का अध्ययन नहीं हो पाया। इसलिए मध्यस्थ दर्शन का अनुसंधान भावी हो गया जिससे अस्तित्व का सही-सही अध्ययन मानव को सुलभ हो गया। इसका अध्ययन करके मानव अपने स्वभाव को प्रमाणित कर सकता है।

(जून 2008, बंगलोर)

## अस्तित्व में मानव

अस्तित्व में तीन तरह की क्रियाएं हैं (1) भौतिक क्रिया, (2) रासायनिक क्रिया, (3) जीवन क्रिया। इनके अलावा कोई चौथी प्रकार की क्रिया अस्तित्व में नहीं है। इन तीनों

क्रियाओं के योग-संयोग से अस्तित्व में चार अवस्थाओं का प्रगटन हुआ। मानव ज्ञान अवस्था में गण्य हुआ। क्योंकि इस अवस्था में जीवन के जागृत होने की व्यवस्था है। इसका कारण है मानव शरीर रचना इस प्रकार से हुआ कि उससे जीवन अपनी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता को प्रकाशित कर सकता है।

मानव की जागृति तभी प्रमाणित हो सकती है जब वह अपने कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के तृप्ति बिन्दु को पहचान ले। कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु ज्ञान में है। कर्मस्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु स्वयं स्फूर्त विधि से स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी करना है। स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी करना कोई जबरदस्ती या आरोप नहीं है ''स्वयं स्फूर्त'' है। ऐसा नहीं है हम आपको दस रुपया दे दिया, तो आप व्यवस्था में भागीदारी करेंगे। यह स्वयं स्फूर्त होना होगा। उसके लिए समझदारी स्वयं में ध्रुव होना अनिवार्य है।

(जून 2008, बंगलोर)

## कारण, गुण, गणित

कारण, गुण, गणित तीनों मिला कर ही मानव भाषा है।

विज्ञान ने गणितात्मक भाषा को अपनाया गुण और कारण को छोड़ दिया। बिना कारण और गुण के जब गणित को पकड़ने गए, तो विखण्डन विधि को अपना लिए, वस्तु मूलक गणित को छोड़ दिए।

भक्तिवाद गुणात्मक भाषा को अपनाया कारण और गणित को छोड़ दिया।

अध्यात्मवाद कारणात्मक भाषा को अपनाया गुण और गणित को छोड़ दिया।

इस तरह विज्ञान (भौतिकवाद), भक्तिवाद और अध्यात्मवाद तीनों एक-एक पैर पर खड़े हैं। जबकि कारण, गुण, गणित तीनों से मानव को वस्तु बोध होता है।

- कारण विधि ज्ञान
- गुण विधि सोच विचार (समाधान)
- गणित विधि गणना

(जून 2008, बंगलोर)

## अध्ययन में साक्षात्कार

अध्ययन में साक्षात्कार के लिए आशा, विचार, इच्छा और प्रयत्न रहता है। साक्षात्कार हुआ या नहीं, हाथ लगा या नहीं उसका सत्यापन आप ही करोगे। पाने के लिए जो वस्तु है उसको मैं आपको बोल कर, लिख कर आप के सामने प्रस्तुत किया हूँ। वह मेरे लिए भले ही अनुभव हो, पर आपके लिए वह सूचना ही है। वह आपके अनुभव में आने पर ही प्रमाण है।

आप इस प्रस्तुति से पहले तर्क विधि से संतुष्ट होते हैं। तर्क तात्विकता को छूता है। तात्विकता को पाने के लिए अध्ययन है। अध्ययन विधि से संतुष्ट होने का मतलब है सहअस्तित्व साक्षात्कार, बोध और अनुभव होना। फलतः प्रमाण होना। जीने के लिए तत्पर होने पर प्रमाणित होने की आवश्यकता आती है। बिना जिये समझ का प्रमाण नहीं है।

अध्ययन में ध्यान देने की जरूरत है। ''हमको समझना है'' जब यह वरीयता में आता है, तब ध्यान लगता है। ''हमको समझना नहीं है, केवल पढ़ना है'' जब ऐसा रहता है, तब ध्यान नहीं लगता। समझना हर व्यक्ति का अधिकार है।

(जून 2008, बंगलोर)

## साक्षात्कार

अस्तित्व में प्रकृति चार अवस्थाओं के रूप में अपनी वास्तविकताओं को प्रगट की है। इस प्रगटन में कुछ भाग मानव को इन्द्रिय गोचर है, तथा कुछ भाग ज्ञान गोचर है। रूप तथा सम विषम गुण इन्द्रिय गोचर है अर्थात् यह मानव को अपनी इन्द्रियों से समझ आता है। मध्यस्थ गुण, स्वभाव और धर्म ज्ञान गोचर है अर्थात् यह मानव को ज्ञान पूर्वक ही समझ में आता है।

ज्ञान गोचर विधि से स्पष्ट होना ही साक्षात्कार है। दूसरे शब्दों में वस्तुओं का सहअस्तित्व में प्रयोजन स्पष्ट होना ही साक्षात्कार है। अध्ययनपूर्वक साक्षात्कार होता है। साक्षात्कार हुआ मतलब अध्ययन हुआ। साक्षात्कार नहीं हुआ मतलब अध्ययन नहीं हुआ।

(जून 2008, बंगलोर)

## जीने का प्रारूप या प्रस्ताव

अभी तक मानव जैसे भी जिया चाहे आर्थिक विधा में, चाहे धार्मिक विधा में, चाहे राजनीति विधा में उससे जो जीने के प्रारूप निकले वे मानवीयता और अखण्ड समाज के प्रमाणित होने के लिए अनुकूल नहीं हैं। इसलिए मध्यस्थ दर्शन को ''विकल्प'' नाम दिया है।

इसको जीने का प्रारूप समाधान, समृद्धि है।

यह प्रस्ताव अपने में पूरा है। इसको समझने का अधिकार सबका समान है। समझदारी से समाधान होता है।

(जून 2008, बंगलोर)

## पूरा समझना

समझना पूरा होता है, आधा अधूरा नहीं। अधूरे में समाधानित होते ही नहीं हैं। पूरा समझने के बाद ही प्रमाणित होने की बात आती है। प्रमाणित होना क्रम से होता है। प्रमाणित होने का क्रम है समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व।

(जून 2008, बंगलोर)

## सही और गलत

सही और गलत के बारे में आदमी सोचता आया है। सही और गलत की विभाजन रेखा के बारे में ही मतभेद लोगों में होता है।

मध्यस्थ दर्शन की रौशनी में सही और गलत की विभाजन रेखा की पहचान होती है।

मानव चेतना में सभी सही है। जीव चेतना में सभी गलत है।

मानव चेतना का मतलब है अनुभव मूलक जीना। जीव चेतना का मतलब है शरीर मूलक जीना।

अनुभव सम्पन्नता ही सही और गलत की विभाजन रेखा है।

मानव चेतना विधि से जीव चेतना को जाँचा जा सकता है। जीव चेतना में स्वयं रहते हुए जीव चेतना में रहते हुए दूसरे व्यक्ति को जाँचना सम्भव नहीं है। जीव चेतना की सीमा में दूसरे की गलती को गलत ठहराना और अपनी गलती को सही ठहराने की बात होती है। यही मतभेद का स्वरुप है।

जीव चेतना विधि से कितना भी सोच विचार करें हम एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच ही नहीं सकते। मतभेद बना ही रहता है। इस तरह ''अपना-अपना सही'' की दलील निकल जाती है। अपना-अपना सही का मतलब है आप अपनी जगह रहो, हमको हमारी जगह रहने दो। इस तरह अपने पराये की दीवार बन जाती है। जो मेरी गलती को सही मानते हैं, उनको

मैं अपना मान लेता हूँ। जो मेरी गलती को गलत कहते हैं, उनको मैं पराया मान लेता हूँ।

सही में हम मानव एक हैं। गलती में अनेक हैं। गलती में जीता हुआ मानव अनेक स्वरूपों में दिखता है। गलती करने के हजारों लाखों तरीके हैं। वे सभी तरीके जीव चेतना में गण्य हैं। इन तरीकों से जीने वालों के बीच में मतभेद दिखाई देता है। सही करने का एक ही तरीका है और वह है अनुभव मूलक जीना। दो सही करने वालों में मतभेद नहीं हो सकता। दो अनुभव संपन्न व्यक्तियों का सहीपन को लेकर एक ही मत होता है।

(जून 2008, बंगलोर)

## परस्पर पहचान होना प्रकाशन का मतलब है।

हर वस्तु के सभी ओर उसका प्रतिबिम्ब रहता है। क्योंकि हर वस्तु सीमित होता है। सीमित होने के आधार पर ही ''एक'' के रूप में गण्य होता है। इस ढंग से हरेक का प्रतिबिम्ब उसके सभी ओर होता है। इसका प्रमाण एक दूसरे को पहचानना ही है। उसके बाद गणित करना भी प्रमाण है। जैसे हमारे सामने यह धान का ढेर है। धान का ढेर हमारे ऊपर प्रतिबिंबित रहता ही है। एक एक धान को भी मैं गिन सकता हूँ। उसके बाद किसी नाप से इसको नाप कर गणना भी कर सकता हूँ। किसी तराजू में तौल कर भी गणना कर सकता हूँ। यदि यह प्रतिबिंबित नहीं होता तो मैं गणना कैसे करता? परस्पर पहचान होना ही गणना करने का आधार है। परस्पर पहचान होना ही सम्बन्ध को पहचानने का आधार है। उसके साथ फिर कार्य व्यवहार करने का आधार भी प्रतिबिम्बन ही है। प्रतिबिम्बन न हो, तो हम अपने कार्य व्यवहार का निश्चयन कर ही नहीं सकते। जैसे अभी यह धूलि ऊपर से गिरा उसको मैं हाथ से ऐसे हटा दिया। यदि धूलि को मैं पहचानता नहीं हूँ, तो मैं ऐसा नहीं कर सकता था। यह प्राकृतिक नियम है।

इस तरह परस्पर पहचान होना प्रकाशन का मतलब है।

हर वस्तु प्रकाशमान है प्रतिबिम्बन के रूप में। हरेक एक सभी ओर से दिखता है, उनका होना समझ में आता है। ''होना'' समझ में आना ही बिम्ब के साथ सम्बन्ध का पहचान और उसके साथ कार्य व्यवहार का निश्चयन है। इस तरह एक दूसरे को पहचानने की व्यवस्था प्राकृतिक रूप में बना ही है।

प्रतिबिम्बन पूर्वक हम क्या चाहते हैं? हम चाहते हैं वस्तु क्यों है और कैसा है? यह स्पष्ट होना। जैसे यह किताब है तो या तो इसमें कुछ लिखा होगा, या यह कुछ लिखने योग्य होगा। लिखने योग्य हो, या लिखा हो उसको हम ''किताब'' कहते हैं। लिखने योग्य हो तो

हम लिखना शुरू कर देते हैं। लिखा हो तो हम पढ़ना शुरू कर देते हैं। इस तरह इस किताब का मेरे लिए उपयोग सिद्ध हो गया। इस प्रकार हम हरेक वस्तु को लेकर अध्ययन कर सकते हैं।

आगे सोचने पर यह प्रतिबिम्बन कहाँ रुकता है? इसका उत्तर है अपारदर्शक वस्तु पर रुकता है। जैसे यह दीवार है मेरा प्रतिबिम्बन उस दीवार तक ही है। दीवार के पार मेरा प्रतिबिम्बन नहीं है। इसका मतलब है किसी सीमित जगह पर एक इकाई सभी ओर से दिखाई देती है। जैसे इस कमरे में आग रखा है इसको सभी ओर से देखो तो यह दिखाई देता है। दीवार के उस पार चले जाओगे तो यह दिखता नहीं है। इसके लिए कोई प्रयोगशाला बनाने की जरूरत नहीं है।

उसी प्रकार सूर्य का प्रकाश भी है। सूर्य का प्रतिबिम्ब धरती के एक ओर रहता ही है। वह कभी छूटता नहीं है। जबकि प्रचलित विज्ञान कहता है ''सूर्य का प्रकाश गतिमान है, 8 मिनट में धरती को छूता है।'' जबकि सूर्य का प्रकाश कोई क्षण, कोई पल, किसी भी विधि से धरती से अलग नहीं है। विज्ञानी कितने अच्छे आदमी हैं सोच लो! क्या यह कंपकंपी पैदा करने वाली चीज नहीं है? ये कहते हैं ''प्रकाश आ रहा है''। कहाँ से आ रहा है? कैसे आ रहा है? ऐसे कहने का जिम्मेदार कौन है? कैसे फंसाया आदमी जात को? क्या यह अपराधिक है या नहीं? जबकि इस सब को पढ़ कर आप सब अपने आप को विद्वान मानते हो। इसका क्या किया जाए? कैसे किया जाए? हर व्यक्ति इसका निराकरण नहीं कर पाता है। हर व्यक्ति के बलबूते का यह रोग नहीं है। इसलिये जी जान लगाने वाले किसी आदमी की जरूरत पड़ता ही है।

प्रतिबिम्बन का सही स्वरुप न समझने के कारण विज्ञान ने यह गलत निष्कर्ष निकाल लिया ''प्रकाश ही प्रतिबिम्बन का कारण है।'' ऐसा निष्कर्ष निकाल लिए ''प्रकाश गतिशील है, इसलिए सबका प्रतिबिम्बन होता है।'' जबकि हर वस्तु अपने में प्रकाशित रहता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## मानव परस्परता में प्रतिबिम्बन का कार्य, रूप

अभी आप और मैं आमने सामने बैठे हैं। आपका प्रतिबिम्ब मुझ पर है और मेरा प्रतिबिम्ब आप पर है। अभी आप और मैं परस्पर पहचान करने में सार्थक हैं। आप मुझको मेरे आकार आयतन से पहचान रहे हैं और अध्ययन प्रक्रिया द्वारा मेरा मन, विचार, कार्य और प्रयोजन आप तक पहुँच रहा है। वैसे ही मुझको भी आपके बारे में हो रहा है। पहचान प्रक्रिया

में इस तरह हम सोच विचार तक पहुँच गए। सोच विचार के आधार पर तो हम जीते ही हैं। हम दोनों क्या सोच विचार कर रहे हैं यह एक दूसरे को समझ आ रहा है। यह आपके और मेरे बीच पहचान का सेतु हुआ।

**प्रश्नः जब मैं बंगलोर चला जाता हूँ, तो इस प्रतिबिम्बन प्रक्रिया का क्या होता है?**

जब आप बंगलोर चले जाते हैं, तो यह सब मेरी स्मृति में रहता ही है। आपका प्रतिबिम्बन मेरी स्मृति में रहता है और मेरा प्रतिबिम्बन आपकी स्मृति में रहता है। उस स्मृति को हम समय-समय पर उपयोग करते हैं। अभी जैसे कई लोगों के साथ अपनी पहचान की स्मृतियों को आपको मैंने बताया। एक डाकू से लेकर, एक शंकराचार्य तक की स्मृतियों को मैंने आपको बताया है। बंगलोर जाने के बाद जब आपके साथ मेरी फोन पर बात होती है, तो पीछे वाली सारी स्मृतियाँ आ जाती हैं। उसके तारतम्य में मैं आपकी बात सुनता हूँ। जो मैं सुनता हूँ, वह पुनः स्मृति में जाता है। आप बताईये इसमें छुटा हुआ कुछ कहाँ है? सम्बन्ध में काटने की जगह ही नहीं है। इसको काटने वाली कोई वस्तु ही नहीं है अस्तित्व में। यही संबंध का मतलब है। सम्बन्ध में दूरी कोई बाधा नहीं है। पास में आने से बहुत कुछ सफल हो गए, ऐसा भी नहीं है। पास में भी सम्बन्ध का निर्वाह है, दूर में भी सम्बन्ध का निर्वाह है। ''दूर'' का कोई मतलब ही नहीं है।

जड़ वस्तु पर प्रतिबिम्बन ससम्मुखता के साथ ही रहता है। अपारदर्शक वस्तु बीच में होने पर प्रतिबिम्बन अपारदर्शक वस्तु पर हो जाता है।

**प्रश्नः टेलीपैथी क्या कोई वास्तविकता है?**

वास्तविकता के अलावा और क्या है? अभी आप और हम शब्द भाषा के द्वारा टेलीपैथी ही तो कर रहे हैं। शरीर मुद्रा भंगिमा के द्वारा भी टेलीपैथी है। हमारे सोच विचार के साथ भी टेलीपैथी है। सोच विचार फैलता ही है। फैलने के आधार पर एक दूसरे को छूता ही है। छू लिया तो टेलीपैथी! अभी जो मैं साधना किया, फलस्वरूप अस्तित्व में अध्ययन किया अस्तित्व अपने में एक टेलीपैथी ही हुआ मेरे लिए। अस्तित्व को कितना दूर और कितना पास माना जाए आप ही बताओ? अभी मैं जो अध्ययन किया हूँ उसको कितना दूर माना जाए कितना पास माना जाए, आप ही बताओ? इसमें दूर पास का भाषा ही नहीं बनता। इसमें इतना ही कहना बनता है अस्तित्व को मैं देखा हूँ। अस्तित्व को मैं समझा हूँ। समझ में आ गया तो दूरी क्या है और पास क्या है? नहीं समझ में आया तो दूरी क्या है, पास क्या है? जैसे यदि

मैं आपको समझा नहीं हूँ तो इसमें पास क्या हुआ, दूर क्या हुआ? हम आप को समझ गए तब दूर क्या और पास क्या? समझ दूरी पास से मुक्त है। एक और दूसरी इकाई के बीच में दूर पास है। इकाई को ज्ञान विधि से पहचान लिया तो उसके बाद उसके साथ दूरी पास ख़त्म हो गया। यह टेलीपैथी नहीं तो और क्या है? फार्मूला है यह! ज्ञान विधि से सम्बन्ध रखें तो टेलीपैथी पूरा सच्चाई है। इस तरह जब मानव जागृत परम्परा स्थापित कर लेता है, तब बहुत सारे यंत्रों की भी जरूरत नहीं पड़ती। हमारी इच्छा आप को छू लेता है, आप में वैसा ही इच्छा साकार हो जाता है।

फिर

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## वैदिक विचार की विसंगति, अनुसंधान और विकल्प

हमारे घर गाँव में केवल वेद, उपनिषद्, दर्शन, शास्त्र के अलावा कोई ध्वनि मुझे सुनने को नहीं मिला। इस भट्टी में मैं भी पका। पलने में जो सुना तो यही सुना। यदि गर्भ वास में सुना हो तो भी यही सुना। उसके बाद तो यही सुना है। वैदिक विचार से ज्यादा सत्य के पक्ष में झुलसा हुआ परम्परा और कोई नहीं है। सत्य के पक्ष में झुलसते ही गए। झुलसने का भाषा मैंने ऐसे प्रयोग किया हमारे अकेले परिवार में 1000 वर्ष से यह किंवदंती है हर पीढ़ी में 1-2 सन्यासी होता ही रहा। सन्यासी के लिए वे लिखे हैं वैदिक ब्राह्मण हो, शिष्ट परिवार के हों, वेदान्त संपन्न हों उनको मोक्ष का अधिकार होना लिखा है। ऐसा मैंने भी सुना। ऐसे लिखे हुए के आधार पर हमारा परिवार स्वयं को एक श्रौतिय वैदिक परम्परा का मानता रहा। मेरे परिवार में बड़े भाई तक ऐसी ही स्वीकृति थी। मेरी भी स्वीकृति इस पक्ष में थी। ऐसी स्वीकृति मुझ में 30 वर्ष की आयु तक रहा। 30 वर्ष आयु के बाद मैं शोध में लग गया।

**प्रश्नः बाबा, आप जो इसमें कहते हैं आपके गाँव में वेद ध्वनि ही थी। क्या कभी इस पर कोई वाद-विवाद भी होता था? या केवल ध्वनि ही थी?**

सब होता था। संवादों का तो भरमार था। हर दिन शाम के समय एक संवाद होता ही रहा। 30 घर का गाँव कभी इस घर में, तो कभी उस घर में संवाद होता ही रहा। उसके साथ संगीत उसके साथ नृत्य कोई चीज छुटा नहीं था वहाँ आज तक सबसे ज्यादा जिसका मान्यता होता है ऐसा कोई चीज वहाँ छूटा नहीं था वहाँ। उन सभी चीजों के मूल में वही वेदान्त ही था। वेदान्त की अन्तिम भाषा है ''ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या''! जगत कहाँ से आया पूछने पर कहा ब्रह्म से आया! सत्य से मिथ्या आ गया! ख़त्म हो गयी बात। यही मेरे प्राण संकट का कारण हुआ सत्य से मिथ्या कैसे पैदा होता है? इसको कैसे पचाया जाए? आज के तर्क संगत विधि से सोचने वाले मस्तिष्क में इसको कैसे बोध कराया जाए?

1950 में जब भारत का संविधान तैयार हुआ तब उसमें मुझे ''राष्ट्रीयता'' और ''राष्ट्रीय चरित्र'' का कोई स्वरुप निकलता नहीं दिखा। तब मैंने एक हजार वेद मूर्तियों को एकत्रित किया। वेद मूर्तियों को एकत्रित करना मेढ़कों को एकत्रित करने के बराबर ही है। मैंने उनसे विनती किया एक लाइन तो लिख कर दे दो राष्ट्रीयता को ले कर (वैदिक ज्ञान के आधार पर)। वे लोग एक लाइन लिख कर नहीं दे पाये। फिर काहे के लिए 40-40 वर्ष वेद को पढ़ते रहते हैं? किस प्रयोजन के लिए? केवल सम्मान पाने के लिए!

**प्रश्नः इसका मतलब पूरी वैदिक परम्परा में कभी तर्क जुटा ही नहीं?**

यही पूरी बात सार रूप में है। इतनी ही बात है। पाप इतना ही हुआ। उपदेश विधि से ही सारा बातचीत, उपदेश विधि से ही सारा संवाद, उपदेश विधि से ही सारा स्वीकृति! यह हम सुनते ही रहे। अब कुल मिला कर आपने जो पहचान किया वही है! तर्क का प्रयोग नहीं हुआ। तर्क का प्रयोग न होने से शोध समाप्त हो गयी। रूढ़ी रह गयी। अब उसमें (वैदिक परम्परा को लेकर) रोने के अलावा क्या चीज है? हम लोग पूरा जिए हैं इसे! इसका कोई दूसरा रास्ता नहीं है रोने के अलावा। अब उस जगह से मैंने शुरू किया। इतने हजारों वर्षों की पुराण बताते हैं और रोने की जगह में पहुँचते हैं हम। कैसे किया जाए? क्या किया जाए? कैसे हल निकाला जाए? इस अरण्य में मैं खो गया।

उस समय में मैं हर दिन 8 घंटे काम करके एक हजार रुपया प्राप्त करता था। आज के दिन में उसका कीमत एक लाख रुपया तो होगा। अपने गुरु की आज्ञा लेकर मैंने समाधि के लिए जाने का निश्चय किया। मेरी पत्नी ने मेरे साथ चलने के लिए अपना मत दिया। मैंने अपनी श्रीमती से पूछा यह पैसा जंगल में मिलेगा नहीं। मैं जंगल में कोई कंद मूल लेने गया और मुझे कोई बाघ खा गया तो तुम क्या करोगी जंगल में मेरे साथ जा कर? वे बोली तुम्हारा गणित ठीक नहीं है! तुमको पहले बाघ खायेगा, या मुझको खायेगा कैसे बताओगे? कौन से नक्षत्र से बताओगे? कौन से विधि से बताओगे? उसके बाद मैंने कहा अब जो होगा, सो होगा! माता जी की वह बात ने मुझको वहाँ से यहाँ तक पहुँचाया। माता जी (पत्नी) यदि नहीं होते मेरा साधना पूरा होता मैं विश्वास नहीं करता। जबकि शास्त्रों में लिखा है गृहस्थ व्यक्ति साधना नहीं कर सकता। उनको समाधि नहीं होगा यह लिखा है। संन्यास के बाद ही साधना समाधि की बात लिखा है। श्रवण मनन निधिध्यासन की बात लिखा है, साधन चतुष्टय सम्पन्नता के बाद। इसको मैं पढ़ा हूँ। कितना प्राण संकट के साथ मैं निकला, कितना भयंकर कीटा पत्थर काँटा के बीच मैं गुजरा और उसमें से कैसे निकल गए, इस बीच में यंत्रणा मुझको हुआ नहीं। सबसे भारी ख्याति कहो, उपलब्धि कहो इस बीच में एक भी क्षण हम यंत्रणा से ग्रसित नहीं

हुए। अभाव ग्रस्त नहीं हुए। अभाव का पीड़ा हमको नहीं हुआ, यंत्रणा नहीं हुआ। जबकि कल के लिए चाय की व्यवस्था न रखते हुए जिए हैं। इससे ज्यादा असंग्रह को क्या बताया जाए?

यहाँ आने से पहले मुझे विज्ञान विधि से तर्क ठीक है, यह स्वीकृत रहा। और वेद वेदान्त का ''मोक्ष'' शब्द मुझको स्वीकृत रहा। मोक्ष तो होना चाहिए पर मोक्ष सब कुछ को छोड़ कर होना चाहिए यह मेरा स्वीकृति नहीं हुई। विरक्ति छोड़े बिना हो नहीं सकती। विरक्ति विधि बिना साधना हो नहीं सकती। यह तो शास्त्रों में भी लिखा हुआ है। इस आधार पर मैंने अपने आप को साधना के लिए तैयार किया। हर अवस्था में चल के देखा। चलकर यही हुआ यंत्रणा हमको पहुँचा नहीं। दो-चार हाथ दूर से ही चला गया। समस्या हमको छुआ नहीं। संसार का तर्क हमको परास्त नहीं कर पाया। यह सब उपकार नियति विधि से ही होती रही। इसके अलावा मैं कहाँ कृतज्ञता व्यक्त करूँ बताओ?

इस ढंग से चल कर के जो अंत में निकला उसको मैंने मानव का पुण्य माना। अपनी साधना का फल मैंने नहीं माना। इसलिये निर्णय किया मानव को इसे पकड़ाया जाए। पकड़ाने में ही सारा चक्कर है पापड़ बेल रहे हैं। आप सभी जो मेरे साथ इस टेबल पर बैठे हो आप सभी के साथ ऐसा ही है। ''हमारा विचार'' कह कर अपनी बात रखते हो तो मैं क्या तुमको बताऊँ? ''आपका विचार'' क्या हुआ? मानव का विचार यह है! देव मानव का विचार यह है! दिव्य मानव का विचार यह है! पशु मानव का विचार यह है! राक्षस मानव का विचार यह है! इन पाँच विचार शैलियों को पढ़ लो! यदि इच्छा हो तो! नहीं इच्छा हो तो बिल्कुल कृपा करो! यह जो विचारों को चिन्हित करने का अधिकार (मुझमें) आया उसको अद्‌भुत मानो! यह चेतना विधि से किया जीव चेतना, मानव चेतना, देव चेतना और दिव्य चेतना के अनुसार विचार हैं। अब उसमें आप कहते हो तुम्हारा भाषा कठिन है! कैसे मैं इसका व्याख्या करूँ, बड़ा मुश्किल है! केवल आपका सम्मान करने के अलावा हम कुछ कर नहीं पाते हैं।

(अमरकंटक, अगस्त 2006)

## अनुभव के बाद अस्तित्व में से दूरी शून्य हो जाती है।

व्यापक वस्तु ही जड़ प्रकृति में मूल ऊर्जा के रूप में है। व्यापक ही चैतन्य प्रकृति में ज्ञान के रूप में है। चैतन्य प्रकृति में जीव संसार भी है। जीव संसार में चार विषयों का ज्ञान प्रमाणित होता है। मानव में चार विषयों के साथ, पाँच संवेदनाओं का भी ज्ञान हुआ। जीव चेतना की सीमा में मानव इतना ही कर पाया। इसका प्रमाण है मनाकार का साकार होना और मन:स्वस्थता का वीरान रहना। जीव चेतना में मन: स्वस्थता का खाका भरा नहीं है। उस मैदान को भरना है, हरा-भरा करना है। यह कैसे होगा? मानव लक्ष्य पूरा होने से मन: स्वस्थता

प्रमाणित होती है। मनः स्वस्थता जीवन में सुख, शान्ति, संतोष और आनंद है। अखण्ड समाज/राष्ट्र के रूप में समाधान, समृद्धि अभय सहअस्तित्व है। यदि हम मानव लक्ष्य के साथ जीते हैं, प्रमाणित करते हैं उसमें दूरी क्या है? पास क्या है? दूरी और पास रासायनिक भौतिक वस्तुओं की सीमा में स्पष्ट होती है। जीवन के साथ जीवन की गति है। कल्पनाशीलता को यदि आंकलित किया जाए तो कोई दूरी है ही नहीं। दूरी का कोई मतलब ही नही है। केवल कल्पना को जोड़ने से यह हुआ। उसके बाद अनुभव जोड़ने से दूरी शून्य हो गयी। चारों अवस्थाओं के साथ दूरी शून्य हो जाता है। शून्य दूरी को हम प्रमाणित कर पाते हैं इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा?

इसको अच्छी तरह से हृदयंगम करने से फिर अध्ययन में आपको कहीं अटकना नहीं है। हम जो लिखे हैं वह आपको समझ में आएगा। समझ में आ गया तो निर्णय लेने की ताकत आती है। निर्णय लेने की ताकत आने के बाद आप कुछ करोगे ही करोगे! निर्णय लेने के बाद क्या बात है? कहाँ रुकेंगे? नहीं रुक सकते! निर्णय लेने के बाद रुकने की जगह नहीं है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## संवाद का मतलब

संवाद का मतलब है परस्परता में पूर्णता के अर्थ में भाषा को प्रगट करना।

संवाद तर्क नहीं है।

संवाद पूर्णता सहज आवश्यकता के लिए है। पूर्णता के अर्थ में हमको पारंगत होना है या नहीं होना है? इसके उत्तर में ''होना है'' यही आपसे कहना बनता है। ''नहीं होना है'' यह कहना सबके सामने तो नहीं बनता। भले ही व्यक्तिगत रूप में समझदारी से दूर भागते रहे। जब भागते भागते थक जाते हैं तो वापस इस जगह आना ही पड़ता है।

पूर्णता को स्वीकारना ही पड़ता है यही संवाद का मतलब है। पूर्णता को नकारना बनता नहीं है। पूर्णता को हम नहीं समझे, हम मनमानी पूर्वक भागते रहे यह सब हो सकता है। किंतु यह घोषित करना नहीं बनता की हमको पूर्णता नहीं चाहिए। मनमानी करके सच्चाई से दूर भागते हैं, तो मानसिक रूप में थकना स्वाभाविक हो जाता है। मानसिक रूप में थकने से ही जीने में गलतियाँ होती हैं।

**प्रश्नः मानसिक रूप से थक जाने का प्रमाण क्या है?**

अपने द्वारा किए गए विश्लेषण से ही निकले प्रश्न-चिन्ह में स्वयं ही फंस जाना। इसको ''कुंठा'' नाम भी दिया जा सकता है। कुंठित होना, रास्ता बंद हो जाना, रास्ता ठीक नहीं लगना इनमे से किसी प्रमाण में हम गलती करने के रास्ते में आ जाते हैं। अपने गलत विश्लेषण को छोड़ कर के स्वयं में सहीपन की प्यास को पहचानना ही सहअस्तित्ववाद के लिए जुड़ने की स्थली है। इस प्यास को हरेक व्यक्ति बुझाना चाहता ही है। सकारात्मक बात के लिए हर व्यक्ति के पास में जगह बनी हुई है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## ज्ञान की बात

**प्रश्नः मध्यस्थ दर्शन के पहले भी ज्ञान की बात होती रही है, पर वह स्पष्ट क्यों नहीं हुआ?**

**उत्तरः** इसलिए क्योंकि विगत में ज्ञान को मूल में ईश्वर या ब्रह्म का ही स्वरुप माना था तथा ईश्वर ही दृष्टा कर्ता है यह गलत हो गया। सूक्ष्मतम रूप में यदि विश्लेषण करें तो तथ्य यह निकलता है कि व्यापक वस्तु ही साम्य ऊर्जा है। और ''साम्य ऊर्जा ही ज्ञान के रूप में मानव परम्परा में प्रमाणित होता है।'' साम्य ऊर्जा सम्पन्नता जड़ प्रकृति में भी है, चैतन्य प्रकृति में भी है। चैतन्य प्रकृति में से मानव एक इकाई है। मानव में इन्द्रियगोचर और ज्ञान गोचर बात प्रमाणित होती है। ज्ञान की रौशनी में जो समझ आता है वह ज्ञान व्यापक वस्तु ही है। यह मैंने प्रतिपादित किया है।

**प्रश्नः ज्ञान का दृष्टा कौन है?**

**उत्तरः** जीवन। जीवन जो एक गठनपूर्ण परमाणु है, वही ज्ञान का दृष्टा है।

विगत में कहा ईश्वर ही दृष्टा है। वह गलत हो गया।

विगत में जो ईश्वर या ब्रह्म को ज्ञान कहा वह गलत नहीं है। लेकिन जो यह कहा ''ब्रह्म से ही जीव जगत पैदा हुआ।'' वह गलत हो गया। इस तरह गुड़-गोबर में घुल गया! मैं इसको अच्छी तरह से देखा हूँ। सारा प्रयास, इतने अच्छे लोगों का प्रयास गुड़-गोबर हो गया।

ज्ञान जो व्यापक रूप में रहता है हर जगह में वह एक ही है। इसलिए ज्ञान व्यापक है। इसलिए हर जीवन में जीवन ज्ञान एक ही है। सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान हर जीवन में एक ही है। मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान हर जीवन में एक ही है। इस तरह यह साम्य हो गया! यह साम्य ज्ञान मानव परम्परा में प्रमाणित होता है।

जबकि विगत में बताया था ज्ञान अव्यक्त है, अनिर्वचनीय है। जबकि मैं कह रहा हूँ ज्ञान प्रमाणित होता है। ज्ञान वचनीय भी है। ज्ञान व्यक्त भी है। विगत में कहा हुआ बात इस तरह निरर्थक हो गया न? दूसरी भाषा में इसे कहें तो ''झूठ बोल दिया।'' चाहे इस झूठ को सही मान करके क्यों न बोले हों! इस झूठ से मेरे जैसे कितने लोग आहत हुए, इसका कोई संख्या नहीं है। जबकि मैं कैसे न कैसे बच गया। मेरा इस तरह बच जाना और मध्यस्थ दर्शन का अनुसंधान सफल हो जाना इस तरह मानव परम्परा के लिए देन स्वरुप में हो गयी। यह देन स्वरुप में तभी है जब मानव परम्परा इसको स्वीकारता है।

मेरा जो प्रयास है वह नगण्य है। मैं इसको अच्छी तरह से आंकलित कर पा रहा हूँ। मैंने कोई बहुत भारी साहस किया हो ऐसा मुझको तो लगता नहीं है। सामान्य रूप में ठीक है कुछ किया! कुछ करने से यह अपेक्षा ही नहीं था यह हो जायेगा! इसको क्या कहें?

अनुभव है इतनी से गोली पर देखो यह सारे अस्तित्व को ढकता है। सारे अस्तित्व को छूता है। सारे अस्तित्व का परीक्षण करता है। सारे समाधान को पाता है। मानव परम्परा में ज्ञान को प्रमाणित करता है। अनुभव एक सूक्ष्मतम गोली वह खुलता है तो कहीं तक खुलता ही चला जाता है। अनुभव की महिमा यही है। कितना भी विशाल तक ले जाओ और विशालता के लिए वस्तु शेष रहता ही है। यहाँ ज्ञान अंत हो गया वह जगह मिलता ही नहीं है। हर जगह में ऐसा लगता है इससे आगे भी ज्ञान की रौशनी पहुँचती है। यही अनुभव का महिमा है। उत्साहित होने के लिए यह एक बहुत भारी बात है न? हर व्यक्ति को इसकी जरूरत महसूस होने के लिए यह एक बहुत ही प्रभावशाली तथ्य है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## समझदारी का प्रमाण

किसी आयु के बाद हर व्यक्ति अपने आप को समझदार माना ही रहता है। हर मानव अपने ढंग से अपने को समझदार मानता है। जैसे कोई कहता है ''मैं समझदार हूँ, इसका प्रमाण है मेरे पास पैसा है ''। दूसरा कहता है ''मैं समझदार हूँ, इसका प्रमाण है मैं इस पद पर हूँ।'' तीसरा कहता है ''मैं समझदार हूँ, इसका प्रमाण है मैं बहुत बलशाली हूँ।'' चौथा कहता है ''मैं समझदार हूँ, इसका प्रमाण है मैं बहुत रूपवान हूँ।'' जबकि ज्यादा पैसा, ऊँचा पद, या खूब हट्टा-कट्टा होना, या देखने में सुंदर होना समझदारी का प्रमाण नहीं है। किसी के पास ज्यादा पैसा हो, वह ज्यादा सुलझा हुआ हो ऐसा कोई नियम नहीं है। कम पैसा हो, वह ज्यादा सुलझा हो ऐसा भी कोई नियम नहीं है। वैसा ही पद, बल और रूप के साथ भी है।

मध्यस्थ दर्शन से निकला: समझदारी का प्रमाण है न्याय पूर्वक जी पाना, धर्म पूर्वक जी पाना और सत्य पूर्वक जी पाना।

न्याय, धर्म और सत्य को समझना अध्ययन है। न्याय, धर्म और सत्य को प्रमाणित करना समझदारी है।

**प्रमाणित करने की इच्छा ही न हो तो अध्ययन कोई क्यों करेगा? अनुभव प्रमाण की प्रेरणा से ही अध्ययन होता है। प्रमाणित करने की इच्छा से ही अध्ययन होता है।**

यथास्थिति को बनाए रखने के लिए और अध्ययन न करने के लिए जितने हमारे सर में बाल हैं, उतने बहाने हैं। किसी आयु के बाद मानव के सच्चाई से दूर भागने के अनगिनत बहाने बन जाते हैं। साथ ही, किसी आयु के बाद अपने संस्कार वश ही सच्चाई को शोध करने की भी कुछ लोगों में इच्छा रहती है। वह जो भाग है उसी के साथ मैं और आप जुड़ रहे हैं। सच्चाई को शोध करने की इच्छा वाले लोग ही मेरे पास आते हैं। नहीं तो कोई आता नहीं है।

फिर सत्य के शोध के पक्ष में हमारी चर्चा में निकला सत्य को शोधा नहीं जाता। सत्य को समझा जाता है। शोधा जाता है बेवकूफी को। बेवकूफी को छान कर अलग कर दिया जाता है। सत्य को समझा जाता है। सहअस्तित्व स्वरूपी सत्य हम सभी को प्राप्त है। प्राप्त वस्तु को क्या शोधा जाए? अभी तक की आवाज था "सत्य को खोजेंगे।" अब यह आया सत्य हमको प्राप्त है, उसका हमको अनुभव करना है। व्यापक वस्तु और एक एक वस्तु साथ साथ हैं, यह अनुभव में आना।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## भ्रम का कार्य, रूप है भय और प्रलोभन

भ्रम में जीता हुआ आदमी अपने सुखी होने का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाता है। इसलिए ऐसे आदमी का जड़ ही हिला रहता है। कितना भी कोई पैसे वाला हो, ऊँचे पद पर हो, बलशाली हो भ्रमित आदमी अपने सुखी होने का प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाता। यही कारण है जागृति के प्रमाण के सामने आने पर भ्रम में जीते हुए आदमी को लगता है, जैसे उसकी जड़ ही उखड़ गयी हो!

भ्रम से बनी हुई जितनी भी स्वीकृतियाँ हैं वे भय और प्रलोभन के रूप में ही हैं। भ्रम का कार्य, रूप है भय और प्रलोभन। भ्रमित अवस्था में आप कुछ भी करें उसके मूल में भय और प्रलोभन ही है। नौकरी और व्यापार के मूल में भय और प्रलोभन की जड़ है या नहीं?

भय और प्रलोभन को छोड़कर न नौकरी किया जा सकता है, न व्यापार किया जा सकता है। ''हमको दाना पानी मिलेगा या नहीं, हम भूखे तो नहीं मर जायेंगे?'', ''हमको लोग इतना मान देते हैं वह नहीं रहेगा तो हम क्या करेंगे?'' इन्हीं सब भय के मारे हम व्यापार करते हैं, या नौकरी करते हैं। चाहे कैसी भी नौकरी हो उसका यही हाल है। चाहे कैसा भी व्यापार हो उसका यही हाल है। यही विवशता है। विवशता मानव को स्वीकार नहीं है। इसलिये भय और प्रलोभन की जड़ हिलती रहती है।

भय और प्रलोभन का कोई सार्वभौम मापदंड नहीं बन पाता। नौकरी और व्यापार का इसलिये कोई सार्वभौम मापदण्ड बन नहीं पाता है। उसका स्वरुप बदलता ही रहता है। आज जिस प्रलोभन से नौकरी करते हैं, कल उससे काम नहीं चलता। नौकरी और व्यापार के अनिश्चित और परिवर्तनशील लक्ष्य होते हैं। कोई उन परिवर्तनशील और अनिश्चित लक्ष्यों तक पहुँच गया हो और सुखी होने का प्रमाण प्रस्तुत कर दिया हो ऐसा न हुआ है, न आगे होने की संभावना है।

मध्यस्थ दर्शन से निकला जागृति का सार्वभौम मापदंड है समाधान और समृद्धि। यह निश्चित लक्ष्य है। यह हर किसी को मिल सकता है। निश्चित लक्ष्य के लिए जब हम सही दिशा में प्रयास करें तो वह सफलता तक पहुँचेगा ही।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## संयम काल में अध्ययन: भाग-1

**प्रश्न: समाधि के बाद संयम में आपने गठनपूर्णता, क्रिया पूर्णता और आचरण पूर्णता को कैसे अध्ययन कर लिया?**

**उत्तर:** आपको मुझसे यह सूचना के रूप में बात मिली है कि मैं साधना, समाधि, संयम विधि से मध्यस्थ दर्शन की पूरी बात को पाया हूँ। उससे आप यह कह रहे हैं संयम काल में मैंने गठनपूर्णता, क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता को कैसे अध्ययन कर लिया, जिसका परम्परा में कोई जिक्र नहीं था। आपका यह जिज्ञासा पूरा होना चाहिए यह मेरा शुभकामना है।

मेरे पास पहले से यह कोई विचार नहीं था कि मैं यह अध्ययन करूँगा। पहला मुद्दा यह है। संयम करने से पहले मेरे पास अध्ययन का कोई पाठ्य क्रम नहीं था। उससे पहले समाधि में मैंने अपने आशा, विचार और इच्छा को चुप होते देखा था। ऐसे स्थिति में दिन में 12-18 घंटे तक मैं ज्ञान होने का इन्तजार में रहता था। समाधि में ज्ञान हुआ नहीं। अब क्या किया जाए? समाधि में ज्ञान नहीं होता इसका अपने साथी, सहयोगी और मित्रों को सन्देश देना

है। पतांजलि योग-सूत्र में लिखा है यदि संयम सफल होता है, तो समाधि होने की गवाही हो जाती है। उसके आधार पर संयम करने के लिए मैंने अपने मन को तैयार किया।

संयम के बारे में शास्त्रों में जो लिखा था वह सिद्धि मात्र को प्राप्त करने के लिए है, ऐसी मेरी स्वीकृति हुई। सिद्धियाँ तो संसार को बुद्धू बनाने वालों को चाहिए। मुझे सिद्धि नहीं चाहिए यह मैंने स्वीकारा। शास्त्रों में लिखा था धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों स्थितियों को जब हम इस क्रम में एकत्र करते हैं तो संयम होता है। मुझ में यह अन्तःप्रेरणा हुई कि इस सूत्र को उलटाया जाए। वैसा करने से शायद कुछ निकले जो इससे भिन्न होगा। क्या भिन्न होगा वही उसकी गवाही होगी। इस तरह मैंने समाधि, ध्यान, धारणा इस क्रम में इन स्थितियों को एकत्र करने का निर्णय किया। स्वयं पर विश्वास और दृढ़ता करने की प्रवृत्ति मुझ में पहले से ही थी।

मैं पहले धारणा, ध्यान और समाधि की भूमियों से गुजरा ही था इसलिए इन स्थितियों को एकत्र करने में मुझको कोई मुश्किल नहीं हुई। न ही इसमें कोई ज्यादा समय लगा। इस तरह मैं अपने चित्त और वृत्ति को लगाने में तत्पर हुआ। कुछ चार महीने के बाद मैं बहुत सारी ध्वनियाँ सुनने लगा कई ऐसी ध्वनियाँ जो मैं पहले सुना नहीं था। मैंने सोचा मुझे कर्ण नाद तो नहीं हो गया है? लेकिन संयम के समय के बाद ऐसी कोई ध्वनियाँ होती नहीं रही। यह क्या है? यह आगे पता चलेगा, यह सोच कर आगे चले। कुछ समय के बाद वे ध्वनियाँ शांत हो गयी। शांत हो गया एक दम। शांत होने के स्थिति में वैसा ही था जैसे गहरे पानी में डूबने पर आँखे खोलने पर सूरज, पानी और आंखों के बीच जैसा दिखता है वैसी ही स्थिति में मैं संयम में स्थित हो गया।

फिर धीरे-धीरे प्रकृति अपने आप उमड़-उमड़ कर सामने आने लगी। धरती अपने स्वरुप में आयी। वनस्पतियाँ अपने स्वरुप में आयी। जीव संसार अपने स्वरुप में आया। मानव संसार अपने स्वरुप में आया। ऐसा होने लगा। पहले धरती आयी। फिर ऐसी अनंत धरतियाँ। यह कोई महीने भर चला होगा। जैसे सिनेमा में देखते हैं वैसे मुझको संसार दिखता रहा। इसके आगे चलने पर एक चट्टान फिर उसके विस्तार में जाने पर, जैसे चूना पिघलता है, वह पिघला। और पिघल कर के फैला और फैल करके फैलते-फैलते उस जगह में आ गया, जहाँ वह हर भाग स्वचालित स्थिति में था। ऐसा मैंने परमाणु को देखा, पता लगाया।

इस तरह से कई चीजें पिघल-पिघल कर मूल रूप में परमाणु के रूप में होने को मैंने देखा है। कुछ वस्तुओं के नाम मैं जानता हूँ, कुछ के नाम भी मैं नहीं जानता। ऐसे चीजों को पिघल कर स्वचालित स्वरुप में मैं पहचाना। ''यही परमाणु है।'' यह मैंने पहचाना। इस परमाणु

को चलाने वाला कोई नहीं है यह पहचाना। अनेक प्रजाति के परमाणुओं को व्यापक वस्तु में डूबा हुआ, भीगा हुआ और घिरे हुए स्वरुप में देखा।

उसके बाद प्राण कोषा के स्वरुप को देखा। प्राण कोषा के मूल रूप में यौगिक क्रिया के स्वरुप में अपने सम्मुख में आते हुए चित्र के रूप में देखता रहा। इसमें मुझे बहुत खुशहाली होती रही। इस तरह हर वस्तु का विस्तार में अध्ययन होता है, इसके अलावा पढ़ने को चाहिए ही क्या? यही पढ़ने की वस्तु रही। ऐसा पढ़ते-पढ़ते मानव आ गया। मानव में प्राण कोषा से रचित शरीर। प्राण कोषा पहले स्पष्ट हुए प्राण कोषा कैसे बनते हैं। प्राण कोषा के मूल में प्राण सूत्र, प्राण सूत्र के मूल में पुष्टि तत्व और रचना तत्व। पुष्टि तत्व को आप लोग प्रोटीन कहते हो। रचना तत्व को आप लोग हारमोन कहते हो। आप लोग वह भाषा जानते हैं उस वस्तु को जानते नहीं हो। वस्तु को मैं जानता हूँ। आप पुष्टि तत्व को जानते नहीं हैं पुष्टि तत्व का नाम जानते हैं। वह पुष्टि तत्व वस्तु के रूप में क्या है वह आप नहीं जानते उसको मैं जानता हूँ। उसी प्रकार प्राण कोषा और प्राण सूत्रों से रचना। प्राण सूत्रों का नाम आप जानते हैं वह प्राण सूत्र किस वस्तु से कैसे बना है, उसको मैं देखा हूँ। रचना तत्व और पुष्टि तत्व निश्चित अनुपात में एक दूसरे से जुड़ जाते हैं वैसे ही जैसे दो परमाणु अंश एक दूसरे को पहचान करके साथ हो जाते हैं। जुड़ते हुए देखा है मैंने! जुड़ करके प्राण सूत्र होते हुए देखा है! प्राण सूत्र बन कर रसायन जल में निमग्न रहता हुआ देखा है। रसायन जल में निमग्न रहते हुए उनमें श्वास लेने और छोड़ने की क्रिया की शुरुआत होते हुए देखा है! इससे ज्यादा क्या विस्तार में देखना है? देखना है? मुझको पहले से यह सब देखने की इच्छा थी ऐसा कुछ नहीं था। अपने आप से यह सब देखने को मिला।

प्राण सूत्रों में जब श्वसन और प्रश्वसन की प्रक्रिया शुरू होती है तो उनमें एक खुशहाली दिखाई देती थी। उस खुशहाली के साथ उनमें एक रचना विधि उभर के आ जाती थी। उस रचना में वे संलग्न हो जाते थे। उसके बाद बीज वृक्ष न्याय विधि से उनकी परम्परा बनी। उस खुशहाली से दूसरी रचना विधि निकली। दूसरी रचना किए। वह फिर परम्परा हुआ बीज वृक्ष न्याय विधि से। इस ढंग से अनेक रचनाएँ प्राण सूत्रों से हुई।

रसायन तत्वों के मूल में गए तो उनके मूल में है ''जल''। किसी भी धरती पर पहला यौगिक वस्तु जल ही है। जल धरती पर ही टिकता है। धरती से मिल कर जल अम्ल और क्षार बन जाता है। किसी निश्चित अनुपात में अम्ल और क्षार मिल कर पुष्टि तत्व होता है। किसी निश्चित अनुपात में मिल कर वे रचना तत्व होते हैं। इसको देखा। इस तरह प्राण सूत्रों का बनना देखा। प्राण सूत्रों से रचनाएँ होते देखा।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## संयम काल में अध्ययनः भाग-2

संयम काल में कुछ कुछ जगह पर मैंने संस्कृत लिपि में लिखा हुआ भी देखा। यह सब बात देखने पर मुझे विश्वास हुआ यह संयम तो पढ़ने की चीज है! इसको आगे बढ़ाए चारों अवस्थाएं जब स्पष्ट हो गयी, यह फिर दोहराने लगा।

**प्रश्नः यह सब में कितना समय लगा?**

पहले एक वर्ष मैं इन्तजार ही करता रहा। फिर 2-3 महीने ध्वनियों की बात रही, उसके बाद समाधि के आकार में आने में कुछ समय लगा, उसके बाद ध्यान की जगह में मैं जैसे ही पहुँचा यह सब ''तांडव'' होने लगा! पूरा जड़ और चैतन्य प्रकृति व्यापक वस्तु में अपने आप को किस तरह से निरंतर पाया है। दूसरे योग संयोग कैसे प्रगट हुआ है।

एक दिन मैं संयम में देखता हूँ परमाणुएं अपने आप एक लाइन में लग गए। एक, दो, तीन, चार, उन्हें मैं गिन सकता था। कुछ संख्या के बाद परमाणुओं का अजीर्ण होना मिला। जो परमाणु अपने में से कुछ परमाणु अंशों को बहिर्गत करना चाह रहे हैं उनको मैंने अजीर्ण नाम दिया। उससे पहले कुछ परमाणुओं को भूखे परमाणुओं के रूप में देखा। वे परमाणु अपने में कुछ और परमाणु अंशों को समा लेना चाह रहे हैं। इन दोनों तरह के परमाणुओं के मध्य में मैं एक ऐसे परमाणु को भी देखा जो अपने एक आकार में घूम रहा है। जबकि बाकी सब परमाणु अपनी जगह में हैं। जब उस परमाणु को एक जगह में स्थिर होते हुए देखा तब पता लगा इसकी गठन तृप्ति हो गयी है। इस तृप्त परमाणु को गठनपूर्ण परमाणु नाम दिया।

**प्रश्नः क्या आपने संक्रमण होते हुए भी देखा?**

नहीं। संक्रमण की कोई अवधि नहीं होती इसलिए वह नहीं देखा। समय विहीनता का दर्शन नहीं होता। समय विहीनता का मात्र अनुभव होता है। कतार में भूखे, अजीर्ण और तृप्त परमाणु हैं उनको देखा। लेकिन संक्रमण होते हुए नहीं देखा। संक्रमण हो गया है यह अपना योग्यता लगता ही है, निर्णय करने में। वैसे ही जैसे किसी क्रिया को नाम देने में हमारा योग्यता लगता है। तृप्त परमाणु अपने गठन में पूर्ण हो गया तभी यह अपने आकार को बनाए रखा। गठनपूर्ण परमाणु अणु बंधन और भार बंधन दोनों से मुक्त हो गया और आशा बंधन से युक्त हो गया। आशा बंधन के आधार पर यह अपना पुंज आकार बनाया। उस आकार की शरीर रचना सहअस्तित्व में प्रगटन विधि से उपलब्ध रही जिसको चलाने के लिए प्रवृत्ति।

जीवन परमाणु को पहले मैंने पुन्जाकर स्वरुप में देखा। उसके बाद धीरे-धीरे वह परमाणु के रूप में सम्मुख हुआ। उसमें मैंने देखा मध्य में एक ही अंश है। यह देखने के लिए परमाणु कितना बड़ा हुआ होगा यह मैं नहीं कह सकता। पर मैं परमाणु अंशों को गिन सकता था। हर बात को मैं समझ सकता था। मध्य में एक अंश, पहले परिवेश में 2, दूसरे में 8, फिर 18, फिर 32 इस तरह 61 परमाणु अंशों को मैंने जीवन परमाणु में देखा।

इन 61 परमाणु अंशों में परावर्तन और प्रत्यावर्तन दोनों हैं। परावर्तन में प्रकाशन करना बनता है। प्रत्यावर्तन में स्वीकार करना बनता है। इस तरह जीवन में 61 परावर्तन और 61 ही प्रत्यावर्तन में क्रियाएं हैं। इन कुल 122 क्रियाओं को मैंने मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान में स्पष्ट किया है। संयम काल में जीवन की क्रियाओं को गिनने का काम मैंने किया।

संयम काल में अध्ययन करने में मुझे 5 वर्ष लगे। जब तक मैंने यह नहीं माना कि मेरा अध्ययन पूरा हो गया है इस दृश्य की पुनरावृत्ति होती रही। इससे मैंने माना कि नियति स्वयं प्रगटनशील है। इसमें कोई रहस्य नहीं है। अस्तित्व कोई रहस्य नहीं है मैं यहाँ आ गया। यह स्वयं में विश्वास होने पर कि मेरा अध्ययन पूरा हुआ फिर पहले जैसे ही अनेक धरतियाँ, जलता हुआ सूरज जैसा प्रतिबिंबित होता रहा। कई धरतियों को मैं देखते रहा। इन धरतियों में से कई में चारों अवस्थाओं को स्थापित भी देखा। स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म सब कुछ देखने के पर मैंने निर्णय किया यही अस्तित्व है। यही व्यापक में संपृक्त प्रकृति है । इस बात में जब मुझको पूरा विश्वास हुआ उसके बाद मैंने संयम को बंद किया।

**प्रश्नः आपको जैसा अस्तित्व अध्ययन हुआ क्या हमको भी वैसा ही अध्ययन होगा?**

भाषा से वांङ्गमय के रूप में जो मैंने प्रस्तुत किया है उसके अर्थ में जाओगे तो आपको वही मिलेगा। आपके पास उसके लिए आधार है कल्पनाशीलता। कल्पनाशीलता आपके पास आधार है अर्थ तक पहुँचने के लिए। अर्थ अस्तित्व में है। भाषा से जो मैंने कहा है उसका अर्थ अस्तित्व में है।

मुझे यह पता लगा मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में है। जागृति जीवन द्वारा दसों क्रियाएं व्यक्त करने के रूप में हैं। 10 क्रियाओं के विस्तार में 122 आचरण हैं 61 परावर्तन में, 61 प्रत्यावर्तन में। इनको गिनने के बाद मुझको तृप्ति हुई कि संयम जो मैंने किया था, वह सार्थक हुआ। संयम सार्थक होने के बाद प्रयास पूर्ण हो गया।

इससे यह निकल गया (1) भ्रम मुक्ति ही मोक्ष है। (2) अस्तित्व में परिवर्तन है उत्पत्ति नहीं है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## संयम काल में अध्ययनः भाग-3

तृप्त परमाणु को मैंने पुंज आकार में होता हुआ देखा। कभी घोडे, कभी गधे, कभी बकरी, तो कभी मानव के आकार में। कई प्रकार से यह दिखता रहा यह महीनो तक चला। उसके बाद पुन्जाकार के मूल में परमाणु अपने में स्थिर हुआ वह भी बाकी भूखे और अजीर्ण परमाणुओं की कतार में जैसे देखा था, वैसे ही एक परमाणु ही है। उसमें चार परिवेश और एक मध्य में अंश देखा। यह मुझ को समझ में आ गया: यह एक विशेष परमाणु है जिसमें तृप्ति है। जब उसकी पूरी क्रियाएं मेरी गिनती में आ गयी यह पता लगा उसमें परावर्तन और प्रत्यावर्तन दोनों है। जब 61 प्रकार के परावर्तन और प्रत्यावर्तन का अध्ययन मेरा पूरा हो गया तो मैंने माना मेरा जीवन का अध्ययन पूरा हो गया।

विगत में कहा था ब्रह्म से जीव जगत पैदा हुआ। जीव के हृदय में ब्रह्म बैठा हुआ है यह लिखा था। यह सब झूठ निकल गया। इसके विपरीत मैंने पाया जीवन एक गठनपूर्ण परमाणु है, जो शरीर को चलाता है। मानव शरीर के साथ एक विशेषता देखी जीवन की कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता को इसके साथ दूर दूर तक फैलता देखा। यहाँ तक मैंने देख लिया।

समाधि से बाहर निकलने पर मैं जीवन से सम्बंधित बात को मैं अपने में अध्ययन करता ही रहा। होते-होते पता चला जीवन ही भ्रमवश बंधन में पीड़ित होता है। जीवन ही जागृत हो कर बंधन से मुक्त हो जाता है। भ्रमित होने से बंधन। भ्रम मुक्त होने से जागृति। भ्रम अति व्याप्ति, अनाव्याप्ति और अव्याप्ति दोष है। फिर भाषा तो मेरे पास पहले से थोड़ा था ही उसके साथ परिभाषा के साथ मैं समृद्ध हुआ। धीरे धीरे इस बात को मैं दूसरों को बताने में सफल हुआ।

**प्रश्नः व्यापक वस्तु के पारगामी और पारदर्शी होने का आपने कैसे अनुभव किया?**

जड़ और चैतन्य व्यापक वस्तु से घिरा है यह मैंने देखा। डूबा हुआ है यह देखा। भीगा हुआ से पारगामियता स्पष्ट हुई। डूबा हुआ है यह क्रियाशीलता के रूप में पहचाना। एक दूसरे का परस्परता में प्रतिबिम्बन है इससे पारदर्शिता समझ में आ गयी। प्रतिबिम्बन विधि से ही

इकाईयों की परस्परता में पहचान है। 4-5 वर्ष में यह बात कितनी ही बार दोहराया होगा जब तक मैं तृप्त नहीं हो गया, तब तक यह दोहराता रहा। जो मैं साधना किया था वही इस बात को बनाए रखा ऐसा मैं मानता हूँ।

इस तरह समाधि होता है, संयम होता है ये बात सत्यापित हुई। योग, आगम तंत्र उपासना विधि से जो समाधि की तरफ जो इशारा किया है, वह गलत नहीं है। समाधि में ज्ञान होता है, जो लिखा वह गलत है!

सम्पूर्ण अस्तित्व क्यों है, कैसा है यह समझ में आना इसको मैंने ज्ञान माना।

जीवन क्यों है, कैसा है यह समझ में आना इसको मैंने ज्ञान माना।

मानवीयतापूर्ण आचरण क्यों है, कैसा है यह समझ में आना इसको मैंने ज्ञान माना।
(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## संयम काल में अध्ययन: भाग-4

**प्रश्न: क्या संयम काल में आपकी कोई पूर्व स्मृतियाँ भी कार्यरत थी?**

**उत्तर:** नहीं। समाधि में उनका निरोध हुआ, उसके बाद ध्यान, उसके बाद धारणा। इस तरह संयम काल में मेरी कोई पूर्व स्मृतियाँ कार्य रत नहीं थी।

**प्रश्न: अस्तित्व कैसा है?**

**उत्तर:** अस्तित्व सत्ता में संपृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति के रूप में है। जड़ प्रकृति रसायन प्रक्रिया द्वारा बाकी तीनों अवस्थाओं को प्रकटित करता है। मूलत: पदार्थ अवस्था से ही सारा रचना है। वही पदार्थ अवस्था से ही परमाणु में विकास। पदार्थ अवस्था ही है परमाणु। पदार्थ अवस्था के परमाणु ही विकास क्रम में भूखे और अजीर्ण और विकसित अवस्था में उनको तृप्त या गठनपूर्ण परमाणु नाम दिया है।

**प्रश्न: शरीर में जीवन कैसे काम करता है?**

**उत्तर:** जीवन द्वारा शरीर को चलाने के लिए मेधस तंत्र समृद्ध होने की जरूरत है। मेधस तंत्र समृद्ध हुए बिना जीवन द्वारा शरीर को जीवंत बनाना बनता नहीं है। शरीर और जीवन के बीच मेधस तंत्र एक बैटरी है। जीवन पहले इस बैटरी को चार्ज करता है। मेधस तंत्र को प्रभावित करने से पूरा मेधस तंत्र चार्ज हो जाता है। तो शरीर जीवंत दिखता है। शरीर प्राण

कोषाओं से बना ताना–बाना है। हर प्राण कोषा सत्ता में भीगा है। दो प्राण कोशों के बीच की रिक्त स्थली में से जीवन गमन करता रहता है। गर्भावस्था में क्षैतिज विधि से गमन करता है और उस तरह शिशु को जीवंत बनाता है। शिशु के बाहर आने पर जीवन क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर दोनों विधियों से घूमता है। दोनों विधियों से संचार को स्थापित करके प्राण कोषाओं के बीच के रंध्रों में से घूमता रहता है। उसकी स्पीड की कोई गणना नहीं की जा सकती। अनंत गति के रूप में यह पुन्जाकार है। उसकी गति के आगे संख्या हार जाती है। किसी भी विधि से जीवन की गति का संख्याकरण नहीं किया जा सकता।

**प्रश्नः अस्तित्व क्यों है? अस्तित्व का प्रयोजन क्या है?**

उत्तर: अस्तित्व का लक्ष्य सहअस्तित्व में मानव द्वारा ज्ञान अवस्था में प्रमाणित होना। इस लक्ष्य या प्रयोजन के लिए अस्तित्व है। दूसरे शब्दों में यही अस्तित्व का प्रयोजन है। इस लक्ष्य या प्रयोजन के लिए अस्तित्व में स्वयं स्फूर्त प्रगटन विधि है। ज्ञान अवस्था के प्रमाणित होने के लक्ष्य से ही सहअस्तित्व विधि से अस्तित्व में प्रगटन है। अस्तित्व में प्रगटन है पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और अंत में ज्ञान अवस्था। ज्ञान अवस्था में सहअस्तित्व का परम प्रमाण प्रस्तुत होता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## अध्ययन की विधि

**प्रश्नः हम जो अनुभवगामी विधि से अध्ययन कर रहे हैं, क्या हमको वही समझ में आएगा जो आपको आया है?**

**उत्तर:** मेरे सम्मुख जो प्रकृति प्रस्तुत हुई थी, वही आपके लिए अध्ययनपूर्वक प्राप्त होने वाले साक्षात्कार में होता है। मैं जो आपके सम्मुख प्रस्तुत हो रहा हूँ, मैं एक प्रकृति का अंश ही तो हूँ। आप भी प्रकृति का, प्रकृति से ही अध्ययन कर रहे हैं। साधना समाधि संयम पूर्वक मेरी अर्हता बन गयी जिससे प्रकृति मेरे सम्मुख अध्ययन के लिए प्रस्तुत हो गयी। अब आप के सामने भी वही अध्ययन करने की सम्भावना है।

**प्रश्नः अनुभवगामी विधि में अध्ययन विधि क्या है?**

**उत्तर:** परिभाषा से आप शब्द के अर्थ को अपनी कल्पना में लाते हैं। परिभाषा आपकी कल्पनाशीलता के लिए रास्ता है। उस कल्पना के आधार पर अस्तित्व में वस्तु को आप पहचानने जाते हैं। आपकी कल्पनाशीलता वस्तु को छू सकता है। वस्तु को जीवन ही समझता

है। जीवन समझता है तो वह साक्षात्कार ही होता है। अस्तित्व में वस्तु को पहचानने पर वस्तु साक्षात्कार हुआ। वस्तु के रूप में वस्तु साक्षात्कार होता है शब्द के रूप में नहीं होता है। ऐसे साक्षात्कार होने पर वह बोध और संकल्प में जा कर अनुभव मूलक विधि से पुनः प्रमाण बोध में आ जाता है। प्रमाण बोध में आ जाने से निश्चयन हो जाता है कि यह वस्तु ऐसे ही है।

अध्ययन की शुरुआत सहअस्तित्व से करना सही है। सहअस्तित्व में ही जीवन है, रासायनिक भौतिक क्रिया है। सहअस्तित्व साक्षात्कार होना, फिर उसमें जीवन साक्षात्कार होना, जीवन साक्षात्कार होने के बाद अजीर्ण और भूखे परमाणु साक्षात्कार होना। साक्षात्कार तक ही आप की लगन की जरूरत है। साक्षात्कार होने के बाद बोध और अनुभव में समय नहीं लगता। वह तत्काल होता है। देरी उसके लिए तैयारी में लगता है।

अर्हता के बिना कोई चीज प्रमाणित नहीं होता। सत्य को समझने की अर्हता और सत्य को प्रमाणित करने की अर्हता अध्ययन से ही आती है। सभी वस्तुओं को अस्तित्व में पहचानना अध्ययन है जो एक क्रमिक विधि है, जिसमें समय लगता है। अध्ययन साक्षात्कार तक ले जाता है। साक्षात्कार हो जाना अध्ययन होने का प्रमाण है।

समझने के सूत्र हैं नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म और सत्य। व्याख्या रूप में चारों अवस्थाएं हैं जो प्राकृतिक गवाहियाँ हैं। चारों अवस्थाओं का रूप, गुण, स्वभाव और धर्म है यह समझने की वस्तु है। प्राकृतिक गवाहियों का ही अध्ययन है। अस्तित्व क्यों है, कैसा है यह आपको समझ में आना है। सहअस्तित्व में व्यापक वस्तु भी है, एक-एक वस्तु भी है। व्यापक वस्तु का वैभव है पारगामियता, पारदर्शियता और व्यापकता। इन तीन स्वरुप में जब व्यापक समझ में आता है तब इस में समाई हुई अनंत प्रकृति हमको साक्षात्कार हो जाता है।

मुझको जैसे अध्ययन हुआ आपको भी होगा।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## समझने के लिए जब प्राथमिकता बन जाती है तभी समझ में आता है

**प्रश्नः आपकी बात तर्क संगत है और मेरी कल्पना में भी आती है। कब मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ मैं इस बात को समझ गया हूँ?**

**उत्तरः** आपकी कल्पनाशीलता शब्द से वस्तु तक पहुँचती है। सहअस्तित्व ही समझने की वस्तु है। वस्तु को जीवन द्वारा पहचान लेना ही समझ है। कल्पनाशीलता समझ नहीं है। कल्पनाशीलता हर व्यक्ति का अधिकार है। जीवन में कल्पनाशीलता वस्तु को पहचानने के

लिए आधार है। कल्पनाशीलता का प्रयोग करते हुए हमें वस्तु को पहचानना है। वस्तु को समझे तो उसका साक्षात्कार हुआ। समझ में आने का प्रमाण है साक्षात्कार होना। हमको साक्षात्कार नहीं अर्थात् हम अध्ययन नहीं किए हैं।

समझने के लिए जब प्राथमिकता बन जाती है तभी समझ में आता ही है। प्रस्ताव को सुनने के बाद आपकी कल्पना में ऐसा लग सकता है कि आप समझ गए! कल्पना में वस्तु झलकता होगा तभी आप मान लेते हो कि आप समझ गए! जबकि वस्तु को समझने के बाद उसके साक्षात्कार होने का खाका अभी बचा ही है।

आपके जीवन में शब्द द्वारा कल्पनाशीलता से जो स्वरुप बनता है, उसके मूल में अस्तित्व में जो वस्तु है वह जीवन जब स्वीकार लेता है, तब आपको वह साक्षात्कार होता है। जैसे ''पानी'' एक शब्द है। पानी वह है जो प्यास बुझाता है, धरती की, वृक्षों की, जीवों की और मानव की प्यास। यह सुनने के बाद आपके मन में पानी वस्तु के बारे में कल्पना आती है। उस कल्पना के सहारे आप धरती पर पानी वस्तु को पहचान लेते हो। पानी को पहचान लिया तो पानी आपको साक्षात्कार हुआ। उसी तरह ''न्याय'', ''धर्म'' और ''सत्य'' तीन शब्द हैं। ये शब्द निश्चित वस्तुओं को इंगित करते हैं जो अस्तित्व में वास्तविकता हैं। आप जब उनको सटीक पहचान लेते हो तो आपको वे समझ में आ जाते हैं। ''सत्य'' से सहअस्तित्व ही इंगित है। सत्य समझ में आ गया अर्थात् साक्षात्कार पूरा हुआ। साक्षात्कार पूरा होने के बाद बोध और अनुभव में देरी नहीं है। वह तत्काल ही होता है।

**प्रश्न: पानी को अभी हम जीव चेतना में पहचानते हैं, क्या इसका मतलब है क्या हमको पानी का साक्षात्कार हुआ है?**

**उत्तर:** नहीं। जीव चेतना में पानी को मानव उसे अपने लिए उपयोग के अर्थ में ही पहचानता है। जीव चेतना में मानव पानी के साथ अपने सम्बन्ध, पानी के स्वभाव और धर्म को नहीं पहचानता। यही कारण है मानव जीव चेतना में जीते हुए पानी के साथ अपने कर्तव्य को नहीं निभा पाता। समझदारी के बाद मानव को पानी के साथ अपने कर्तव्य का बोध होता है। पानी को संरक्षित करने का दायित्व निर्वाह समझदारी के बाद ही होता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## अध्ययन तृप्ति का मार्ग

**प्रश्न: जीवन मध्यस्थ दर्शन के अध्ययनपूर्वक कैसे तृप्त होता है? इसको सिलसिले से फिर से बताइये।**

**उत्तर:** भ्रमित स्थिति में भी जीवन में न्याय, धर्म और सत्य की अपेक्षा रहती है। मध्यस्थ दर्शन द्वारा न्याय, धर्म, सत्य का प्रस्ताव शब्द के रूप में विचार में पहुँचा। इससे न्याय, धर्म, सत्य की अपेक्षा की पुष्टि हुई। इस शब्द से सम्बंधित वस्तु वहाँ नहीं रहा। शब्द द्वारा सहअस्तित्व ''होने'' के रूप में स्वीकार हो जाता है। लेकिन जीने जब जाते हैं तो शब्द भर पर्याप्त नहीं होता। ''सहअस्तित्व'' शब्द से इंगित वस्तु क्या है? सहअस्तित्व के बारे में प्राप्त सूचना के आधार पर हम सहअस्तित्व वस्तु को पहचानने का प्रयास करते हैं।

सहअस्तित्व के बारे में सूचना का परिशीलन करने हम चित्त में गए। जिसके फलन में सहअस्तित्व चित्त के चिंतन क्षेत्र में साक्षात्कार होता है। अध्ययन की शुरुआत चित्त से ही है। साक्षात्कार का यथावत बुद्धि में बोध हो जाता है। बुद्धि में जो बोध हुआ उसका तुंरत अनुभव हो ही जाता है।

आत्मा में हुए अनुभव का परावर्तन बुद्धि में अनुभव प्रमाण बोध हो जाता है। उसके साथ प्रमाणित होने का संकल्प पूरा होता है। उसी के अनुसार चिंतन और चित्रण होता है। उसी के अनुरूप वृत्ति में न्याय, धर्म, सत्य पूर्ण दृष्टियों से प्रमाण पूर्ण तुलन होता है। जिससे वृत्ति संतुष्ट हो जाती है यही न्याय है! यही धर्म है! यही सत्य है! इसके लिए अनुभव आवश्यक रहा। इस प्रकार अनुभव मूलक विधि से तुलन में न्याय घंटी बजाने लगा, धर्म घंटी बजाने लगा, सत्य घंटी बजाने लगा। इस विश्लेषण के अनुरूप मन में आस्वादन हुआ मूल्यों का और उन मूल्यों को प्रमाणित करने के लिए मन चयन करता है। अब मन में जो संवेदनाओं से जो सूचना हुई वह इसमें नियंत्रित हो गयी। उसके लिए कोई बाहर से बल नहीं लगाना पड़ा। मन में मूल्यों के आस्वादन के आधार पर जब चयन करने लगे तो प्रमाणित होने लगे। प्रमाणित करने के लिए एक तरफ संकल्प बुद्धि में और दूसरी तरफ मन में चयन । ये दोनों मिल कर प्रमाण परम्परा बन गयी।

इस पूरी बात को अच्छे से अपने में सुदृढ़ बनाओ इसको यदि प्रमाणित करना शुरू कर दिया आपने, फिर जो होना है वह हो ही जायेगा। अपने में प्रमाणित होने के बाद अपने आगे जो होने वाला प्रक्रिया है वह होगा ही। उसके लिए हमको अलग से सोचने की जरूरत नहीं है। इस तरह छोड़ने पकड़ने का पूरा झंझट ही समाप्त हो गया। समझ के करने हम जैसे ही जाते हैं तो प्रमाण ही प्रवाहित होता है।

यह जो मैंने समझाया यदि आपको समझ में आता है, उसमें आपका निष्ठा होता है, तो फिर उसको अनुभव करने में आपको क्या तकलीफ है? अनुभव के बाद प्रमाणित करने का जो हमारा प्रवृत्ति बनता है उसके अनुसार हमारा आचरण बनता है। अनुभव के बाद आचरण

में न आए ऐसा कोई बाँध नहीं है। आचरण में उसको आना ही है।

(अमरकंटक, अगस्त 2006)

## अनुभवगामी विधि

### प्रश्न: संयम के बाद आपने अनुभवगामी विधि को कैसे तैयार किया?

**उत्तर:** इससे पहले मैंने आपको बताया था साधना, समाधि, संयम ने अनुभव के योग्य पात्रता को मुझमें तैयार कर दिया फलस्वरूप अस्तित्व में मुझे अनुभव हो गया। अनुभव होने का प्रमाण व्यक्ति ही हो सकता है दूसरा कुछ हो नहीं सकता। अनुभव संपन्न होने के बाद मैंने सोचा हर व्यक्ति साधना तो करेगा नहीं। हर व्यक्ति के लिए साधना करने के लिए उद्देश्य ही नहीं बन सकता। हर व्यक्ति के लिए समाधि संयम विधि से गुजरने के लिए संभावना भी नहीं है। इसकी आवश्यकता ही नहीं बनता तो सम्भावना भी नहीं बनता। ऐसा तय करने के बाद इस फल के लोकव्यापीकरण के लिए क्या विधि हो?

अनुभव मूलक विधि से व्यक्त होने और अनुभवगामी पद्धति से उसे पहचान लेने पर अध्ययन पूरा हो जाता है। ऐसा मैंने स्व विवेक से सोचा। इसमें किसी दूसरे का सलाह नहीं रहा और उस वर्तमान में कोई ऐसा घटना नहीं रहा जो मुझे ऐसा करने के लिए सुझाये। यह मैंने अपने स्व विवेक से ही तय किया।

मानव जाति पठन तक तो पहुँच चुकी है यह तो मुझे पता था। निबंध, कथा, इतिहास ये सब पठन करते हुए देखा ही था मैंने। इसके लिए मेरे परिवार परम्परा में ''श्रुति'' के नाम से वेदाभ्यास करते ही रहे। इससे मैंने निश्चय किया मानव जाति पठन तक अध्ययन कार्य को स्वीकारा है। इसके बाद ईश्वरवादी विधि से दो विधियाँ बनी थी साधना और अभ्यास। इसको तप, उपासना, साधना, जप, अभ्यास आदि नाम दिया है। अब मेरे मन में यह बात आयी क्या पठन कराना और पढ़ाना इससे अनुभव होता है? इसमें निकला नहीं! पठन कोई अनुभव का आधार नहीं हो सकता। पठन एक सूचना का उच्चारण मात्र होगा। सूचना का उच्चारण प्रमाण नहीं हो सकती। अभी हम जितने भी किताब पढ़ते हैं वे केवल सूचना का उच्चारण ही है। अभी आप और हम जो संवाद कर रहे हैं वह भी सूचना के रूप में ही होगी। प्रमाण नहीं होगा। प्रमाण आदमी ही होगा। ऐसा मैंने तय किया। मैं साधना समाधि संयम पूर्वक जो अनुभव को पाया तो उसका प्रमाण मैं ही हूँ, न कि मेरे द्वारा लिखी हुई कोई किताब। किताब केवल सूचना है।

इस तरह मेरे द्वारा यदि कोई व्यक्ति अध्ययनपूर्वक इस फल को पाता है तो वह स्वयं ही प्रमाण होगा। इस निष्कर्ष पर मैं आ गया। मैंने जो कुछ भी लिखा है वह किसी वस्तु को

इंगित करने के लिए है। वह वस्तु सामने व्यक्ति के समझने के लिए है न कि केवल पढ़ने के लिए! जीवन समझता है। जीवन को समझने के लिए क्या चाहिए? इसका शोध करने पर निकला शरीर के साथ जो उच्चारण करते हैं भाषा का उसके साथ परिभाषा को भी पढ़ने के लिए प्रावधानित कर दिया। परिभाषा विधि से वस्तु का वर्णन स्वीकार होता है। हर व्यक्ति के पास जो कल्पनाशीलता है वह उस वर्णन के साथ जुड़ता है। वह जुड़ने से कल्पनाशीलता उस वर्णन से जो अर्थ निर्धारित हुई उस आकार तक मन को पहुँचा देता है। उस आकार की वस्तु को जब अस्तित्व में मन पहचानने जाता है तो उसे अस्तित्व में वस्तु के रूप में पाता है। जैसे ''पानी'' एक शब्द है और पानी एक वस्तु है। ''पानी'' शब्द से पानी कैसा है, उसको मन तक पहुँचाने की व्यवस्था है। मन तक पहुँचने के बाद मन पानी को अस्तित्व में पहचान लेता है। प्यास बुझा देता है।

कल्पना से हम वस्तु को अस्तित्व में पहचानने जाते हैं। वस्तु मिल गया तो प्रमाण हो गया। नहीं मिला तो कल्पना ही रह गया। हर व्यक्ति कल्पनाशील है। यह प्रकृति प्रदत्त है।

पहचानने की वस्तुएं दो तरह की हैं कुछ वे हैं, जो इन्द्रियों द्वारा आंशिक रूप में पहचानी जाती हैं। इनको इन्द्रिय गोचर नाम दिया। दूसरी वे वस्तुएं हैं जो ज्ञान द्वारा ही पहचानी जाती हैं। इनको ज्ञान गोचर नाम दिया।

पानी, पेड़-पौधे, पत्थर आदि वस्तुओं को हम इन्द्रियों से प्राप्त संवेदनाओं के आधार पर पहचानते हैं। ''पानी से प्यास बुझती है'' यह ज्ञान हमको इन्द्रिय गोचर विधि से हुआ है। ऐसी बहुत सी चीजों का ज्ञान मानव को हो चुका है। लेकिन जो वस्तुएं केवल ज्ञान विधि से पहचानी जाती हैं वे करीब-करीब सभी मानव की पहचान से रह गए। जैसे ''जीवन'' ज्ञान विधि से ही पहचाना जाता है। व्यापक ज्ञान विधि से ही पहचाना जाता है। वस्तुओं का स्वभाव और धर्म ज्ञान विधि से ही पहचाना जाता है।

**प्रश्नः इन्द्रिय गोचर विधि से जो वस्तुएं मानव ने पहचानी क्या उनका ज्ञान उसमें पूरा हो गया?**

**उत्तरः** नहीं! केवल संवेदनाओं के अर्थ में ही उनकी पहचान हुई। वह शरीर संरक्षण के लिए पर्याप्त हुआ। शरीर के लिए जिन वस्तुओं की आवश्यकता थी उस तरह से पूरी हुई। किंतु जीवन की जो आवश्यकता रही उसके लिए ज्ञान गोचर विधि से पहचानने की आवश्यकता रही। वह भाग चुप ही रहा। ज्ञान गोचर विधि से जो वस्तुओं को पहचानना था वह परम्परा में पहचान में नहीं आया। इसलिए जीवन तृप्ति की बात प्रमाणित नहीं हुई। जीवन तृप्ति क्या है,

उसको मैंने देखा है। वह है सुख, शान्ति, संतोष और आनंद। यह मैंने अनुभव पूर्वक पाया।

अनुकूलता प्रतिकूलता इन्द्रियगोचर है।

सुख, शान्ति, संतोष, आनंद ज्ञान गोचर ही है।

इसकी आपको जरूरत है या नहीं, पहले यह तय ही कर लो! फिर इस पर सोचा जाए, चर्चा किया जाए, निष्कर्ष निकाला जाए। इसमें यही निकलता है हर व्यक्ति सुखी होना चाहता ही है।

**प्रश्नः ज्ञान गोचर वाला भाग मानव जाति के पहचान में आने से कैसे छूट गया?**

**उत्तरः** उस तरफ मानव गया ही नहीं! ज्ञान गोचर वाला पक्ष ही प्रमाण से सम्बंधित है। प्रमाण को लेकर विज्ञान ने यंत्र को अपनी विद्वता का प्रमाण माना। उससे मानव कट गया। ईश्वरवादी विधि से विद्वता का प्रमाण किताब को माना। उससे भी मानव कट गया। ज्ञान और विद्वता का ध्रुवीकरण अभी तक यंत्र और किताब के साथ ही हुआ है। मानव के साथ विद्वता का ध्रुवीकरण अभी तक हुआ ही नहीं। यह यह चर्चा ही नहीं हुई! जबकि आदमी का ही अधिकार है ज्ञान गोचर विधि! सुख, शान्ति, संतोष, आनंद की अपेक्षा मानव में ही है। कितना हम बुद्धुपन से चले हैं, नालायकियत से चले हैं, या बुद्धिमानी से चले हैं आप ही सोचो!

हर व्यक्ति आदि काल से सुखी होने की अपेक्षा रखता है, पर मानव को प्रमाण का आधार नहीं माना।

यह कितने बड़े अपराध का आधार हुआ है आप सोच लो!

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## प्रमाणित होने के लिए अध्ययन आवश्यक है

**प्रश्नः ''मैं सुख चाहता हूँ'' यह तो मुझे निश्चित है। मैं सुखी हूँ, या नहीं यह मुझे पता नहीं। निरंतर सुखी तो नहीं हूँ। इस जगह से आगे कैसे बढ़ें?**

**उत्तरः** शब्द, स्पर्श, गंध, रस और रूप इन्द्रियों में सुख जैसा भासता तो है पर सुख रहता नहीं है। सुख उसमें रहता नहीं है। सुख यदि उसमें ''होता'' तो उसकी निरंतरता होती। यह कसौटी है। इन्द्रियों से हमको जितनी भी चीजों में सुख भासता है उनमें अनुकूलता प्रतिकूलता ही होती है। इनमें सुख नहीं होता। अनुकूलता को हम सुख मान लेते हैं। पर वह ''सुख'' रहता

नहीं है! यही वह स्थली है जहाँ सारा आदमी जात बुद्धू बना है। बुद्धूपन की दूसरी ऊँचाई है बेवकूफ होना। तीसरी ऊँचाई है अपराधी होना। इन तीनों ऊँचाइयों में ही खड़े हैं सभी!

यदि सुख चाहिए तो ज्ञान गोचर वस्तुओं को पहचानने की जरूरत है। मानव परस्परता में विश्वास ज्ञान गोचर है। संबंधों का प्रयोजन ज्ञान गोचर है। धरती की अखण्डता ज्ञान गोचर है। आदमी के जीने के अधिकाँश भाग ज्ञान गोचर हैं, न्यूनतम भाग इन्द्रिय गोचर हैं।

अभी आप सहमति दे रहे हैं ज्ञान गोचर वस्तुएं पहचान में आनी चाहिए। लेकिन सहमति होना भर पर्याप्त नहीं है। सहमति के साथ निष्ठा होता है तब हम प्रमाण के पास आयेंगे यह आशा होती है। जैसे रोज चार किलोमीटर दौड़ने के लिए सब लोगों की सहमति हो सकती है। लेकिन कई लोग नहीं दौड़ पाते हैं। इसमें अक्षमता व्यक्त करते हैं। कई लोग चल भी पाते हैं। उसी तरह ज्ञान गोचर भाग के प्रति सहमत होते हुए भी उसको लेकर चल नहीं पाने की कमजोरी लोगों में रखा ही है।

सहमति के साथ यदि निष्ठा नहीं होती है तब हम प्रमाण के पास कैसे आयेंगे, ऐसी कल्पना भी नहीं किया जा सकता। सहमति के साथ निष्ठा जोड़ने पर ही अध्ययन हुआ। अध्ययन होने से सच्चाई को हमने पहचान लिया। सच्चाई को पहचानने के बाद हमारे जीने के लिए सरल मार्ग निकल गया। उसके बाद कोई रुकता नहीं है। सहमति के साथ निष्ठा होना ही जुड़ने की स्थली है। निष्ठा होने पर हम यदि अध्ययन में लग गए तो मानिए हम प्रगति क्रम में हैं।

अध्ययन में लगना ही निष्ठा का प्रमाण है। प्रमाणित होने के लिए अध्ययन आवश्यक है। अध्ययन के बिना हम प्रमाणित नहीं हो सकते हैं।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## मानव और प्रकृति

**प्रश्नः मानव और बाकी सारी प्रकृति में क्या फर्क है?**

**उत्तरः** मानव अनंत और असीम अस्तित्व के साथ सोचने, समझने और जीने योग्य वस्तु है। बाकी सब वस्तुएं प्रगटन क्रम में ''होने'' के रूप में हैं। इस तरह मानव ही अस्तित्व में दृष्टा है। मानव ही अस्तित्व को समझेगा, व्यापक को समझेगा और स्वयं को भी समझेगा। फलस्वरूप मानव का अस्तित्व में ''रहने'' का बात बनेगा। अभी हम न स्वयं को समझे हैं, न अस्तित्व को समझे हैं इसलिए जीने का रास्ता ही बंद हो गया। आदि काल से अभी तक

मानव अपने ''रहने'' के स्वरुप को पहचान नहीं पाया।

**प्रश्नः अभी तक मानव जीता नहीं रहा क्या?**

**उत्तरः** मानव अभी तक जीव चेतना में जिया है। जीव चेतना में जीते हुए भी जीवों से अच्छा जीने के लिए सोचा। क्योंकि मानव को कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता विरासत में मिला ही था। उसी के रहते मानव ने सामान्य आकांक्षा (आहार, आवास, अलंकार) और महत्वाकांक्षा (दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन) संबन्धी सभी वस्तुओं को प्राप्त कर लिया। इस तरह मानव अपनी परिभाषा के अनुरूप मनाकार को साकार करने के चौखट में आ गया। मनः स्वस्थता का चौखट टटोला तो देखा खाली पड़ा है! मनः स्वस्थता को लेकर हम दिवालिया हैं। मनाकार को साकार करने के पक्ष में हम समृद्ध हैं। यह आज तक की समीक्षा है। बिना मनः स्वस्थता के मनाकार को साकार करने के क्रम में ही यह धरती बीमार हो चुकी है। आगे की पीढ़ी कहाँ रहेगा? मनः स्वस्थता का चौखट कैसे भरेगा? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर में यह विकल्प है।

**प्रश्नः मानव के ''होने'' और ''रहने'' से क्या आशय है?**

**उत्तरः** मानव अपने ''होने'' को कल्पनाशीलता पूर्वक पहचान चुका है। कैसे रहना है? यह तय नहीं कर पाया है। मानव में संस्कार परम्परा के अनुरूप ही ''रहना'' बनता है। मानव का रहना इस तरह जीवों से भिन्न है। जीवों में वंश परम्परा के अनुरूप रहना बन जाता है। ''मानव परम्परा'' जैसी कोई चीज होती है, यह जागृति से पहले भी स्वीकृति रहती है। पर मानव परम्परा को कैसे रहना है? यह जागृति के बाद ही होता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## हर मानव समझने योग्य है

**प्रश्नः आप भय, प्रलोभन और आस्था के स्थान पर आत्म विश्वास से जीने की बात करते हैं। लेकिन आज की स्थिति में विश्वास की परम्परा नहीं बनी है। ऐसे में क्या हम अपने वातावरण के प्रति विरोधाभास में जीने के लिए बाध्य नहीं हो जायेंगे?**

**उत्तरः** इसमें समझदारी को केन्द्र में लाने की आवश्यकता है। परिवार में एक आदमी को प्रमाणित होना होगा। उस आदमी के प्रति सबको विश्वास होता है कि ''यह आदमी ठीक है।'' या ''इस आदमी के प्रति हमको कोई शंका नहीं है।'' मेरा उदाहरण लें तो मैं पहला आदमी था, मेरा जीना रहना सभी के लिए विश्वास का आधार बन गया। यह इस आधार पर है जब जागृति होती है, तो उससे वातावरण बदलता है। वातावरण हमारे अनुसार बदल जाता

है। हमारा जीना यदि बदल जाता है तो उसका प्रभाव होता ही है। हम जागृति पूर्वक यदि जीते हैं तो क्या परिवार में हमारा कोई विरोध भी करता है?

जागृति पूर्वक जीना = समाधान, समृद्धि पूर्वक जीना। इस पर प्रहार कौन कर सकता है? इस पर अविश्वास कौन कर सकता है? यह आदमी से बनता ही नहीं है। जागृति को अपनाएं या न अपनाएं यह दूसरे की स्वेच्छा पर निर्भर है। अपनाओ, चाहे न अपनाओ! इसका विरोध, या इस पर अविश्वास तो कोई कर नहीं पायेगा!

आधारभूत काम यहीं से है जो मैंने ऊपर कहा जो व्यक्ति उसमें टिक पाता है, वह आधारभूत काम कर सकता है। जो टिक नहीं पाता वह आधारभूत काम तो नहीं करेगा। परंपरा का ढांचा-खांचा बनने के बाद तो सभी सहमत होते ही हैं, समर्पित होते ही हैं। परम्परा बनने के बाद हर व्यक्ति समर्पित होता ही है।

**प्रश्नः समझदार होने में वातावरण का क्या योगदान है?**

**उत्तरः हमारी स्वीकृतियाँ ही हमारा वातावरण हैं।** मानव किस समय कैसे समझदारी के लिए करवट ले ले, इसका कोई अंदाजा नहीं लगा सकता। आज गलती करने वाला कल कितना सही हो सकता है इसको कोई सोच नहीं सकता।

अतः आदमी के सुधरने की सम्भावना सदा-सदा बना ही है। हर अवस्था में बना ही है। हम यदि सटीक रहते हैं तो हमारा वातावरण भी प्रभावित होता है। हम यदि सटीक नहीं रहते तो हमारा वातावरण हम पर दबाव डालता ही है। यह भी उसी विधि से है ''गुरु मूल्य में लघु मूल्य समाता है।''

**प्रश्नः आप हमारी जिस भी बात का उत्तर देते हैं, उसको मानव से ला कर जोड़ते हैं। ऐसा क्यों?**

**उत्तरः** सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व से संबंधित कोई भी बात होगी तो उसको हम बताएँगे। उसको अधर में छोड़ा नहीं जा सकता। सहअस्तित्व को समझने वाला मानव है। इसलिए मानव को छोड़ा नहीं जा सकता। इन दो ध्रुवों के बीच में ही सारा दर्शन है। एक तरफ सहअस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व दूसरी तरफ जागृत मानव। सहअस्तित्व का दृष्टा, कर्ता, ज्ञाता और भोक्ता जागृत मानव ही है।

**प्रश्नः समझने की प्रक्रिया में समझने और समझाने वाले के बीच सम्प्रेषणा सही होना जरूरी है...**

**उत्तर:** सम्प्रेषणा ठीक होने में दो मूल आवश्यकताएं हैं:

(1) समझाने वाला अपनी पूरी समझ को प्रकाशित कर सके।

(2) समझने वाला व्यक्ति उसको ग्रहण कर सके।

ये दोनों होने पर ही सम्प्रेषणा पूरा होता है। पूरे मन से सुनने के लिए आप आए हो यह मेरा स्वीकृति है।

हर मानव समझने योग्य है। हर मानव समझना चाहता है। इसके साथ ही हर मानव किसी आयु के बाद अपने को समझदार मान लेता है। ''मैं समझदार हो गया हूँ'' जब यह मान लेता है, तब उसके लिए समझने के दरवाजे बंद हो जाते हैं। इसके बाद सटीक बात उस तक पहुँचने में तकलीफ होती है। ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति जैसा उसने अपना जीने का तरीका बनाया है, उसके अनुकूल बातों को सुनता है और जो उसके अनुकूल नहीं हैं, उनको अपने सहूलियत के अनुसार तर्जुमा कर लेता है।

**प्रश्न: व्यवहार की सीमा क्या है?**

**उत्तर:** व्यवहार की सीमा है सम्बन्ध। संबंधों में न्याय प्रमाणित होना। सम्बन्ध का प्रयोजन के आधार पर पहचान हो जाना, उसकी ईमानदारी के साथ निर्वाह होना, परस्पर मूल्यों की अनुभूति होना, परस्परता में उनका मूल्यांकन होना फलन में उभय तृप्ति होना। व्यवहार में उभय तृप्ति ही मापदंड है।

नियति विधि वैभव = न्याय।

सम्बन्ध नियति विधि से होते हैं। सम्बन्ध को आदमी पैदा नहीं करता। आदमी केवल संबंधों को पहचान सकता है। न्याय में ''संबंधों की पहचान'' के बारे में कहा है। ''संबंधों का निर्माण'' नहीं कहा है। संबंधों को प्रयोजन के रूप में पहचाना वहां से न्याय का शुरुआत होता है। प्रयोजन = सहअस्तित्व में प्रमाण।

**प्रश्न: अनुभव से पहले हमसे अन्याय न हो क्या यह सम्भव है?**

**उत्तर:** नहीं। अनुभव से पहले परस्परता में कहीं न कहीं अन्याय होता ही है। जागृति के पहले न्याय का कोई स्थान ही नहीं है।

आज की स्थिति में एक छत के नीचे अनेक लोग हो जाते हैं, साथ में रह नहीं पाते।

अपना पराया का दीवार बना ही रहता है चाहे छोटा हो, या बड़ा हो। थोड़ा दीवार बढ़ गया तो द्वेष भी दिखता है। कम दीवार रहता है तो द्वेष दिखता नहीं है। अनुभव के पहले कोई न्याय नहीं है, कोई समाधान नहीं है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## ''अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन'' का मतलब

**प्रश्नः अपने प्रस्तुति को ''अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन'' नाम देने के मूल में आपका क्या आशय रहा?**

**उत्तरः** इसके पहले दो तरह के चिंतन आए पहला, रहस्य मूलक ईश्वर केंद्रित चिंतन; दूसरा, भौतिकवाद या अस्थिरता अनिश्चयता मूलक वस्तु केंद्रित चिंतन। ईश्वर केंद्रित चिंतन रहस्य से आरम्भ होता है और रहस्य में ही अंत होता है इसलिए उसको विशेषण दिया ''रहस्य मूलक''। रहस्य से कोई समाधान मिलता नहीं है। मानव में कल्पनाशीलता होने से रहस्य को लेकर अनेक प्रकार की चीजें लिख दी गयी। भौतिकवाद ने सिद्धांत रूप में अस्थिरता अनिश्चयता को प्रतिपादित किया है।

अब यह जो मुझसे प्रगट हुआ इसे भी तो कोई नाम देना था। मैंने अस्तित्व में ही सब कुछ देखा था। और मैंने मानव की हैसियत से ही देखा था। अस्तित्व मूल में है और मानव देखने/समझने वाला है इसलिये ''अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन'' नाम दिया।

**प्रश्नः इस को ''मध्यस्थ दर्शन'' आपने नाम क्यों दिया?**

**उत्तरः** इसमें मध्यस्थ सत्ता, मध्यस्थ बल, मध्यस्थ शक्ति और मध्यस्थ क्रिया का वर्णन है इस आधार पर इसको मध्यस्थ दर्शन नाम दिया।

प्रकृति में तीन तरह की क्रियाएं गवाहित हैं सम (बनना, या बढ़ना), विषम (गिरना, घटना) और मध्यस्थ (बने रहना)। जैसे पेड़ बढ़ता है, बने रहता है और एक दिन मर जाता है। बकरी का बच्चा पैदा होता है, जीता है और एक दिन मर जाता है। बने रहने की परम्परा होती है।

परम्परा के रूप में हरेक वस्तु सदा-सदा रहने के लिए है इसको पहचानने की आवश्यकता है। मध्यस्थता के आधार पर सम और विषम का भी अध्ययन किया जा सकता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## भ्रांत अभ्रांत

**प्रश्नः अनुभव सम्पन्नता के बाद मानव मानव पद में त्व संपन्न रहता है। मानव पद को आपने ''भ्रांत अभ्रांत'' भी कहा है। ''भ्रांत अभ्रांत'' का क्या अर्थ है?**

**उत्तरः** ''भ्रांत'' मानव प्रिय, हित, लाभ दृष्टियों से विचार करता है, कार्य करता है। ''निर्भ्रांत'' मानव न्याय, धर्म, सत्य दृष्टियों से विचार करता है, कार्य करता है। निर्भ्रांत होने के बाद कोई भ्रांत वाले काम करता नहीं है। निर्भ्रांत होने पर ''भ्रांत'' क्या है यह पता चलता ही है। यह वैसे ही है, जब हमको सही क्या है यह पता चल जाता है, तो गलत क्या है यह भी पता चल जाता है। गलती के लिए कोई अलग से अध्ययन करना नहीं पड़ता।

भ्रांत अभ्रांत से आशय है जो निर्भ्रांत हो कर भ्रांत और निर्भ्रांत दोनों का दृष्टा हो। यह इसलिए आवश्यक है, क्योंकि गलती को सुधारने के लिए गलती को देख पाना आवश्यक है। यह तभी तक है जब तक पूरी मानव परम्परा जागृति में परिवर्तित नहीं हो जाती। ''भ्रांत अभ्रांत'' अनुभव संपन्न व्यक्ति ही है, जो मानव पद में है। भ्रांत अभ्रांत का मतलब यह नहीं है अनुभव संपन्न व्यक्ति में भ्रान्ति भी रहेगा और निर्भ्रान्ति भी रहेगा।

सही को समझा है उसको गलती करने वाला गलत सिद्ध नहीं कर पाता। धीरे-धीरे गलती करने वाला सही समझने की जगह में आ जाता है। सहीपन किसी एक व्यक्ति से शुरू होता है।

**प्रश्नः इससे पहले ''सही'' हुआ कि नहीं?**

**उत्तरः** ''सही'' के बारे में मान्यता रही है। सही का प्रमाण हुआ नहीं।

''सही'' कुछ होता है ऐसी मान्यता रही है। पर सहीपन की परम्परा नहीं बन पायी। सहीपन की परम्परा से आशय है समझ जो आचरण में आए, संविधान में आए, शिक्षा में आए और व्यवस्था में आए। मध्यस्थ दर्शन सहीपन की प्रमाण सहित परम्परा के लिए प्रस्ताव है। उसी के लिए हम प्रयासरत हैं।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## विचार पहले, आचरण उसके बाद में

विगत में (आदर्शवाद ने) बताया आचरण पहले, विचार बाद में। आचरण के नियम बताये यह करो, यह मत करो। वह सब रूढ़ियों में परिवर्तित हो गया।

जबकि मध्यस्थ दर्शन के अनुसार विचार पहले, आचरण उसके बाद में । विचार में हम स्वस्थ हो जाते हैं, तो आचरण में स्वस्थ होते ही हैं। ''करो, न करो'' यह रूढ़ी है, समझ नहीं है। सोच विचार यदि पूरा हो जाता है, अनुभव मूलक हो जाता है तो वह आचरण में आता ही है। विचार में समाधान स्थापित हुए बिना कोई मानवीयतापूर्ण आचरण नहीं करेगा। उसके लिए अध्ययन ही एक मात्र उपाय है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## कैसे सुनें?

जो कहा जा रहा है, उतना ही सुनें उसके साथ मिलावट नहीं किया जाए। मिलावट करने से हम रुक जाते हैं। अनसुनी करने से हम रुक जाते हैं। अनदेखी करने से हम रुक जाते हैं।

यह कुल मिला कर जागृत मानव के रूप में होने के लिए सुझाव है। इसको ध्यान से सुनने की जरूरत है।

अनदेखी नहीं किए मतलब ध्यान देना शुरू कर दिए।

मिलावट नहीं किए मतलब सतर्क रहना शुरू कर दिए।

अनसुनी नहीं किए मतलब एकाग्रता आ गयी।

इस प्रस्ताव को पूरा समझने के बाद निर्णय लीजिये इसमें क्या कमी है। समझने के पहले ही हम इसमें कमी निकालने लगे, कुछ इसके बारे में निर्णय लेने लगे तो अनसुनी और अनदेखी होगी। इसको समझने के बाद विचार कीजिये यह हमारे लिए कितना सार्थक है, उपकारी है, जरूरत है। फिर कोई विरोधाभास लगता है, तो मुझे बताइये। हर सूत्र, हर बिन्दु मानव में समाने के लिए ही है। कुछ भी विरोधाभास में जाता ही नहीं है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## भाषा से ज्ञान तक

ध्वनि के एक तरीके को हम भाषा कह रहे हैं। इन्द्रियों के साथ शब्द तैयार होता है। शब्द अंततोगत्वा भाषा के नाम से आया। भाषा है भासना। शब्द के अर्थ से वस्तु का भास होना। शब्द के अर्थ से वस्तु का स्वरुप कल्पना में आना। अपनी कल्पना में आने के बाद वह साक्षात्कार हो जाए। वह अनुभव में आ जाए। वह प्रमाणित हो जाए। प्रमाणित होना अर्थात् जीने

में, बोलने में, समझाने में अनुभव प्रमाणित होना।

जैसे ''ज्ञान'' एक शब्द है। ज्ञान वह समझ है जो मानव के जीने में सामरस्यता के रूप में प्रमाणित होता है। पहले चार विषयों को ही ज्ञान मान लिया गया। वह पर्याप्त न होने पर पाँच इन्द्रियों के द्वारा होने वाली स्वीकृतियों को ज्ञान मान लिया। वह भी पर्याप्त न होने पर उसको भी नकारा गया और होना क्या चाहिए, इस पर सोचा गया। मैंने इस बिन्दु से शुरू किया था। मैंने जो प्रयास किया वह सफल हो गया। मैंने ज्ञान को पहचान लिया जो मानव के जीने में सामरस्यता के रूप में प्रमाणित होता है।

इन्द्रिय गोचर वस्तुओं का ज्ञान मानव को हो गया है। ज्ञान गोचर सब बचा हुआ है। मध्यस्थ दर्शन ज्ञान गोचर वस्तुओं की पहचान कराने के अर्थ में है। जैसे जीवन ज्ञान गोचर है। मानव मूल्य विश्वास, सम्मान, आदि ज्ञान गोचर हैं। ये ज्ञान गोचर वस्तुएं यदि साक्षात्कार होता है, तो अनुभव होता ही है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## अर्थ को समझना हर व्यक्ति के बलबूते का है

जीवन में स्वयं से कोई चीज छुपा नहीं है। शरीर को जब तक जीवन माने रहते हैं, जीवन छुपा ही रहता है। जीवन को जीवन मानने की आवश्यकता है। ऐसा होने पर धीरे धीरे प्रमाणित होना बनता है। हमारे विचार, इच्छा, संकल्प की तुष्टि और प्रमाण का पहचान इस ढंग से हम कार्य करना शुरू करते हैं, तब जीवन में अर्थ बोध होना सहज होता है। हमारे सारे सोच विचार को इसमें स्थिर करते हैं, तो अनुभव होने की सम्भावना बन जाती है।

मुझमें आशा की तुष्टि चाहिए। इस तुष्टि को क्या नाम दिया जाये? नाम एक ही होता है समाधान। मन में समाधान हो जाये! विचारों में समाधान प्रगट हो जाये। हर इच्छा में समाधान समा जाये। हर संकल्प में समाधान स्पष्ट हो जाये। ऐसी स्थिति में हम समाधानित हो जाते हैं। अनुभव मूलक विधि से अभिव्यक्ति इतना ही होता है।

अर्थ के साथ तैनात होने पर हमको बोध होता ही है। तत्काल हमें चित्त में साक्षात्कार की तुष्टि हो जाती है। फलस्वरूप अनुभव हो जाता है इतनी ही बात है। अनुभव के बाद हम कहीं रुकने वाले नहीं हैं। यह किसी दूसरे तरीके से नहीं होता।

सभी लोग शब्दों के रुप में ही प्रगट होंगे। उसके अर्थ को हर व्यक्ति समझता है। अर्थ को समझना हर व्यक्ति का सामर्थ्य है। अर्थ ही वस्तु है। वस्तु ही अर्थ है। सम्पूर्ण वस्तु अस्तित्व

में है। सम्पूर्ण अस्तित्व सहअस्तित्व स्वरूप में है। यह सम्पूर्ण अस्तित्व चार अवस्थाओं के रुप में प्रगट है। सम्पूर्ण वस्तु का नाम है। वह नाम हम सुनते हैं। नाम सुनकर अस्तित्व में वस्तु को पहचानना है इतना ही है।

मानव ने ही हर वस्तु का नामकरण किया। नाम से हर वस्तु का पहचान होता है। यह प्रक्रिया हर व्यक्ति में निहित है। केवल इस प्रक्रिया को प्रयोग करने की बात है। संवेदनशीलता के लिए प्रयोग किया सफल हुए। अब संज्ञानशीलता के लिए इसका प्रयोग करना है और सफल होना है। इतनी ही बात है।

संवेदनशीलता से हम सफल होंगे या संज्ञानशीलता से पहले इसको भी तय कर लो! संज्ञानशीलता के लिए झकमारी है। संवेदनशीलता से अपराध मुक्त होना बनता नहीं है। अपना पराया से मुक्त होना बनेगा नहीं।

(अगस्त 2006 अमरकंटक)

## अर्थ अस्तित्व में वस्तु है

सुनना भाषा है।

भाषा से समझना अर्थ है।

अर्थ अस्तित्व में वस्तु है।

वस्तु समझ में आता है तो हम अर्थ समझते हैं।

समझ जो है वह अनुभव है।

शब्द अनुभव नहीं है।

कई विधियों से हम छूट-छूट के चलते रहे, उनको जोड़ने की विधि अनुभव ही है।

वह विधि है अस्तित्व में वस्तु के रुप में अनुभव करना, प्रमाणित करना इतना ही है।

प्रमाणित करने में मानवीयतापूर्ण आचरण आता है। आचरण आने से व्यवस्था में जीना होता है। सारे वस्तु व्यवस्था के अर्थ में है।

समग्र व्यवस्था में जीने का सूत्र बनता है।

हम जितना जीते हैं उसके आगे का सूत्र अपने आप जीवन से निकलता ही जा रहा है।

सर्वतोमुखी समाधान को मन: स्वस्थता के रुप में मैंने अनुभव किया है।

(अगस्त 2006 अमरकंटक)

## चित्रण, साक्षात्कार और बोध

(अनुभव से पहले) चित्त में जो चित्रण होता है उससे संज्ञानीयता प्रमाणित नहीं होता। संवेदना के रुप में ही व्यक्त होता है।

अध्ययनपूर्वक बुद्धि में जो बोध होता है यही चित्त में साक्षात्कार है। वह अनुभव मूलक विधि से प्रमाण प्रस्तुत होता है।

चित्त में साक्षात्कार होने के बाद बुद्धि में बोध ही होता है। बोध होने के बाद अनुभव मूलक विधि से पुन: प्रमाण बोध बुद्धि में होता है। प्रमाण बोध का संकल्प होता है। प्रमाणित करने के लिए संकल्प होता है। संकल्प होने से उसका चिंतन होता है चित्त में। चिंतन के बाद उसका चित्रण होता है। उसे चित्रण द्वारा हम आगे प्रकाशित करना शुरू कर देते हैं।

अनुभवगामी विधि में सीधा साक्षात्कार बोध होता है चित्रण नहीं होता। तुलन से सीधे साक्षात्कार, साक्षात्कार से सीधा बोध, उसके बाद अनुभव और फिर अनुभव का परावर्तन बुद्धि, चित्त, वृत्ति और मन पर। अनुभव के परावर्तन विधि से चित्रण होता है।

मानव की कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु सहअस्तित्व में ही है। कल्पनाशीलता की रौशनी में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को साक्षात्कार बोध हो गया। अनुभव की रौशनी अध्ययन कराने वाले अध्यापक में बना ही रहता है। फलस्वरूप अध्यापक के अनुभव की रौशनी में विद्यार्थी की कल्पनाशीलता विलय हो जाती है। अनुभव की रौशनी विद्यार्थी में प्रभावी हो जाती है।

(अगस्त 2006 अमरकंटक)

## न्याय, धर्म, सत्य

न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक तुलन करने की बात वृत्ति में रखा हुआ है। उससे संबंधित शब्द हम सुनते हैं। शब्द से संबंधित वस्तु शरीर मूलक विधि से वृत्ति में आता नहीं है। वृत्ति में सहअस्तित्व 'होने' के रुप में शब्द से स्वीकार हो जाता है। न्याय, धर्म, सत्य को 'रहने' के रुप में पहचानना शेष रहता है। 'शब्द' से इतना उपकार हुआ कि न्याय, धर्म, सत्य होने के रुप में स्वीकार हो गया। जब कार्य रुप में गए तो शब्द पर्याप्त नहीं हुआ। सत्य शब्द से जो

सहअस्तित्व इंगित है वह क्या है? इस जगह में हम पहुँचते हैं। यह होने पर सहअस्तित्व चित्त में ही साक्षात्कार होता है चिंतन क्षेत्र में। साक्षात्कार होने पर बोध होता ही है। बोध होने के बाद प्रमाण बोध बुद्धि में पुनः होता है। अनुभव प्रमाण बोध होने के बाद बुद्धि चिंतन के लिए परावर्तित होती ही है। फलस्वरूप उसके अनुरूप चित्रण होता है। ऐसा चित्रण होने से सामने वाले व्यक्ति को बोध करने के लिए वस्तु मिलने लगी।

संकल्प प्रमाणित होने का गवाही है।

चिंतन चित्रण का पृष्ठभूमि है।

संकल्प प्रमाणित होने के लिए बीज है! उसके लिए चिंतन एक आवश्यक प्रक्रिया है। ताकि वृत्ति तृप्त हो सके कि यही न्याय है! यही धर्म है! यही सत्य है! यह होने कि लिए अनुभव आवश्यक रहा।

इस तरह अनुभव मूलक विधि से सत्य तुलन में घंटी बजाने लगा! धर्म घंटी बजाने लगा! न्याय घंटी बजाने लगा! फलस्वरूप संवेदना से जो सूचना मिली वह इसमें नियंत्रित हो गयी। अपने आप! इसमें कोई बल, पैसा, या नियम लगाने की जरूरत नहीं है। स्वाभाविक रुप में यह हो जाता है। इस प्रकार विचार में न्याय, धर्म, सत्य समाहित हो जाता है।

इन विचारों के आधार पर मन में मूल्य जो स्पष्ट हुए उनका आस्वादन मन में हुआ। मन में हुए इस आस्वादन के अनुसार चयन करने लगे तो हम जीने में प्रमाणित होने लगे! प्रमाणित करने के लिए एक तरफ बुद्धि में संकल्प और दूसरी तरफ मन में चयन। ये दोनों मिलकर प्रमाण परंपरा बन गयी।

शिक्षा विधि से अध्ययन

अध्ययन विधि से बोध

बोध विधि से अनुभव

अनुभव विधि से प्रमाण

प्रमाण विधि से प्रमाण बोध का संकल्प

प्रमाण बोध संकल्प से चिंतन और चित्रण

चिंतन और चित्रण से तुलन और विश्लेषण

तुलन और विश्लेषण के आधार पर मूल्यों का आस्वादन और उसी के लिए चयन
(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## अध्ययन करने के लिए कोई अतिवाद करने की आवश्यकता नहीं है

जीव चेतना में हम जितना भी करते हैं, उसका गम्य स्थली सुविधा संग्रह ही है। सुविधा संग्रह में पहुँचना अच्छा तो लगता है, किन्तु इसका कोई तृप्ति बिन्दु नहीं है। सुविधा संग्रह का तृप्ति बिन्दु न अभी तक किसी को मिला है, न आगे मिलने की कोई सम्भावना है। इस निष्कर्ष पर यदि हम पहुँच जाते हैं तो समझो मानव चेतना की हममें अपेक्षा बन गयी।

मानव चेतना को पाने के लिए जो हमारा मन लगता है, उसे हम ध्यान कहते हैं। ध्यान देना = मन लगाना। अध्ययन में यदि मन लगता है, शनैः-शनैः हम मानव चेतना के प्रति स्पष्ट होते जाते हैं। एक दिन एक ऐसा बिन्दु आता है, जब वह हमारा स्वत्व के रुप में हो जाता है। उसी बिन्दु से जागृति प्रगट होती है।

ध्यान और अभ्यास आदि की परंपरागत जो भी विधियाँ हैं वे इसको छूती भी नहीं हैं। उन विधियों से स्वयम् का प्रयोजन और दूसरों के लिए उपकार दोनों सिद्ध नहीं होता। अध्ययन में ध्यान समया रहता है।

अध्ययन में मन लगना यदि पूरी ईमानदारी के साथ हो जाता है तो यह पूरा हो जाता है। मानव चेतना में प्रवृत्त होने के लिए पूरा रास्ता बना देता है। उसका प्रमाण है दसों क्रियाओं का प्रमाणित होना।

अध्ययन करने के लिए कोई अतिवाद करने की आवश्यकता नहीं है। अध्ययन करते समय अभी आप जीविकोपार्जन के लिए जो कर रहे हो उसके प्रति कोई त्याग, वैराग्य का बात आता नहीं है। आप अध्ययन यदि करते रहो, कोई ऐसी जगह आयेगी, कोई ऐसा क्षण आएगा जब मानव चेतना आपके लिए स्वीकार हो जायेगी। उस बिन्दु तक अध्ययन है।

जिस तरह पत्ता पकने के बाद वृक्ष से स्वतः ही गिर जाता है उसी प्रकार हमारी सारी निरर्थकतायें अपने आप गिर जाती हैं। पत्ता तोड़ने और पत्ता गिरने में कितना फर्क है आप ही बताओ? यह एक क्षति मुक्त प्रक्रिया है।

समझदारी के बाद यह तुलनात्मक विश्लेषण होती है हम जिस तरह से दाना पानी पैदा करते हैं, उससे संतुष्ट हो सकते हैं या नहीं? तुलन के बाद यदि हम पाते हैं कि वर्तमान का हमारा

दाना पानी अर्जित करने का तरीका ठीक है, तो किसको क्या तकलीफ है? यदि अनुकूल नहीं पाते हैं तो तुलन के बाद दूसरा प्रारुप अपने आप से ही हो जाता है। दूसरा प्रारुप कोई नया आदमी नहीं करेगा। समझने के बाद जीने का दूसरा प्रारुप अपने आप से उभर आता है।

उदाहरण के लिए देखो यौगिक विधि से प्राण सूत्रों में कैसे अपने आप से नया रचना विधि उभर आती है! हम जब तृप्त होते हैं, तो तृप्त हो कर जीने का प्रारुप अपने आप से हम में उभर के आ जाता है। एक ही प्रारुप से हर व्यक्ति जियेगा यह भी बेवकूफों की कथा है! एक प्रारुप में सभी आदमी जी नहीं पायेगा। हर आदमी के साथ प्रारुप बदलेगी। इसमें एक चीज ध्रुव रहेगी स्वावलंबन की स्थिति अर्थात् अपने परिवार की आवश्यकताओं से अधिक उत्पादन कर लेना। परिवार के सभी व्यक्तियों के शरीर पोषण, संरक्षण, शिक्षा, दीक्षा और समाज गति में भागीदारी का प्रबंध हो। इतने के लिए ही तो साधन चाहिए! उतने के लिए साधन हर परिवार में श्रम पूर्वक पैदा किया जा सकता है।

श्रम पूर्वक स्वावलंबन का प्रारुप आप अपने आप से ही निर्मित करोगे। एक ही प्रारुप में सभी उत्पादन करेंगे यह भी मूर्खता की बात है। इस तरह मानव एक मशीन नहीं है। मानव एक संवेदनशील और संज्ञानशील इकाई है। संज्ञानशीलता में संवेदनाएं नियंत्रित रहते हैं फलस्वरूप हम व्यवस्था में जी कर प्रमाणित हो सकते हैं। इतना ही तो सूत्र है। इस सूत्र को यदि हम ठीक तरह से उपयोग कर लेते हैं तो संसार के उपकार करने की जगह में आ जाते हैं।

यथास्थिति को बनाए रखते हुए, अध्ययन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। आवेश में आने से अध्ययन रुक जाएगा।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## अध्ययन प्रमाण के साथ ही है

किताब से सूचना है। अध्ययन मानव का मानव के साथ ही होता है। दो व्यक्ति के बिना प्रमाण का प्रश्न ही नहीं है। संज्ञानशीलता और संवेदनशीलता का यदि प्रमाण होना है, तो दो व्यक्तियों का होना ही है। संज्ञानीयता प्रमाणित होने के लिए दो आदमियों में एक समझाने वाला, एक समझने वाला। समझने वाला समझने पर और समझाने वाला समझा पाने पर स्वाभाविक रुप में संज्ञानीयता प्रमाणित होती है।

संज्ञानीयता प्रमाणित होने के बाद उसको कार्य रुप में लाने में कहीं भी अड़चन नहीं

है। जैसे मुझे मेरी बात को प्रमाणित करने में अभी तक तो कोई अड़चन नहीं है। ''हम सुनेंगे नहीं'' और ''हम करेंगे नहीं'' इन्हीं दो कालम में लोग खड़े हैं अभी। किन्तु इसका विरोध करना किसी से बनता नहीं है।

भाषा का प्रयोजन है सूचना पहुँचना। भाषा अध्ययन का आरंभिक भाग है।

सुनने पर, देखने पर आपको सूचना होता है। सुनने पर सर्वाधिक सूचना पहुँचता है, उससे कम देखने पर, उससे कम और बाक़ी संवेदनाओं से।

''मैं प्रमाणित हूँ'' यह आप के स्वीकारने पर आप प्रभावित होते हैं। उससे पहले तक आप जिज्ञासु बने रहते हैं। अध्ययन करने की इच्छा प्रगट करने तक आ जाते हैं। अध्ययन तभी होता है जब स्वयम् में यह स्वीकार हो जाता है, कि अध्ययन कराने वाला प्रमाणित है। यही ''व्यक्ति प्रमाण'' का आधार है।

अध्ययन अकेले में नहीं है। अध्ययन प्रमाण के साथ ही है। इसको हाई लाइट करने की जरूरत है। आज की दुनिया के लिए यह एक जबरदस्त मुद्दा है। अभी तक ये मानते हैं कि कान में अध्ययन है। कान से जो सुनाई पड़ता है, उसके अर्थ में अध्ययन है।

रासायनिक भौतिक वस्तुएं सभी कारीगरी विधि से हमको समझ में आते हैं। जैसे जंगल से करंज के बीज बटोर के लाना एक कारीगरी है। उसका तेल बनाना और फिर उसका डीजल बनाना एक कारीगरी है। इन सबको मिला कर हम गति या यातायात के लिए प्रयोग करते हैं।

जीवन को हम अध्ययन विधि से समझते हैं। व्यापक को हम अध्ययन विधि से समझते हैं।

मानव के पास कल्पनाशीलता है।

मानव सच्चाई को चाहता है।

मानव को सच्चाई का भास, आभास होता है।

इस आधार पर पठन से अध्ययन की प्रवृत्ति बनती है।

अब जैसे आपको सूचना मिली कि सत्य है, न्याय है, समाधान है

यही तीन प्रधान मुद्दे हैं अस्तित्व में। इन प्रधान मुद्दों के आधार पर मध्यस्थ दर्शन की

सारी सूचनाएं हैं। इन सूचनाओं के आधार पर हमें लगता है, सत्य कोई चीज है!

अध्ययनपूर्वक हम इस जगह पर पहुँच जाते हैं कि सत्य ऐसा है!

अध्यात्मवादियों ने भी सत्य का कुछ प्रतिपादन किया शब्दों में उससे कुछ सच्चाई भासी तभी तो उसके लिए न्योछावर हुए हैं वे लोग।

अब यहाँ प्रतिपादन है ''सहअस्तित्व ही परम सत्य है''।

सहअस्तित्व होने के आधार पर, प्रकृति और व्यापक वस्तु सतत् होने के आधार पर, मानव को अध्ययन करने की सम्भावना बन गयी।

पहले (अध्यात्मवादियों ने) ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या बताया था। और मिथ्या सत्य को अध्ययन कैसे करेगा करके रास्ता बंद था।

अब मध्यस्थ दर्शन कहता है स्थितिपूर्ण सत्ता में स्थितिशील प्रकृति सम्पृक्त है। पूर्णता के अर्थ में सम्पृक्त है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## अटकाव का कारण है आप अभी तक जैसे जिए हैं, उसके कुछ बिन्दुओं को अच्छा माने रहना

भ्रम मुक्ति का प्रमाण अपराध मुक्ति है। अपना पराया से मुक्ति है। इस जगह पर आने के लिए यह प्रस्ताव रखे हैं। यह प्रस्ताव आपको ठीक लग रहा है। यहाँ आने से पहले आप जैसे भी जिए, उससे संतुष्टि नहीं मिली पर अच्छी तरह से जीने के अरमान में आप जिए।

अब यह प्रस्ताव आपके अधिकार में आने में थोड़ा आनाकानी करता है। इस अटकाव का कारण है आप अभी तक जैसे जिए हैं, उसके कुछ बिन्दुओं को अच्छा माने रहना।

अब इस बात से यह पता लगता है हम चाहे कितने भी बिन्दुओं को अच्छा मान लें वह कुल मिला कर भ्रम ही है। जीव चेतना विधि से एक भी बिन्दु ठीक नहीं है। हमारा किन्हीं बिन्दुओं को ठीक मान लेना जीवन की दसों क्रियाओं के काम करने में बाधा करता है। हम इसलिए कुछ बिन्दुओं को ठीक मान लेते हैं क्योंकि जो कुछ भी अभी तक (जीव चेतना में) कर रहे हैं, वह अच्छे जीने की अपेक्षा से ही है। अब उससे अच्छा हुआ नहीं तभी तो आपमें जिज्ञासा हुई है।

**प्रश्नः यानी अभी मैं परिवार में जैसे जीता हूँ, क्या वो गलत है?**

**उत्तरः** गलत है! परिवार हम जैसा भी प्रारुप अभी किये हैं वह ठीक नहीं है। हम एक छत के नीचे होना सीखे हैं, रहना नहीं सीखे।

**प्रश्नः मैं जैसे खाता हूँ, रहता हूँ, नौकरी करता हूँ क्या वह गलत है?**

**उत्तरः** गलत है! जीव चेतना में हम जितना भी अच्छे से अच्छा प्रारुप बनाया सब गलत है।

आप लोगों में हिम्मत कहीं न कहीं से जुड़ा है वरना यह जो मैंने अभी बोला, उसको सुन कर टिके रहना आसान तो नहीं है। जीव चेतना में जीने वाला मानव मेरी इस बात को सुनकर हजार कोस दूर भागना चाहिए!

अब आप इस प्रस्ताव के पास अपनी मजबूरी वश आये हैं। जीव चेतना में अच्छे से अच्छा मान कर हम बहुत कुछ करते हैं। जैसे वैदिक विचार और परंपरा को इतना मैं श्रेष्ठतम मान कर चला, पर उससे कोई भी समाधान नहीं निकला। लोगों की तपस्या में कमी नहीं रहा पर निकला भून्जी भांग नहीं! सामान्य व्यक्तियों की आशा उनसे बनी रही। संसार इन लोगों से कुछ मिलता है, मिलता है सोच कर प्रणाम किया। लोग प्रणाम करने लगे, तो अपने को मान लिया कि हमने सब कुछ दे दिया! इस तरह से अहमतायें बढ़ी।

आपको लोग प्रणाम करने मात्र से आपका यह सोचना कि आप बड़े हो गए यह गलत है!

अध्ययन, तप, आदि से यदि कुछ मिलता है तो वह शिक्षा में, संविधान में, आचरण में आना चाहिए। व्यवस्था में उसकी सूत्र व्याख्या होनी चाहिए। इन चीजों का प्रयोजन है अपने पराये की दीवारों का ख़त्म होना। मानव, मानव की हैसियत से एक दूसरे की पहचान में आना चाहिए। इसके लिए मध्यस्थ दर्शन से पहले (मानव इतिहास में) कोई सूत्र नहीं निकला।

अनुभव से पहले व्यवहार में निश्चयता, आचरण में निश्चयता और निरंतरता नहीं बनती। अनुभव से पहले आदमी बीसों अवतारों में जी लेता है। एक ही आदमी एक समय में बहुत शांत दिखता है, वही आदमी दूसरे समय में श्राप दे देता है। यह कब तक चलेगा? यह जीवन के अपने आप में संतुष्ट न होने के कारण है। शरीर संतुष्टि का कारक होता नही है इसलिए अधूरापन ही लगता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

# तृप्ति कैसे लाई जाए?

प्रिय, हित, लाभ तुलन में रहते प्रिय, हित, लाभ का ही चित्रण रहता है। इस आधार पर वह चिंतन-क्षेत्र में जाता ही नहीं है। शरीर मूलक बात को चित्रण से आगे बढ़ाया नहीं जा सकता। उसमें केवल संवेदनाएं हैं और संवेदनाओं को राजी करने की प्रवृत्ति है। इस को संवेदनशीलता कहा। 'वेदना' इसलिए कहा क्योंकि सुख भासता है, सुख निरंतर रहता नहीं है। यह कष्ट बना रहता है। यह वेदना अतृप्ति का कारण है। इसलिए चित्रण में बार-बार दु:ख दखल करता है। बिगाड़ का संकेत चित्रण में आता ही है। वह मानव के लिए संकट है। उससे मुक्ति पाना मानव का काम है। भय, प्रलोभन वश हम कुछ करते भी हैं उससे कुछ सही हो जाता है, कुछ गलत हो जाता है। इसमें से जो ''सही'' वाला भाग है वह शरीर से संबंधित है। ''गलती'' वाला भाग चारों अवस्थाओं से संबंधित है। (क्योंकि सही की पहचान शरीर मूलक विधि से ही की गयी थी। जिससे चारों अवस्थाओं के साथ गलती होती है।) इस ढंग से हम सहीपन के बारे में हम केवल शरीर तक ही सीमित हो गए। 'सहीपन' को पहचानने का क्षेत्र इस तरह सिकुड़ गया। 'गलती' का क्षेत्र बढ़ गया। गलती का क्षेत्र बढ़ने से गलती की आदत बढ़ती गयी। कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रता रहा ही। मनाकर को साकार करने के लिए कोई भी अपराध को हम वैध मान लिए।

अब इस तरह हम चलते-चलते यहाँ तक पहुँचे जब आपके सामने यह सहअस्तित्व का मध्यस्थ दर्शन का प्रस्ताव आ गया। इससे आप रोमांचित हुए। क्योंकि आपकी बुद्धि की चित्रण के साथ सहमति मिली।

बुद्धि की चित्रण के साथ सहमति होने पर रोमांचकता तो है पर तृप्ति नहीं है।

तृप्ति कैसे लाई जाए?

तुलन में न्याय, धर्म, सत्य को प्रधान माना जाए। न्याय, धर्म, सत्य को हम चाहते तो हैं ही। यह हर व्यक्ति में है। मन में भी न्याय, धर्म, सत्य के साथ सहमति है। इस तरह हम जितना भी जाने हैं उससे यह देखना शुरू करते हैं, कि यह कहाँ तक न्याय है, क्या यह समाधान है, यह कहाँ तक सच्चाई है? यह जिज्ञासा करने से हम अपनी वरीयता को न्याय, धर्म, सत्य में स्थिर कर देते हैं। यही तरीका है न्याय, धर्म, सत्य को स्वयं में प्रभावशील बनाने का। स्वयं की न्याय, धर्म, सत्य के आधार पर जाँच करना। यह जाँच होने पर हम स्वयं में न्याय, धर्म, सत्य की प्राथमिकता को स्वीकार लेते हैं। यह स्वीकारने के बाद हम न्याय क्या है, सत्य क्या है, धर्म क्या है? इस खोज में जाते हैं।

इसमें जाने पर पता चलता है सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व ही परम सत्य है। यह बुद्धि को बोध होता है। इससे बुद्धि के स्वयं में संतुष्ट होने की सम्भावना बन जाती है। बुद्धि को सुझाव पहुँचा कि सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व सत्य है, समाधान रूपी धर्म है और मूल्यों के रूप में न्याय है। यह बुद्धि को स्वीकार होता है। बुद्धि को जब यह स्वीकृत हुआ तो तुरंत अनुभव में आ जाता है। इस तरह सहअस्तित्व में अनुभव होना हो जाता है।

बोध तक अध्ययन है। उसके बाद अनुभव स्वयं स्फूर्त है।

अब अनुभव मूलक विधि से प्रमाण बोध होने लगता है। प्रमाण बोध होने लगता है, तो हमारे आचरण में आने लगता है।

अब तुम्ही बताओ इसको मैं सत्य मानूँ या और कुछ को सत्य मानूँ?

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## प्रमाण के साथ ही समझ पूरा होता है।

भ्रमित स्थिति में भी आप सत्य की अपेक्षा करते रहे। सत्य की अपेक्षा आप में समाई रही। उसके बाद आपको सूचना मिली की यह अपेक्षा जीवन में है। जीवन में सहअस्तित्ववाद की सूचना को सोचने गए तो यह आपके तुलन में आ गया। इस तरह सूचना के रूप में न्याय, धर्म और सत्य आपके तुलन में आ गया। आपका तुलन इस प्रकार शुरू हुई तो आपके चित्त में साक्षात्कार होना शुरू हो गया। चित्त में साक्षात्कार पूरा होना बोध के पहले जरूरी है। साक्षात्कार पूरा होने के बाद ही बोध होता है। सहअस्तित्व बोध हो गया, तो अनुभव मूलक विधि से वह प्रमाण रूप में आने लगता है।

शरीर का क्रियाकलाप जीवन के साढ़े चार क्रिया में ही पूरा हो जाता है, अनुभव तक पहुँचने का इसमें कोई वस्तु रहता नहीं है। न्याय, धर्म, सत्य सूचना के रूप में पहुँची तो साक्षात्कार शुरू हो गया। अनुभव होने के बाद, अनुभव प्रमाण सहित हम पुनः प्रस्तुत हो पाते हैं।

भ्रमित अवस्था में इतना तक रहता है कि तुलन होता है। हर व्यक्ति प्रिय, हित, लाभ का तुलन करता ही है। इसलिए हम को यह स्वीकार होता है कि न्याय, धर्म, सत्य का भी तुलन होता है। यह बात हममें मान्यता के रूप में रहता है। जब हम प्रमाणित होने लगते हैं, तो इसमें हमें विश्वास होता है।

न्याय, धर्म, सत्य को मान्यता के आधार पर शब्द के द्वारा जब हम स्वीकारते हैं तो

उसका साक्षात्कार अपने आप से चित्त में होता है। चित्त में साक्षात्कार होने के फलस्वरूप बोध, बोध के बाद अनुभव, अनुभव के फलस्वरूप प्रमाण, फलस्वरूप प्रमाण बोध। यहाँ तक पहुँचने के बाद हम चिंतन पूर्वक हम प्रमाणित करने योग्य हो जाते हैं।

प्रमाण के साथ ही समझ पूरा होता है।

अनुभव के बिना समझ पूरा नहीं होता। तब तक शब्द ही रहता है।

मान्यता और आस्था के साथ हम अध्ययन शुरू करते हैं।

प्रमाण के आधार पर हम प्रमाणित हो जाते हैं।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## सूक्ष्म संवेदना

मानव का मन तीन दिशाओं में एक साथ काम करता है। मन जो तीन दिशाओं में दौड़ता है उसको कल्पना भी कह सकते हैं, मन की गति भी कह सकते हैं। चयन करने के लिए दौड़ता है मन। अन्य व्यक्ति क्या कर रहा है, कैसा दिखता है, क्या चाहता है यह मन द्वारा चयन में आता है। यह हमारे मन में प्रतिबिम्बित होता है। उसी के आधार पर हम दूसरे व्यक्ति से मंगल मैत्री पूर्वक बात कर सकते हैं।

दूसरे व्यक्ति को सटीक पढ़ पाने की क्षमता में व्यक्ति-व्यक्ति में अन्तर रहता है। दूसरे व्यक्ति के आशय को पढ़ पाना एक परिपूर्णता (अनुभव सम्पन्नता) की बात है। उसमें पैनापन है। हमारी अपेक्षाओं से लदा हुआ हमारा मन पूरा जिज्ञासा नहीं कर पाता। अपने मन को खाली करने पर ही सामने वाले का मन पढ़ने में आएगा। सामने वाले क्या चाहता है यह पता चलता है। क्या करता है यह पता चलता है। क्या होता है यह भी पता चलता है। खाली मन में विचार का भी प्रतिबिम्ब रहता है। खाली मन ही प्रतिबिम्बन के लिए निगेटिव (फोटोग्राफी जैसे) है। उससे हमारे लिए सामने व्यक्ति को समझने के लिए मदद हो जाता है। उसके पहले से हमारे पास यह योग्यता रहती है कि होना क्या चाहिए? करना क्या चाहिए? और रहना क्या चाहिए? इसको साथ में लेकर दूसरे की अपेक्षा के अनुसार अपनी योग्यता का भाषा स्वरूप में पहनाने जाते हैं। जिससे दूसरे की बात सटीक पहुँच जाती है।

यही सम्प्रेषणा का गुरु मंत्र है। यही सूक्ष्म संवेदना है। इन संवेदनाओं के साथ यदि हम सोचने लगते हैं, प्रवृत्त होते हैं तो हमारा बहुत सारा सम्प्रेषणा सफल होने लगता है।

अनुभवमूलक विधि से जीने में यह स्वाभाविक हो जाता है। अनुभवगामी विधि में भी ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि सूचना ठीक ग्रहण हो सके।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## कैसे सुनें कि समझ में आए?

(1) हम किस लक्ष्य से सुन रहे हैं समझ में आना या नहीं आना, उस पर निर्भर करता है।

हम जो कुछ भी सुनें, उसे मानव सहज लक्ष्य (समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व) के साथ जोड़ कर सुनें तो हमको अर्थ समझ में आता है। मानव लक्ष्य को छोड़ कर सुनते हैं, तो हम तर्क से जुड़ जाते हैं, समझने को छोड़ देते हैं।

जीने के लक्ष्य से सुनने से ही समझ आता है। केवल सुनना है, जीना नहीं है इस तरह से पूरा सुनना भी नहीं हो पाता।

लक्ष्य संगत श्रवण से समझ में आता है।

तर्क संगत श्रवण से समझ में नहीं आता है।

(2) इस प्रस्ताव को सुनने से पहले आप जैसे भी जिए, सीखे, किए, उसकी कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक स्मृतियाँ आप के साथ हैं ही। उन पूर्व स्मृतियों के साथ जोड़ कर यदि इस प्रस्ताव को सुनने का प्रयास करते हैं तो यह समझ नहीं आता। जो जितना कहा जा रहा है, केवल उसे ही सुना जाए पुराने किसी आधार के साथ इसे न सुना जाए।

आप आज तक शुभ चाहते रहे अब यह सर्वशुभ का प्रस्ताव आपके सम्मुख है। इस प्रस्ताव को शुद्धत: सुनने से ही यह समझ में आता है।

(3) ''मैं समझ सकता हूँ और सामने वाला समझा सकता है'', इस विश्वास के साथ आप सुनते हैं तभी आपको समझ आ सकता है। ''मैं समझा सकता हूँ और सामने वाला समझ सकता है'', इस विश्वास के साथ यदि आप प्रस्तुत होंगे तभी आप सामने वाले को समझा पाएंगे। मानव की हैसियत से ही इस दर्शन को समझा और समझाया जा सकता है।''मानव की हैसियत से ही मैं इसे पाया हूँ।''

यदि इस विश्वास के साथ नहीं चलते फिर या तो आप किसी को हांकते रहेंगे, या

दूसरा आपको हांकता रहेगा।

''सामने वाला नहीं समझा सकता है'' ऐसा मान लेने पर हम उस व्यक्ति से समझने का अपना रास्ता ही बंद कर देते हैं।''मैं समझ नहीं सकता हूँ, या मैं किसी भी व्यक्ति से कम हूँ'' ऐसा मान लेने से भी हम समझ नहीं पाते।

''सामने वाला नहीं समझ सकता'' ऐसा मान लेने पर हम उस व्यक्ति को समझाने का अपना रास्ता ही बंद कर देते है। उसकी जगह''मैं समझा नहीं पा रहा हूँ'' ऐसा सोचने पर आप में समझाने का नया तरीका अपने आप से ही उदगमित होता है।''मैं समझा सकता हूँ'' ऐसा आप तभी मानेंगे जब आप समझ को जीने में समाधान, समृद्धि के रूप में प्रमाणित कर चुके होंगे। उससे पहले आप अपने अधिकार को स्पष्ट करते हुए सूचना तो दे ही सकते हैं।

(4) भाषा इस प्रस्ताव को संप्रेषित करने का एक माध्यम है। इस प्रस्ताव को इस भाषा से समझा जा सकता है। भाषा परिवर्तित करते हैं, तो अर्थ संप्रेषित नहीं होता। विगत की किसी कल्पना से जा कर यह प्रस्ताव गुड़-गोबर हो जाता है।

''भाषा कठिन आपको लगती है मतलब आपको समझना नहीं है।'' यह वैसा ही है जैसे विज्ञान में $H_2SO_4$ से एक अम्ल इंगित होता है। अब यह भाषा आपको कठिन लगता है, तो बदल दीजिये इसको! आप प्रयास करके देखिये अर्थ इंगित नहीं होगा।

सहअस्तित्ववाद के इस प्रस्ताव का सरलीकरण इसकी भाषा बदलने से नहीं होगा। इसको जीना ही इसका सबसे मृदुल विश्लेषण है। यह प्रस्ताव जीने के लिए ही है।

सभी भाषाओं का अर्थ एक ही है। सभी भाषाओं को कारण, गुण, गणित के संयुक्त रूप में पहचान कर सभी भाषाओं में इस प्रस्ताव की सूचना को संप्रेषित किया जा सकता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## आप जो कहते हैं कि आपने समाधि संयम पूर्वक प्रकृति में पढ़ा उसका क्या अर्थ है?

प्रकृति अपने हर पन्ने को खोला। जैसा प्रकृति है वैसा हमारे सम्मुख प्रस्तुत हुआ। जैसे अभी हम देख रहे हैं वैसे ही। समझना और देखना एक ही चीज है मैंने पहले आप को बताया

है। मैं समझने योग्य ढंग से प्रस्तुत हुआ जिससे प्रकृति स्वयं हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता रहा। वैसे ही जैसे अभी मैं आपके सम्मुख प्रस्तुत हो रहा हूँ। मैं भी तो प्रकृति का एक अंग ही तो हूँ। जो मैं कह रहा हूँ वह अर्थ या वास्तविकता अस्तित्व में होना ही आप में स्वीकृत होता है। मेरे द्वारा जो अर्थ आप में पहुँचता है वह अस्तित्व में ही है। अस्तित्व में आपको बोध कराने की प्रक्रिया मैंने शुरू कर दिया। इसको अनुभवगामी कहा। मैं जो प्रस्तुत होता हूँ उसको अनुभव मूलक कहा।

अभी आप प्रकृति में से ही पढ़ रहे हो। अभी मैं एक व्यक्ति के रूप में प्रकृति हूँ। मेरे सम्मुख समग्र प्रकृति रही। साधना समाधि संयम का मतलब यही है। वह सब करने से यह हुआ। इसको मैंने अनुसंधान नाम दिया है। आप जो कर रहे हैं वह शोध विधि है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## साधन और साध्य

कीचड़ में खड़ा आदमी को पता लग गया कि यह कीचड़ है। इससे बाहर निकलना है, यह पता लग गया। बाहर निकलने का रास्ता अध्ययन है यह पता लग गया।

विचार मजबूत होते-होते इससे पार लगने का रास्ता पहचान ही लेते हैं।

वर्तमान में जैसे भी हैं, जैसे भी चल कर पहुँचे हैं, वर्तमान में हमारे पास जो कुछ भी है उसको साधन रूप में माना जाए, साध्य न माना जाए। इतना ही बात है।

साधन रूप मानने से हमारे बाहर निकलने का रास्ता बन जाता है। साध्य मान लेने से हमारा बाहर निकलने का रास्ता बनता ही नहीं है। बाँध लग जाता है।

वर्तमान में उत्साहित कैसे रहे? हम जो कुछ भी कर रहे हैं, वह इससे आगे निकलने के लिए रास्ता बनाने के लिए कर रहे हैं। न कि इसमें डूबने और डूब कर मरने के लिए। इस बात को आप स्वीकार सकते हैं हर व्यक्ति स्वीकार सकता है। क्योंकि हर व्यक्ति 51% से अधिक सही है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## ज्ञानावस्था की परंपरा विधि

''मेरा जीना आपके लिए दर्शन है। मेरा आचरण मेरे लिए दर्शन है। मेरे आचरण को मैं जानता मानता हूँ, इसलिए यह मेरा, मेरे लिए दर्शन है। मेरे आचरण को जो आप देखते हैं

आपके लिए प्रेरणा रूप में वह दर्शन है। अध्ययनपूर्वक यह प्रेरणा आपका स्वत्व बनता है। आपका जब यह स्वत्व बन जाता है तब यह आपका दर्शन हो गया। इस तरह ज्ञानावस्था की परंपरा विधि बनी।''

(1) अध्ययन मूलक विधि से हम साक्षात्कार तक पहुँचते हैं।

(2) परिभाषा विधि से हम शब्द के अर्थ को अपनी कल्पना में लाते हैं।

(3) उस कल्पना के आधार पर अस्तित्व में वस्तु को पहचानने जाते हैं। कल्पनाशीलता समझ नहीं है। कल्पनाशीलता सबका अधिकार है। कल्पनाशीलता का प्रयोग करते हुए हमको वस्तु को पहचानना है। परिभाषा आपकी कल्पनाशीलता के लिए रास्ता है। आपकी कल्पनाशीलता वस्तु को छू सकता है। वस्तु को जीवन ही समझता है। जीवन समझता है तो वह साक्षात्कार ही होता है।

(4) अस्तित्व में वस्तु पहचानने पर वह वस्तु साक्षात्कार हुआ। वस्तु के रूप में ही वस्तु साक्षात्कार होता है शब्द के रूप में नहीं होता।

(5) ऐसे साक्षात्कार होने पर वह बोध और संकल्प में जा कर अनुभव मूलक विधि से पुनः प्रमाण बोध में आ जाता है।

(6) प्रमाण बोध में आ जाने से निश्चयन हो जाता है कि यह वस्तु ऐसे ही है!

(7) सहअस्तित्व पहले साक्षात्कार होना। उसके बाद जीवन साक्षात्कार होना। जीवन साक्षात्कार होने के साथ ही अजीर्ण और भूखे परमाणु भी साक्षात्कार होना। हमको जैसे हुआ, वैसे ही होगा आपको। तभी आपका अध्ययन हुआ, जिससे आप हम प्रमाणित होंगे।

(8) अध्ययन एक निश्चित पद्धति है। निश्चित लक्ष्य को लेकर यदि आपमें कोई अवरोध नहीं है तो आपको समझने में समय नहीं लगेगा। सर्वतोमुखी समाधान संपन्न होना ही अध्ययन का लक्ष्य है। सर्वतोमुखी समाधान संपन्न हो कर जब हम जीने के लिए जाते हैं, तो समृद्धि स्वाभाविक रूप में आता है। रास्ता निकलता है। समृद्धि के लिए अनेक विधियाँ है। सर्वतोमुखी समाधान में अपने को प्रमाणित होना है इतना भर लक्ष्य रखने से ही आप पूरा समझ सकते हैं।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## हमारा अकेलापन दूसरों को गलत चाहने वाले मान लेने के कारण होता है

अकेलेपन के मूल में यह मान्यता है ''मैं सही हूँ, संसार गलत है और सही करने योग्य नहीं है।'' अकेलापन असहअस्तित्ववादी है। अकेलापन सहज नहीं है। इस बात की सच्चाई को अपने में जाँचने की जरूरत है।

अकेलेपन को दूर करने का इलाज है, इस बात की सच्चाई को स्वीकार लेना कि ''संसार सही (अच्छाई) को ही चाहता है।'', ''मैं अच्छा चाहता हूँ'' यह स्वीकृति हम में होती ही है। संसार को भी जब अच्छाई के लगावदार के रूप में जब हम स्वीकार लेते हैं तो हमारा अकेलापन भाग जाता है। संसार से विश्वास करने का सूत्र मिल जाता है।

समझने के क्रम में विद्यार्थियों के बीच में विश्वास का सूत्र ''समझ'' लक्ष्य की समानता है। ''बाकी विद्यार्थी जन भी मेरी तरह समझना और समझ कर जीना चाहते हैं और उसी के लिए प्रयासरत हैं।'' यह स्वीकारने पर ही साथियों के बीच विश्वास और स्नेह का सूत्र निकलता है। यह स्पर्धा से बिल्कुल भिन्न स्थिति है इसमें परस्पर पूरकता है।

स्वयं समझे होने पर संसार को समझ सकने योग्य मानने पर ही हम संसार के साथ व्यवहार कर सकते हैं। संसार को पापी, अज्ञानी, स्वार्थी मान कर हम किसी को कुछ समझा नहीं पायेंगे। ''समझाने की जिम्मेदारी'' को हम संसार के साथ इस तरह विश्वास करने के बाद ही स्वीकार सकते हैं। यही दया, कृपा और करुणा का सूत्र है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## जीवन ही जीवन को कैसे देखता (समझता) है?

मन का दृष्टा वृत्ति होता है। मन में निरंतर आस्वादन की क्रिया चल रही है उसको वृत्ति देखता है, मूल्यांकित करता है, विश्लेषित करता है। मानव में कल्पनाशीलता के ज्ञान सम्पन्नता को छूने का पहला घाट यही है। स्वयं में निरंतर आस्वादन क्रिया हो रही है इसको देख पाना मानव में ही सम्भव है। जीव जानवर इस तरह नहीं देख पाते। इसलिए जीव जानवर अपने शरीर वंश की व्यवस्था के अनुसार विषयों में जीते रहते हैं।

वृत्ति का दृष्टा चित्त होता है। यह मानव में कल्पनाशीलता के ज्ञान सम्पन्नता को छूने का दूसरा घाट है। वृत्ति द्वारा मन का किया गया विश्लेषण कहाँ तक ठीक हुआ? कहाँ तक न्याय है? कहाँ तक धर्म है? कहाँ तक सत्य है? चित्त में उपरोक्त का मूल्यांकन होता है। यही अध्ययन है। न्याय, धर्म और सत्य को अस्तित्व में वास्तविकताओं के रूप में पहचानने का

प्रयास ही अध्ययन है।

इस क्रम में बुद्धि चित्त का दृष्टा होता है। अर्थात् बुद्धि चित्त के क्रियाकलाप का दृष्टा रहता है। सहअस्तित्व सहज अध्ययन की स्वीकृति बुद्धि में ही होती है। बुद्धि में बोध होने के लिए सर्वसुलभ विधि अध्ययन विधि ही है। अध्ययन के लिए मन को लगा देना ही अभ्यास है।

आत्मा बुद्धि का दृष्टा होता है। अध्ययनपूर्वक बुद्धि में सत्य बोध पूर्ण होने पर आत्मा का सहअस्तित्व में अनुभव करना भावी हो जाता है। जीवन का मध्यांश (आत्मा) अनुभव करने के योग्य रहता ही है। बुद्धि में बोध के बाद आत्मा सहअस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व में अनुभव करता ही है। जब आत्मा अस्तित्व में अनुभव करता है तो सारा जीवन अनुभव में भीग जाता है। मन वृत्ति में, वृत्ति चित्त में, चित्त बुद्धि में, बुद्धि आत्मा में और आत्मा सहअस्तित्व में अनुभव करता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## ज्ञान और मानव

इकाईयों की परस्परता में खाली स्थली जैसे जो दिखती है वह खाली नहीं है, ऊर्जा है। यह ऊर्जा सब इकाईयों में पारगामी है परमाणु अंश से धरती तक में।

पारगामी होने का गवाही है इकाईयों की ऊर्जा सम्पन्नता। मानव में ऊर्जा सम्पन्नता ज्ञान के रूप में है।

मानव में ज्ञान तेरह स्वरूपों में करने के रूप में प्रगट होता है।

चार विषयों का ज्ञान (आहार, निद्रा, भय, मैथुन)

पाँच संवेदनाओं का ज्ञान (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध)

तीन ईषणाओं का ज्ञान (पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा)

और उपकार का ज्ञान (समझे हुए को समझाना, सीखे हुए को सिखाना, किए हुए को कराना)

ज्ञान के बिना मानव में यह सब नहीं होता। चार विषयों को समझे बिना हम उनको उपयोग नहीं कर सकते। पाँच संवेदनाओं को समझे हुए बिना हम उनका उपयोग नहीं कर

सकते। उसी तरह ईषणाओं और उपकार को समझे बिना हम उनको नहीं कर सकते। वह समझना ही ज्ञान है।

मानव में व्यापक ज्ञान के रूप में है। उपरोक्त तेरह स्वरूपों में जो भी मानव काम करता है उसके मूल में ज्ञान रहता है। इनमें से चार विषयों को पहचानने की बात जीव संसार में भी है। जीव जानवर चार विषयों में जीने के अर्थ में पाँच संवेदनाओं का उपयोग करते हैं । (जैसे जीव जानवर गंध को इस्तेमाल करके अपने आहार को खोजते हैं।) जबकि मानव पाँच संवेदनाओं को राजी रखने के लिए विषयों को पहचानता है। (जैसे मानव अपनी रस-इन्द्रियों को राजी रखने के लिए आहार ढूँढ़ता है।) यह संवेदनाओं को राजी रखने की बात मानव में है, जो जीवों में नहीं है। यह मानव और जीवों में मौलिक अन्तर है।

मानव जो कुछ भी करता है उसके मूल में ''अच्छा लगने'' की इच्छा है। सबसे पहले मानव को संवेदनाओं में ही अच्छा लगता है। यही मानव की कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का पहला प्रभाव है। इस आधार पर मानव को ज्ञान अवस्था में कहा है। मानव का सारा क्रियाकलाप सुख की अपेक्षा में है यहीं से मानव का अध्ययन शुरू होता है। इस विधि से जब हम मानव का अध्ययन करने जाते हैं तो यह विगत के इतिहास में जो कुछ भी हुआ, उससे जुड़ता नहीं है। इसके साथ विगत का सारा इतिहास ख़त्म। मानव के अध्ययन का आधार बिंदु यह हुआ, न की विगत की कोई भी चीज।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## लक्ष्य के लिए प्राथमिकता तय करने का उपाय

यह कुल मिला कर श्रेष्ठ क्या है इसको तय करने की बात है।

जीव चेतना में हम जितना भी करते हैं, उसका गम्यस्थली सुविधा संग्रह ही है। सुविधा संग्रह में पहुँचना अच्छा लगता तो है पर इसका कोई तृप्ति बिन्दु नहीं है। सुविधा संग्रह का तृप्ति बिन्दु अभी तक किसी को मिला नहीं है, आगे मिलने की सम्भावना भी नहीं है। इस जगह में हमको पहुँचना है । यहाँ यदि पहुँच जाते हैं, तो मानो हममे मानव चेतना की अपेक्षा बन गयी। मानव चेतना को पाने के लिए हमारा मन जो लगता है, उसे हम ''ध्यान'' कहते हैं। ध्यान देना = मन लगना। अध्ययन में यदि मन लगता है, तो शनैः-शनैः हम मानव चेतना को लेकर स्पष्ट होते जाते हैं। एक दिन ऐसा बिन्दु आता है, जब वह हमारा स्वत्व हो जाता। उसी बिन्दु से जागृति प्रगट होती है।

ध्यान, अभ्यास आदि की जो परम्परागत विधियाँ हैं, वे इसको नहीं छूती। इन विधियों

से स्वयं का प्रयोजन और दूसरों का उपकार दोनों सिद्ध नहीं होता।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## जीवन में अतृप्ति को आवेशित क्रियाकलाप से भर नहीं सकते

जीवन में अनुभव से पहले अतृप्ति (अधूरापन या खोखलापन) रहता ही है। इस अतृप्ति के रहते हमारी सतही मानसिकता (साढ़े चार क्रिया) में जीते हुए भी जीवन आवेशित क्रियाकलाप को पूरा स्वीकारता नहीं है। जैसे सुविधा संग्रह में ग्रस्त लाभोन्माद में चलते चलते किसी जगह पर पहुँच जाने के बाद ''यह सही है'' ऐसा हम मान नहीं सकते। बाकी दोनों आवेशों के साथ (कामोन्माद और भोगोन्माद) के साथ भी ऐसा ही है। यह इसलिए है क्योंकि जीवन में निहित अतृप्ति को इन उन्मादों से किसी तरह भी भरा नहीं जा सकता। कुछ दूर चलने पर खालीपन फिर कचोटने लगता है। यह सभी के साथ है। यही जीवन में सच्चाई के लिए शोध का स्त्रोत है। इस खालीपन के सहारे हम अध्ययनपूर्वक उन्मादों के चक्र व्यूहों से बुचक सकते हैं। इस खालीपन को भरने का एक मात्र उपाय सहअस्तित्व में अध्ययन ही है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## समझ के करो

अध्ययन में मन लगना यदि पूरी इमानदारी के साथ हो जाता है, तब यह पूरा होता है। अध्ययन करने के लिए कोई अतिवाद करने की आवश्यकता नहीं है।

यथास्थिति को बनाए रखते हुए अध्ययन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस स्थिति में आ जाएँ की अगली स्थिति आज की स्थिति से ज्यादा अच्छा है यह हमको भी स्वीकार होना और हमारे परिवार को भी स्वीकार होना।

''करना नहीं करना'' यह मूढ़ बुद्धि की बात है।

''होना नहीं होना'' यह विचार बुद्धि की बात है।

''यह जरूरत है यह जरूरत नहीं है'' यह विद्वता पूर्ण बुद्धि की बात है।

''होना क्या है'' इस बात पर सोचना। ''होना क्या है'' यह स्पष्ट होना चाहिए। ''होने'' के अर्थ में क्या करना है, क्या नहीं करना है यह निर्णय हो जाता है।

पहले लक्ष्य के प्रति स्पष्ट हुआ जाए। ज्ञान निश्चित हो जाता है फलस्वरूप करना

निश्चित हो जाता है। करना निश्चित करके ज्ञान निश्चित होता नहीं।

समझने का अधिकार हर व्यक्ति के पास हर अवस्था में रखा हुआ है। चाहे अपराधी मानते रहे, चाहे राजा मानते रहे सबको समझने का अधिकार समान है। समझने का अवसर युगों युगों बाद आज आया है मध्यस्थ दर्शन के अनुसंधान के सफल होने पर। सभी परिस्थितियाँ समझने के लिए अनुकूल हैं। यदि अपनी परिस्थितियों को बदलने के चक्कर में पहले पड़े तो बखेड़े में जायेंगे। हर व्यक्ति के लिए हर परिस्थिति में समाधान तक पहुँचने का रास्ता है। समाधानित होने के बाद समृद्धि का प्रारुप अपने आप में से ही उद्गामित होता है। समाधान प्राथमिक है। समाधानित होने में कोई अमीरी, गरीबी अड़चन नहीं है। यदि समाधान आपका लक्ष्य बनता है तो हर परिस्थिति आपके अनुकूल ही बनती है, प्रतिकूल बनता ही नहीं! इस बात की महिमा यही है।

समाधान मेरा प्राथमिक लक्ष्य है जब यह मुझमें तर्कपूर्ण निश्चयन होता है तब अध्ययन में मेरा मन लगता है। नहीं तो मन नहीं लगता।

ज्ञान सम्पन्नता के बाद ही जीने का तरीका पक्का हो जाता है। जीने के तरीका से ज्ञान स्पष्ट नहीं होता। विगत में ''कर के समझो'' पर जोर दिया गया। उसी को तप माना। अब आपके सामने यह प्रस्ताव है ''समझ के करो।'' इससे 'कर-कर के देखो' वाली सारी कथा ही समाप्त हो गयी। 'कर-कर के देखो' में नुकसान की स्थिति भी आ सकती है। समझ के करो पूरी तरह फायदेमंद है। इस तरह इस बात के साथ ''छोड़ने-पकड़ने'' का झंझट ही समाप्त हो गया। पहले समझ लो फिर निर्णय करो, क्या छोड़ना है क्या पकड़ना है!

समझने में कोई ''मात्रा'' नहीं होती। ज्यादा समझे कम समझे जैसी कोई बात नहीं होती। या तो समझे, या समझने की अपेक्षा रही। दश क्रिया में समझे, साढ़े चार क्रिया में समझने की अपेक्षा रही। समझना = बोध। बोध अपूर्ण नहीं होता।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## दृष्टा, दृष्टि और दृश्य

दृष्टा समझ आने से दृष्टि की बात स्पष्ट होती है। जीवन ही दृष्टा है।

जीवन साढ़े चार क्रिया में कितनी बातों का दृष्टा है और दश क्रिया में कितनी बातों का दृष्टा है यह मध्यस्थ दर्शन में स्पष्ट किया है। साढ़े चार क्रिया द्वारा जीवन संवेदनाओं का दृष्टा है। दश क्रिया के साथ संज्ञानीयता पूर्वक सहअस्तित्व में दृष्टा है। केवल जब शरीर ज्ञान

के साथ जीते हैं तो साढ़े चार क्रिया में ही जीते हैं। उसका अन्तिम लक्ष्य है संवेदना। शब्द, स्पर्श, रस, गंध, रूप इन्द्रियों को राजी रखना।

जीवन ज्ञान, सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान के बिना संज्ञानीयता सिद्ध ही नहीं होगा।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## अध्ययन में तुलन पूर्वक सीधा साक्षात्कार ही होता है

अध्ययन में तुलन पूर्वक सीधा साक्षात्कार ही होता है। चित्रण नहीं होता। चित्त में चिंतन क्षेत्र में ही साक्षात्कार होता है। चित्रण क्षेत्र में स्मृतियाँ है। पठन कार्य में चित्रण होता है स्मृति के रूप में। अध्ययन में प्रस्ताव के स्मरण की आवश्यकता है।

साक्षात्कार क्रमिक रूप से होता है, जो सहअस्तित्व में पूर्ण होता है। सहअस्तित्व में साक्षात्कार पूर्ण होने पर बुद्धि में बोध होता है। बुद्धि में बोध होने पर प्रमाणित करने का संकल्प होता है। प्रमाणित करने के संकल्प के साथ ही आत्मा अस्तित्व में अनुभव करती है। साक्षात्कार पूर्ण होने के बाद अनुभव होने तक में कोई देर नहीं लगती।

सारी देर साक्षात्कार पूरा होने तक ही लगती है । देर लगने का कारण है अध्ययन के लिए हमारी प्राथमिकता नहीं होना। भ्रमित स्थिति में जीते हुए हम कुछ पक्षों को सही माने रहते हैं। जबकि जीव चेतना में एक भी पक्ष सही नहीं होता। जिन पक्षों को हम सही माने रहते हैं, उनके प्रति हमारा वैचारिक चिपकाव बना रहता है। इस चिपकाव के कारण अध्ययन में ध्यान नहीं लग पाता। अध्ययन में ध्यान देने की आवश्यकता है। अनुभव पूर्वक ध्यान बना ही रहता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## दर्शन, वाद और शास्त्र

दर्शन = स्थिति गति = ज्ञान प्रमाण

अनुभव के स्वरूप को स्पष्ट करना = दर्शन

अनुभव संपन्न मानव में ''आत्मा में बीज रूप में अनुभव रहता है, जो परस्परता में दूसरे को बोध करवाने के लिए संप्रेषित होता है। जैसे व्यापक मेरे अनुभव (आत्मा में) में रहता है और उसका साक्षात्कार मेरे चित्त में होता है। यह अर्हता मुझ में है। जिसके फलस्वरूप व्यापक

वस्तु की महिमा पारगामियता और पारदर्शियता को मैं अपने चित्त में चित्रित कर सकता हूँ। मेरा इस तरह चित्रण करने पर वह आप के लिए अध्ययन का स्त्रोत बन जाता है। इस तरह व्यापक वस्तु को लेकर जो मैं बोलता हूँ, वह आपके मन में पहुँचता है, विचार में पहुँचता है, चित्रण में पहुँचता है। यदि मेरी प्रस्तुति आपको स्वीकार हो जाती है तब आप में वह बोध और अनुभव हो ही जाता है। इस प्रकार व्यापकता आपके अनुभव में भी आ जाती है।''

अनुभव मूलक विधि से हम चर्चा संवाद भी कर सकते हैं, इसलिए ''वाद'' भी लिखे। ''वाद'' में फैला कर लिखा गया है। आज के परिपेक्ष्य से जोड़ कर आगे दर्शन के लिए सीढ़ी लगाई गयी है।

शास्त्र आचरण के स्वरूप को चित्रित करते हैं। कायिक, वाचिक और मानसिक रूप में मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह मेरा आचरण है। मानसिक आचरण को मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान में लिखा। कायिक आचरण को आवर्तनशील अर्थशास्त्र में लिखा। वाचिक आचरण को व्यवहारवादी समाजशास्त्र में लिखा।

मानवीयतापूर्ण आचरण में ज्ञान, विवेक और विज्ञान प्रमाणित होता है। मानवीयतापूर्ण आचरण ही मानवकृत व्यवस्था का आधार है। मानवीयतापूर्ण आचरण रुपी प्रमाण चारों अवस्थाओं के साथ जुडा है। चारों अवस्थाओं के साथ में मानव का व्यवस्था रूप में व्यक्त होना ही स्वानुशासन है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## ''जीने'' के आंशिक भाग में ''करना'' है

आज की स्थिति में आदमी के पास ''करने'' का बोझ ज्यादा है। ''सोचने'' का बोझ उससे कम है। ''समझने'' का बोझ शून्य है। यह बोझ जीवन में ''इच्छा'' के स्वरुप में है। यंत्रों को संचालित करने को ''करना'' माना है। उसके लिए सोच जो है वह लाभ हानि के आधार पर तुलन है। पैसे के आधार पर लाभ हानि को पहचाना। आज की स्थिति में ''करने'' को ही ''जीना'' मान लिया गया है। अभी पूरा शिक्षा तंत्र और पूरा व्यवस्था तंत्र ''करने'' को ही ''जीना'' मान करके चल रहा है जिसके मूल में लाभ हानि को लेकर तुलन विश्लेषण है।

मध्यस्थ दर्शन का प्रस्ताव आज की जो स्थिति है उससे बिल्कुल उल्टा है। आज की स्थिति में ''करना'' है और ''करने'' के लिए ही ''सोचना'' है। यह तरीका ''समझने'' तक पहुँचता ही नहीं है। मध्यस्थ दर्शन में ''समझ के करने'' का प्रस्ताव है। ''समझ'' पूर्वक ही

परिवार में अपनी आवश्यकता का निर्धारण होता है उसके लिए क्या और कैसे ''करना'' है वह निर्धारण होता है। निर्धारण हेतु ''सोच विचार'' के लिए ''समझ'' पूरी रहती है।

''समझने'' पर ही ''जीने'' की विधि आती है। समझदारी से यह निकलता है ''जीने'' के आंशिक भाग में ''करना'' है।

''समझने'' की जरूरत को पूरा करने के लिए मध्यस्थ दर्शन का प्रस्ताव है। मध्यस्थ दर्शन में जीने की विधि के लिए प्रस्ताव है समाधान सम्पन्नता पूर्वक समृद्धि के साथ गति।

समाधान ''समझे'' बिना हो नहीं सकता।

(जनवरी 2007, अमरकंटक )

## नियम

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार: नियति विधि ही नियम है। सम्पूर्ण नियम अस्तित्व में हैं ही। नियम से ही अस्तित्व में पदार्थावस्था से प्राणावस्था, प्राणावस्था से जीवावस्था और जीवावस्था से ज्ञानावस्था प्रगट हुई।

भौतिकवाद या विज्ञान ने अपनी हवस के अनुसार नियम प्रतिपादित किए या बना दिए। जबकि नियम होते हैं, बनते नहीं हैं। ये जो नियम बनाए वे नियति विरोधी थे, उन पर चलने से धरती बीमार हो गयी। इन नियमो के रहते मानव का धरती पर बने रहना खतरे में है।

उसके पहले आदर्शवाद ने ''ईश्वरीय नियम'' बताये। सभी ईश्वरीय नियम ऐसे ही हैं ईश्वर के अधीन में रहो, ईश्वर को रिझाओ, तुम्हारा कल्याण होगा! ईश्वर क्या है? यह पूछा तो बताया ''तुम समझोगे नहीं।'' परम्परा में सामान्य आदमी का फंसावट यहीं रहा।

अब मध्यस्थ दर्शन से उपरोक्त दोनों विचार धाराओं का विकल्प आया उससे यह स्पष्ट होता है:

प्राकृतिक रूप में गवाहित रहना ही नियम है।

प्राकृतिक रूप में प्रमाणित रहना ही नियम है।

प्राकृतिक रूप में वर्तमान रहना ही नियम है।

अध्ययन के लिए इन तीनों बातों को आधार में रखना आवश्यक है। पदार्थावस्था, प्राणावस्था और जीवावस्था नियम को गवाहित, प्रमाणित और वर्तमानित करती रहती हैं। ज्ञानावस्था के मानव को भी अपने नियमो को पहचानने की आवश्यकता है। मानव ज्ञानावस्था में होने के कारण मानव में ज्ञान ही गवाहित, प्रमाणित और वर्तमानित होगा। समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और भागीदारी ये चारों जगह पर जब मानव पूरा हुआ, तभी मानव ने अपनी गवाही को प्रस्तुत किया। इस विधि से मानव का ज्ञानावस्था में होने का प्रमाण पूरा हो जाता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## साक्षात्कार और प्रमाणित होने की इच्छा

यह आपको पहले सूचित हुआ है जीवन में दस क्रियाएं हैं, जिसमें चित्त भाग में चिंतन और चित्रण नाम से दो क्रियाएं संपादित होती हैं। चिंतन क्षेत्र में साक्षात्कार होता है। साक्षात्कार क्या? भाषा से जो बताया, भाषा के अर्थ में जो वस्तु कल्पना में आई उसका साक्षात्कार होता है। वह साक्षात्कार हुए बिना अनुभव होता नही है।

साक्षात्कार होने के लिए न्याय, धर्म, सत्य को जीने में प्रमाणित करने की इच्छा समाहित रहना आवश्यक है। प्रमाणित करने की इच्छा नहीं हो, तो साक्षात्कार होता नहीं है। प्रमाणित करना जीने में कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित नौ भेदों से होता है। प्रमाणित होने की इच्छा को हटा करके हम साक्षात्कार कर लें, अनुभव कर लें यह होने वाला नहीं है। किसी को ऐसे साक्षात्कार, अनुभव नहीं होगा इस धरती पर! एक भी आदमी को नहीं होगा।

अभी थोड़ी अधिक आयु वालों के साथ ऐसा है, वे कसौटी में लाने में निष्णात हैं। जिम्मेदारी के लिए वे निष्णात नहीं रहते हैं। ''हम कसौटी में कस कर ही अपना सर इसमें डालेंगे। साक्षात्कार होता है कि नहीं देख लेते हैं, फिर देखेंगे! अनुभव होता है कि नहीं देख लेते हैं। अनुभव होता है तो उसके बाद में सोचेंगे।'' जबकि प्रमाणित करने की अपेक्षा के बिना श्रवण मात्र से यह अनुभव तक पहुँचता ही नहीं है। श्रवण से कल्पना का विस्तार तुलन तक हो सकता है, किंतु यदि इस तुलन के साथ हम प्रमाणित होने का उद्देश्य नहीं रखेंगे तो वह साक्षात्कार में पहुँचेगा ही नहीं!

श्रवण के साथ मनन होता है जिससे वृत्ति में तुलन होता है। क्यों तुलन करें? इस बात का स्पष्ट उत्तर होने पर ही तुलन सफल होता है और साक्षात्कार होता है। प्रमाणित करने के

लिए तुलन करें तो साक्षात्कार होता है। अन्यथा श्रवण केवल भाषा का ही होता है, अर्थ मिलता नहीं है। ऐसे में तुलन, केवल तुलन के लिए हो जाता है। इसमें समय व्यतीत हो जाता है। समय को यदि बचाना है तो ऊपर जो बात बतायी गयी है, उस तरीके को अपनाने की आवश्यकता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## संदेश, सूचना, फिर अध्ययन

संदेश, सूचना, फिर अध्ययन। अध्ययन के बाद रुकता नहीं है। आप हमारे बीच में संदेश और सूचना हो गयी है अब अध्ययन की बारी है। अध्ययन में हम कितना गतिशील हो पायेंगे, यह सोचने का मुद्दा है। अध्ययन के बिना कोई व्यक्ति विद्वान हो गया, अच्छापन प्रमाणित हो गया यह हो नहीं सकता। इसके अलावा ''अच्छापन'' को व्यक्त करने की दो जगह हैं ''सेवा'' और ''श्रम'' के रूप में। ज्यादा से ज्यादा बढ़िया सेवा कर सकते हैं, या श्रम कर सकते हैं इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकते। इसमें भी श्रमशीलता को लोगों ने अच्छा वास्तव में माना नहीं है। श्रम को अच्छा कहा भी होगा तो औपचारिक रूप में कहा होगा। यहाँ तक कि श्रम करने वाला भी यह तय नहीं कर पा रहा है कि श्रम करना अच्छा कार्य है, या बुरा। ''समझदारी'' का कुछ अता-पता नहीं है, इसलिए उसकी श्रेष्ठता की कोई बात ही नहीं है।

इसलिए समझदारी को जनमानस में डालने के लिए एक प्रयोग तो किया जाए! बर्बादी के लिए आदमी ने इतने प्रयोग किए हैं, एक प्रयोग आबादी के लिए भी किया जाए। यहाँ से हम शुरू किए। इसके लिए इस दशक में हम कुछ काम किए। करने पर पता चला हमारे थोड़े करने पर ही ज्यादा फल होता है। आबादी का फल ज्यादा विस्तार होता है, बर्बादी का फल सीमित होता जाता है। यह धरती की ही महिमा है। आदमी धरती के साथ इतना बर्बादी किया फिर भी धरती हर दुर्घटना को छोटा बना कर छोड़ देती है। इसलिए हर दुर्घटना सुधर सकता है, इस जगह में हम आते हैं। इससे मैं यह आशा करता हूँ धरती में अभी भी सुधरने की ताकत किसी न किसी अंश में रखी है। इसलिए धरती की इस ताकत को बुलंद करने के लिए अपने आबादी के प्रयोगों को बुलंद किया जाए।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## ''सत्य'' का आशय

**प्रश्नः ''सत्य'' शब्द से क्या आशय है?**

**उत्तर:** सत्य को मैंने अनुभव किया है। सहअस्तित्व रूप में सत्य को मैंने पहचाना। सहअस्तित्व ही परम सत्य है। सहअस्तित्व को मैंने ऐसा देखा है व्यापक वस्तु में एक-एक वस्तुएं (जड़ और चैतन्य) डूबी हुई, भीगी हुई और घिरी हुई हैं। भीगा होने से हर वस्तु का ऊर्जा संपन्न होना समझ में आया। यह मुख्य बात है। हर वस्तु ऊर्जा संपन्न है, इसकी गवाही है उसकी क्रियाशीलता। हर वस्तु अपने परमाण्विक स्वरूप में स्वयं स्फूर्त रूप में क्रियाशील है। चाहे वह भौतिक वस्तु हो, रासायनिक वस्तु हो, या जीवन वस्तु हो। जीवन को ही हम चैतन्य वस्तु कह रहे हैं। भौतिक और रासायनिक पदार्थों को हम जड़ वस्तु कह रहे हैं। भौतिक और रासायनिक वस्तुओं के मूल में परमाणु स्वयं स्फूर्त क्रियाशील हैं। जीवन भी अपने स्वरूप में एक परमाणु ही है। यह इस अनुसंधान की एक बहुत गरिमा संपन्न उपलब्धि है जो ईश्वरवादी नहीं पहचान पाये और भौतिकवादी भी नहीं पहचान पाए। परमाणु की चर्चा भौतिकवादियों ने बहुत किया। ईश्वर वादियों के पास परमाणु का चर्चा करने का कोई माद्दा नहीं रहा यह मैं मानता हूँ।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## मध्यस्थ क्रिया का मतलब

अस्तित्व में हर क्रिया (वास्तविकता) के तीन चरण हैं पैदा होना (उद्‍भव), बने रहना (विभव) और विलय होना (प्रलय)। यह हर क्रिया के साथ है। जैसे कोई धान पैदा होता है, बना रहता है कुछ समय तक, फिर खाद बन जाता है। कोई जीव पैदा होता है, कुछ समय तक जीता है, फिर मर भी जाता है। कोई मानव भी पैदा होता है, कुछ समय तक जीता है, फिर मर भी जाता है।

इन तीन चरणों में ''बने रहने'' के चरण में वस्तु की उपयोगिता है। ''बने रहने'' का स्वरुप ही वस्तु का ''आचरण'' है। वस्तु के बने रहने में ही उसका वैभव है, जिसकी ''परम्परा'' होती है। वही मध्यस्थ है। वस्तु की उपयोगिता सिद्ध होना ही उसकी ''मध्यस्थता'' है। पैदा होना (उद्‍भव) चरण उपयोगिता ''के लिए'' हैं। विलय हो जाने के बाद वह उपयोगिता नहीं रहा।

मध्यस्थ दर्शन का मतलब है अस्तित्व में वस्तुओं की उपयोगिता को समझना। मानव ही यह समझता है। समझने पर ही मानव अस्तित्व में स्वयं की उपयोगिता को सिद्ध कर पाता है। मानव की उपयोगिता या वैभव सिद्ध होती है मानव परम्परा में। मानव परम्परा के आधार-स्तम्भ हैं आचरण, शिक्षा, विधि (संविधान) और व्यवस्था।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## भ्रमित मानव में जीवन की स्थिति

**प्रश्नः आपने लिखा है ''मैं निर्भ्रमित अवस्था में आत्मा हूँ और भ्रमित अवस्था में अंहकार हूँ'', उसका क्या मतलब है?**

**उत्तरः** भ्रमित अवस्था में शरीर को ही ''मैं'' माने रहते हैं। जागृत होने पर जीवन को ''मैं'' के रूप में जानते और मानते हैं। जीवन एक गठनपूर्ण परमाणु है। जिसका मध्यांश आत्मा है।

**प्रश्नः भ्रमित मानव में इस मध्यांश का क्या कार्य रूप होता है?**

**उत्तरः** भ्रमित मानव में मध्यांश ''होने'' के रूप में है, ''रहने'' के रूप में नहीं! ''होना'' प्राकृतिक विधि से हो गया। ''रहना'' जागृति विधि से होता है। बुद्धि के साथ भी वैसे ही है। चित्त में न्याय, धर्म, सत्य तुलन दृष्टियों के साथ भी वैसे ही है। जीवन में कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता वश भ्रमित स्थिति में भी ज्ञान का अपेक्षा बना रहता है।

**प्रश्नः कोई आदमी गलती करता है, उसको फिर बुरा लगता है यह कैसे होता है?**

**उत्तरः** हम अच्छा होना चाह रहे हैं, पर अच्छा हो नहीं पा रहे हैं इसलिए होता है ऐसा।

**प्रश्नः ''अच्छा होना चाहने'' की बात कहाँ से आ गयी?**

**उत्तरः** अच्छा होना चाहने की बात हर मानव में है। अच्छे होने की कल्पना जीवन की साढ़े चार क्रिया में ही हो जाती है। हम अपने घर परिवार, गाँव, देश के लोगों से अच्छा होना चाहते ही हैं। यह साढ़े चार क्रिया में हुई कल्पना ही है। यह अच्छा होना चाहना ही आगे अध्ययन का आधार है।

**प्रश्नः अध्ययनरत मानव के साथ बुद्धि और आत्मा की क्या स्थिति है?**

**उत्तरः** अध्ययन काल में साक्षात्कार पूर्वक बुद्धि सहीपन को स्वीकारता है। अनुभव में पहुँच के, आत्मा और बुद्धि ही प्रमाण रूप में प्रगट होती है।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## भार बंधन और अणु बंधन

**प्रश्नः भार बंधन और अणु बंधन क्या है?**

**उत्तर:** परमाणुओं, अणुओं और उनसे रचित रचनाओं में संगठित होने की प्रवृत्ति है वही भार बंधन है। साम्य सत्ता (व्यापक) में संपृक्त रहने से परमाणु अंशों में चुम्बकीय बल सम्पन्नता रहती है। इस के कारण उनमें एक दूसरे के साथ जुड़ने वाला गुण है, जिसको ''भार बंधन'' कहा है। अनेक परमाणुओं के भार बंधन पूर्वक एक अणु के रूप में संगठित होने से ''अणु बंधन'' है। अणु बंधन से सारी प्राकृतिक रचनाएँ हैं जैसे मिट्टी, पत्थर, मणि और धातु। ये सभी रचनाएँ व्यवस्था के अर्थ में हैं।

जड़ जगत में भार बंधन और अणु बंधन की उपयोगिता है। जीवन गठनपूर्ण परमाणु है, इसलिए वह इस बंधन को नकारता है। जीवन सामयिक रूप में (शरीर यात्रा के दौरान) जड़ जगत की उपयोगिता को स्वीकारता है और स्वयं भी उसके लिए पूरक होता है।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## अस्तित्व में प्रगटन परिवर्तन है, उत्पत्ति नहीं

अस्तित्व स्थिर है उसमें कोई घट-बढ़ नहीं है। कोई चीज नया नहीं बन रहा है। अस्तित्व में प्रगटन है, उत्पत्ति नहीं है। जैसे पदार्थावस्था में प्राणावस्था को प्रगट करने की बात समाई ही रहती है। अस्तित्व के प्रगटन क्रम में परिवर्तन (गुणात्मक और मात्रात्मक) है लेकिन कोई उत्पत्ति या विनाश नहीं है। अस्तित्व ''होना'' और ''रहना'' है। ''होना'' प्राकृतिक है। ''रहना'' प्रगटन है। प्रगटन सहअस्तित्व में विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम और जागृति के स्वरूप में है।

यह इस धरती की ही बात नहीं है, अनंत धरतियों पर ऐसा ही है।

पदार्थ अवस्था में ही एक जलने वाला वस्तु और एक जलाने वाला वस्तु ये दोनों मिल कर यौगिक विधि से प्यास बुझाने वाली वस्तु (पानी) को प्रोजेक्ट कर दिए। कैसे इस सहअस्तित्व सहज प्राकृतिक गवाही को छुपाया जाए, कैसे इसको प्रगट करने में शरमाया जाए?

मध्यस्थ दर्शन प्राकृतिक गवाहियों का ही अध्ययन है।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## समाधान और समस्या

हर व्यक्ति अपनी समझदारी के आधार पर सोच विचार बनाता है। उस सोच विचार के आधार पर योजना बनाता है। उस योजना के आधार पर कार्ययोजना बनाता है। उस

कार्ययोजना के क्रियान्वयन पर फल परिणाम होता है। वह फल परिणाम समझदारी के अनुरूप हो गया, मतलब समाधान हो गया। यदि उसके विपरीत जाता है, तो समस्या हो गया।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## क्रियाशीलता और आचरणशीलता

सत्ता में संपृक्त होने से हर इकाई क्रियाशील है। बिना ऊर्जा के क्रियाशीलता हो नहीं सकती। सत्ता ही वह ऊर्जा है जिसमें एक-एक संपृक्त होने के कारण क्रियाशील है। हर इकाई की क्रियाशीलता ही उसके निश्चित आचरण के रूप में प्रगट होती है। जैसे दो अंश का परमाणु अपने में क्रियाशील है और वह अपने निश्चित आचरण को प्रगट करता है। वैसे ही एक वृक्ष भी अपने में क्रियाशील है और वह अपने निश्चित आचरण को प्रगट करता है। मानव के साथ ऐसा नहीं है। मानव क्रियाशील तो है, पर आचरणशील नहीं है मतलब अभी तक मानव अपने निश्चित आचरण को प्रगट नहीं किया है। अब इसको कैसे सुधारा जाए? निर्विरोध पूर्वक कैसे किसको सुधारा जाए? विरोध पूर्वक कोई सुधार होता नहीं है। दमन पूर्वक भी कोई सुधार होता नहीं है। विरोध का विरोध और विरोध का दमन आदमी करके देख चुका है, इससे कोई सुधार होता नहीं है। यहाँ हम कह रहे हैं विरोध का विजय। यह एक साधारण बात है। इसमें विशेष नाम की कोई चीज नहीं है।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## सत्ता में संपृक्त प्रकृति

व्यापक, शून्य जो इकाईयों के बीच खाली स्थली के रूप में दिखता है यह क्या है? यह कुछ भी नहीं है! यह कहना नहीं बनता! यहाँ यह बता रहे हैं यह व्यापक साम्य ऊर्जा है। प्रकृति की सभी इकाईयाँ इसमें संपृक्त (डूबी, भीगी और घिरी) हैं। व्यापक स्वयं में क्रिया न होते हुए भी, सभी क्रियाओं का आधार है। यह सहअस्तित्व का मूल स्वरूप है। यह मूल बात समझ में आने पर ही सहअस्तित्व का पूरा वैभव समझ में आता है।

इकाईयों का वैभव ही मध्यस्थता है। वैभव की ही परम्परा बनती है। जैसे दो अंश का परमाणु का एक निश्चित आचरण है। सभी दो अंश के परमाणुओं का वैसा ही निश्चित आचरण है। यही दो अंश के परमाणु का वैभव है। वैसे ही नीम के, आम के वृक्ष का आचरण निश्चित है। भालू, बाघ और गाय का आचरण निश्चित है। मानव का आचरण निश्चित होना अभी बाकी है। यही मुख्य मुद्दा है। मानव का निश्चित आचरण समझदारी के बिना आएगा नहीं।

इकाईयाँ क्रियाशील हैं यह समझ में आता ही है। साम्य ऊर्जा अपने में कोई क्रिया करता नहीं है। ज्ञान, विवेक, विज्ञान हैं ये अपने आप में कोई क्रिया नहीं हैं। ज्ञान को क्रियान्वित करना क्रिया है। ज्ञान को पूरा क्रियान्वित ज्ञान अवस्था का मानव ही कर सकता है। ज्ञान जो है वह तेरह बिन्दुओं में समाया है। चार विषयों (आहार, निद्रा, भय, मैथुन) का ज्ञान, पाँच संवेदनाओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) का ज्ञान, तीन ऐषणाओं का ज्ञान (पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा) और उपकार का ज्ञान।

इसमें से चार विषयों का ज्ञान जीव जानवर भी प्रकाशित करते हैं। उनमें विषयों का ज्ञान है तभी तो उसको प्रकाशित करते हैं। जीव जानवर पाँच संवेदनाओं का उपयोग करते हैं, इन चार विषयों में जीने के लिए। मानव जब धरती पर प्रगट हुआ तो उसमें सुख की चाहत जन्मजात रही। संवेदनाओं में मानव को सुख भासा। मानव ने कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता वश पाँच संवेदनाओं को राजी रखने के लिए सारा करतूत शुरू किया। इस क्रम में आहार, आवास, अलंकार को लेकर जीव जानवरों से बिल्कुल भिन्न जीना शुरू कर दिया। साथ में दूरश्रवण, दूरदर्शन और दूरगमन के तमाम साधनों को प्राप्त कर लिया। इस क्रम में मानव ने अपने को जीव जानवरों से ज्यादा अच्छा मान लिया! पर ऐसा मानने से मानव का अच्छापन कोई प्रमाणित नही हुआ। ज्ञान के बाकी चार भाग अज्ञात रहने के कारण मानव ने धरती के साथ अपराध किया, बाकी तीनों अवस्थाओं के साथ असंतुलन किया और मानव जाति के साथ भी अन्याय किया। यह सब के चलते ऐसी स्थिति में पहुँच गए की आज धरती ही बीमार हो गयी।

इसलिए मानव को ज्ञान के बाकी चार पक्षों को पहचानने की आवश्यकता है। यदि धरती पर बने रहना है तो! इसके लिए मध्यस्थ दर्शन का विकल्प प्रस्तुत है। जरूरत है, तो अपनाएगा आदमी जात!

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## सत्ता में संपृक्तता वश प्रकृति क्रियाशील है

प्रकृति क्रिया है। प्रकृति सत्ता में संपृक्त है। सत्ता क्रिया नहीं है। सत्ता व्यापक है, पारगामी है और पारदर्शी है। सत्ता ही जड़ प्रकृति के लिए मूल ऊर्जा है। यही चैतन्य प्रकृति के लिए ज्ञान है।

सत्ता में सम्पृक्तता वश ही जड़ और चैतन्य प्रकृति क्रियाशील है। सभी क्रियाओं का

आधार सत्ता ही है।

जैसे नियम कोई क्रिया नहीं है। पदार्थ अवस्था नियम सम्पन्नता से क्रियाशील (आचरणशील) है। ''नियम'' शब्द सहअस्तित्व को ही इंगित करता है।

ज्ञान कोई क्रिया नहीं है। जागृत मानव ज्ञान सम्पन्नता से क्रियाशील (आचरणशील) है। ''ज्ञान'' शब्द व्यापक को ही इंगित करता है।

मैं क्रियाशील हूँ, सब कुछ क्रियाशील है यह प्राकृतिक है। मैं कैसे क्रियाशील हूँ? सब कुछ कैसे क्रियाशील है? यह मानव को समझने की आवश्यकता है। यह समझ में आना = सत्ता में प्रकृति की सम्पृक्तता समझ में आना = अस्तित्व में व्यवस्था का सूत्र समझ में आना = स्वयम् का व्यवस्था में होने और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने का स्वरूप समझ में आना।

इस समझ से जीना ही इसका परीक्षण है। आपके जीवन में ज्ञान (व्यापक) कल्पनाशीलता के रूप में है ही। आपके शरीर में व्यापक ऊर्जा सम्पन्नता के रूप में है ही। इस को अनुभव करने की बात है। स्वयं का निरीक्षण परीक्षण करने से ही अनुभव होगा।

कल्पनाशीलता के आधार पर ही हम ज्ञान तक पहुँचते हैं। हर मानव में कल्पनाशीलता प्राकृतिक विधि से एक अधिकार है। उस अधिकार को अध्ययन के लिए प्रयोग करने की बात है।

समझदारी से समाधान और श्रम से समृद्धि प्रमाणित होती है।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## मानव धर्म एक, समाधान अनेक

**प्रश्न: ''मानव धर्म एक, समाधान अनेक'' का क्या अर्थ है?**

**उत्तर:** समाधान सर्वतोमुखी होता है क्योंकि मानव बहुमुखी अभिव्यक्ति है। सभी दिशाओं में समाधान चाहिए। इसलिए समाधान अनेक है। सभी समाधान जीवन में मन:स्वस्थता से जुड़े हैं । जीवन में सुख ही है जो मानव धर्म है। इसलिए मानव धर्म एक, समाधान अनेक।

सुख का अनुभव करने वाले जीवन द्वारा समाधान जीने में प्रमाणित होता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## ऐषणाएं और उपकार

मानव चेतना में तीनों ऐषणाओं के साथ मानव जीता है। ये तीन ऐषणायें हैं:

(1) पुत्रेषणा

(2) वित्तेषणा

(3) लोकेषणा

पुत्रेषणा = जन बल कामना (मानव परम्परा के धरती पर बने रहने के लिए वंश वृद्धि के लिए कामना पुत्रेषणा है।)

वित्तेषणा = धन बल कामना (परिवार के समृद्धि पूर्वक जीने के लिए प्राकृतिक सम्पदा पर श्रम नियोजन से धन की कामना वित्तेषणा है।)

लोकेषणा = यश बल कामना (अपने अच्छे कार्यों के लिए लोगों में अपनी पहचान के लिए कामना लोकेषणा है।)

मानव परम्परा को ज्ञान संपन्न बनाना ही उपकार है। दूसरे शब्दों में समझे हुए को समझाना, सीखे हुए को सिखाना और किए हुए को कराना ही उपकार है।

मानव चेतना में तीन ऐषणाओं के साथ मानव उपकार करता है। देव चेतना में लोकेषणा के साथ उपकार करता है। दिव्य चेतना में केवल उपकार करता है।

ऐषणाओं के बिना मानव परम्परा कैसे होगा? मानव परम्परा के बने रहने के लिए पुत्रेषणा, वित्तेषणा और लोकेषणा आवश्यक हैं।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## सत्ता ही ज्ञान है

**प्रश्न: ''सत्ता ही ज्ञान है'' इस प्रतिपादन को कैसे समझें?**

**उत्तर:** ऊर्जा सम्पन्नता प्राकृतिक है। ऊर्जा सम्पन्नता वश सभी जड़ (भौतिक रासायनिक) और चैतन्य (जीवन) इकाईयाँ क्रियाशील हैं।

कल्पना जीवन क्रिया है। जीवन क्रियाशील है, मतलब जीवन ऊर्जा संपन्न है। जीवन

भी सत्ता में डूबा, भीगा, घिरा है। सत्ता ही ज्ञान है जिसकी सम्पन्नता वश जीवन (गठनपूर्ण परमाणु) कल्पना करता है।

आप कल्पना करते हो या नहीं? कैसे करते हो? यह इसका उत्तर है। इसको समझने के लिए आप अपने स्वयं की गवाही को मानो। यह मूल बात है। यह समझ में नहीं आता है, तो आगे कुछ भी समझ में नहीं आएगा।

**प्रश्नः इसको फिर से समझाइये!**

**उत्तरः** ऊर्जा सम्पन्नता के बिना कुछ काम नहीं करता। ऊर्जा सम्पन्नता है ही सब में। मानवेत्तर प्रकृति में यह ऊर्जा क्रियाशीलता के रूप में है। मानव प्रकृति में यह ज्ञानशीलता के रूप में है। ज्ञानशीलता का प्राथमिक रूप कल्पनाशीलता है। उसी से ही मानव कार्य करता है। अब आप कार्य को देख पाते हो, कार्य के मूल में जो ऊर्जा (ज्ञान) है, उसको नहीं देख पा रहे हो! वह दर्शन आप में तैयार हो, ऐसी मैं कामना करता हूँ।

**प्रश्नः कैसे तैयार होगा? क्या करें जिससे मुझ में वह दर्शन तैयार होगा?**

**उत्तरः** क्रियाशीलता के मूल में ऊर्जा सम्पन्नता है, इस विधि से परामर्श करते जाते हैं, तो वह हो जाता है। अनुभव में यही समझ में आता है। अनुभव का जो नारा लगा रहे हैं उसमें यही समझ में आता है। अनुभव के लिए ध्यान दें। (इस प्रस्ताव के) हरेक शब्द से सूचना है। शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के मूल में जो वस्तु होता है, वह समझ में आना अनुभव है। अनुभव के आधार पर प्रमाण है। प्रमाण के आधार पर सारे संसार को समझाना बनता है। प्रमाण के बिना समझाना नहीं बनता। हमें स्वयं प्रमाण स्वरूप होना होगा, तभी हमको दूसरे को अध्ययन कराने का अधिकार है।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## तर्क का प्रयोजन

**प्रश्नः तर्क क्या है? तर्क का प्रयोजन क्या है?**

**उत्तरः** तर्क का मतलब है क्यों और कैसे का उत्तर दे पाना। ऐसा तर्क एक प्रेरणा है। तर्क सम्मत अभिव्यक्ति वस्तु तक पहुँचाने का एक सेतु है। तर्क स्वयं में कोई वस्तु नहीं है।

अभी आदमी जाति तर्क के लिए तर्क करता है। क्यों, कैसे पूछने को तर्क मान लिया है पर ऐसा होता नहीं है। इस चंगुल से छूटने की आवश्यकता है।

तर्क संगति चित्रण तक जाता है। चिंतन में जाता नहीं है। चिंतन में कोई तर्क नहीं है। बोध में कोई तर्क नहीं है। अनुभव में कोई तर्क नहीं है। अनुभव प्रमाण में कोई तर्क नहीं है।

(भोपाल, अक्टूबर 2008)

## प्रामाणिकता के आधार पर ही न्याय है, धर्म है, सत्य है

प्रामाणिकता के आधार पर ही न्याय है, धर्म है, सत्य है। अनुभव के कोई स्तर नहीं हैं। अनुभव पूरा ही होता है। अनुभव में परिवर्तन नहीं है। जब कभी न्याय समझ में आता है धर्म और सत्य भी समझ में आते हैं। धर्म और सत्य के बिना न्याय प्रमाणित होता नहीं है। सत्य की रौशनी में ही धर्म प्रकाशित होता है, न्याय प्रकाशित होता है, सत्य तो स्वयं प्रकाशित है ही।

मानव चेतना विधि से जब हम तीन ऐषणाओं के साथ जीते हैं तब हम न्याय प्रधान विधि से जीते हैं। साथ ही धर्म और सत्य को प्रकाशित करते रहते हैं। उपकार करते रहते हैं। प्रधान रूप में तीन ऐषणायें ही रहती हैं। तीनों ऐषणाओं को लेकर के उपकार करते हैं।

उसके बाद देव मानव पद में वित्तेषणा और पुत्रेषणा को गौण करके लोकेषणा को लेकर चलते हैं। इस प्रकार देव मानव धर्म प्रधान विधि से न्याय और सत्य को प्रमाणित करता है। सत्य प्रमाणित करने का मतलब है उपकार करना।

दिव्य मानव उपकार प्रधान विधि से धर्म और न्याय को प्रमाणित करता है।

मानव जाति का उद्धार (तरन-तारण) इस विधि से है। इससे किसको क्या तकलीफ है?

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## विरक्तिवाद और आसक्तिवाद का विकल्प

जागृति के पहले मन शरीर के तद्रूप होकर शरीर का दृष्टा बना रहता है। शरीर को ही जीवन माना रहता है। उसी के अनुरूप प्रिय, हित, लाभ दृष्टियों से तुलन करता है। न्याय, धर्म, सत्य छुटा रहता है। प्रिय, हित, लाभ दृष्टियों से तुलन के आधार पर ही विश्लेषण और चित्रण हो जाता है। यही भौतिकवाद है जो जीव चेतना में जीना है। ऐसे में भी जीवों से अधिक अच्छा जीने की कल्पनाएँ बनती हैं। इन्हीं कल्पनाओं के चलते निकले विरक्तिवाद और

आसक्तिवाद।

विरक्ति से क्या मिल गया? यह मानव परम्परा को आज तक पता नहीं चला।

आसक्तिवाद से भोग–अतिभोग में गए और धरती बीमार हो गयी।

मध्यस्थ दर्शन विरक्तिवाद और आसक्तिवाद दोनों का विकल्प है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## अध्ययन विधि से बुद्धि में बोध होता है

लिखना सूचना है। पढ़ना शब्द है।

शब्द का स्मरण अध्ययन नहीं है।

शब्द के अर्थ को समझना अध्ययन है।

शब्द का अर्थ हमारा स्वीकृति होता है यह स्मरण नहीं है। स्वीकृति बुद्धि में बोध रूप में होता है। शब्द का अर्थ जब बुद्धि में आता है तब हम समझे हैं। शब्द का अर्थ बुद्धि में ही स्वीकृत होता है उसके पहले भी नहीं, उसके बाद भी नहीं।

अर्थ को समझने के बाद बुद्धि में ही उसको प्रमाणित करने की प्रवृत्ति होती है। बुद्धि में जब सहअस्तित्व बोध होता है तब आत्मा में स्वयं की प्रव्रत्ति रहती है अस्तित्व में अनुभव करने की। बुद्धि में बोध होने पर आत्मा का अस्तित्व में अनुभव करना भावी है। उसके लिए कोई प्रशिक्षण की जरूरत नहीं है। जीवन का मध्यांश अनुभव के योग्य रहता ही है इसलिए बुद्धि में बोध के बाद आत्मा अनुभव करता ही है।

बुद्धि में बोध होने के लिए सर्वसुलभ विधि अध्ययन विधि ही है। अध्ययन के लिए मन को लगा देना ही अभ्यास है।

अनुभव के फलस्वरूप प्रमाण बोध बुद्धि में होता है। इस अनुभव मूलक प्रमाण बोध को प्रमाणित करने के क्रम में चित्त में चित्रण, वृत्ति में न्याय, धर्म, सत्य के अर्थ में तुलन/विश्लेषण और मन उसी के अनुरूप आस्वादन चयन के रूप में प्रमाणित हो जाता है। इस ढंग से अनुभव के बाद जीवन अनुभव के साथ तदाकार हो जाता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## कल्पनाशीलता के प्रयोग से ज्ञान तक पहुँचने का रास्ता है

कल्पनाशीलता प्रकृति प्रदत्त है। कल्पनाशीलता जीवन से मानव शरीर द्वारा प्रगट है। कल्पनाशीलता घटता बढ़ता नहीं है। यही कल्पनाशीलता जीवन में गुणात्मक विकास पूर्वक ज्ञान सम्पन्नता तक पहुँचता है।

कल्पना ही ज्ञान तक पहुँचने का रास्ता है। कल्पना नहीं है तो ज्ञान तक पहुँचने का कोई रास्ता ही नहीं है। कल्पनाशीलता के प्रयोग से सहअस्तित्व स्वरूपी सत्य को समझना ही ज्ञान के लिए रास्ता है। इसके लिए ध्यान देना होता है। ध्यान देना मतलब मन को लगाना। हम जो चयन और आस्वादन करते हैं उस वस्तु का नाम है मन। ये दो क्रिया करने वाले मन को अनुभव के पक्ष में लगाने को ध्यान देना कहा। मन जब लगता है, तब विचार और इच्छा भी उसके साथ रहते ही हैं। मन किस बात में लगाना है इसकी प्राथमिकता इच्छा में ही तय होती है। जिस इच्छा को हम प्राथमिक स्वीकारते हैं उसी के लिए काम करते हैं। अनुभव की आवश्यकता जब तीव्रतम इच्छा के स्तर पर पहुँच जाती है तब मन लगता ही है। मन लगता है तो अध्ययन होता ही है।

मानव जीवन और शरीर का संयुक्त स्वरूप है। मानव में कल्पनाशीलता जीवन से है, शरीर से नहीं है। कल्पनाशीलता ही जीवन में ज्ञान सम्पन्नता का भ्रूण स्वरूप है। कल्पनाशीलता जीवन की ताकत है। यही कल्पनाशीलता गुणात्मक विकास विधि से ज्ञान सम्पन्नता तक पहुँचता है। सहअस्तित्व स्वरूपी सत्य की समझ ही ज्ञान है। तात्विक रूप में ज्ञान व्यापक ही है।

(अक्टूबर 2008, भोपाल)

## पिछली पीढ़ी के प्रति कृतज्ञता और सम्मान का आधार क्या हो?

**प्रश्नः अपनी पिछली पीढ़ी ( माता-पिता आदि ) के प्रति कृतज्ञता और सम्मान का ठोस आधार क्या हो?**

**उत्तरः** हमारे माता-पिता ने हमको यह शरीर दिया (जन्म दिया) इस अर्थ में हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं। दूसरे वे जैसे भी रहे हों, हमारे अच्छे होने के लिए वे सदा आशा बनाए रखे इसके लिए हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं। ये दोनों मौलिक बातें हैं। ये टलने वाली बातें नहीं हैं। तीसरे बचपन में वे हमारी सेवा किए हैं, उसके लिए हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं।

इन तीन बिन्दुओं को क्या मिटाया जा सकता है? इनके लिए केवल कृतज्ञ ही हुआ

जा सकता है। इस तरह हमको पिछली पीढ़ी के प्रति कृतज्ञ होने का स्त्रोत मिल गया।

सम्मान करने के बारे में हमारे अभिभावक हमारा शुभ ही चाहते रहे हैं, उन्होंने मेरा अशुभ नहीं चाहा है, इस आधार पर हम उनका सम्मान कर सकते हैं। इसमें किसको क्या तकलीफ है?

बुजुर्गों को हम सिखाने समझाने की बात स्वप्न में भी न सोचा जाए! हमसे कोई बुजुर्ग सीखेगा नहीं। हमारे पिताजी हमसे तो सीखने वाले नहीं हैं। पिताजी का हम सम्मान कर सकते हैं, वे हमारा शुभ चाहते रहे इस आधार पर।

अभी आज की शिक्षा प्राप्त बच्चों का सोच ऐसा जाता है हमारे बुजुर्गों ने अपने व्यसन के अर्थ में संतान को पैदा किया! यहाँ ले गए। "आधुनिक" विज्ञान संसार ने हमको यहाँ ला कर खड़ा कर दिया है। इसमें क्या न्याय होगा आप बताओ? बहुत कष्टदायक बात है न यह? ऐसे कष्टदायक कसौटी पर जाने के बाद हमारा जगह कहाँ है? क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए? इस मानसिकता से सोचने पर बुजुर्गों की सेवा करने के स्थान पर उनसे घृणा करना बनता है। जबकि सहअस्तित्ववादी विधि से कैसे आसानी से कृतज्ञता और सम्मान मूल्यों के अर्थ में अपने बुजुर्गों की सेवा करने का रास्ता निकल जाता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## शुभकामना का कार्य रूप

**प्रश्नः हम दूसरे के लिए जो शुभ कामनाएं करते हैं, उससे क्या कुछ होता भी है?**

**उत्तरः** हमारी शुभकामना सामने व्यक्ति के पुण्य से ही फलित होती है। पुण्य का मतलब है कायिक, वाचिक, मानसिक रूप से मानव जो न्याय करता है, समाधान को प्रस्तुत करता है, उससे है। शुभकामना सामने व्यक्ति को शुभ करने के लिए उत्साहित करने के अर्थ में है। उससे ज्यादा कुछ नहीं। शुभकामना इस तरह से शुभ के लिए प्रेरणा देने के रूप में है। इसका स्वाभाविक रूप इतना ही है। यदि इसमें थोड़ा भी कुछ और होता तो अस्तित्व की स्वयं स्फूर्तता के नियम का हनन होता! प्रकृति में इसके अलावा और कोई व्यवस्था ही नहीं है। श्राप और अनुग्रह के चक्कर में संसार कितना परेशान हुआ यह अपने आप में एक इतिहास है!

शुभकामना होता है यह सही है।

शुभ घटित होता है यह भी सही है।

शुभ के लिए मानव प्यासे हैं यह भी सही है।

अब यहाँ कह रहे हैं समझदारी के आधार पर कार्य व्यवहार करने से ही शुभ घटित होता है।

इस ढंग से यह बात सामान्य हो गयी। समझदारी को अध्याव्यवसायिक (अध्ययन या शिक्षा) विधि से प्रमाणित करने की आवश्यकता थी उसमें मैं सफल हो गया! इस बात का लोकव्यापीकरण भले ही धीरे-धीरे हो लेकिन इतने में तो मैं सफल हो गया। अध्ययन विधि से आदमी समझदार हो सकता है इस जगह में तो मैं आ गया हूँ।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## अच्छा लगना, अच्छा होना नहीं है

"अच्छा लगना" प्रिय, हित, लाभ दृष्टियों से व्यक्तिवाद की ओर ले जाता है। मुझ को यह अच्छा लगता है, आपको कोई दूसरा ही चीज अच्छा लगता है इससे कोई रास्ता नहीं निकलता। अच्छा होने की ही परम्परा होगी, अच्छा लगने की परम्परा नहीं होगी। अभी सारे 700 करोड़ आदमियों का पग "अच्छा लगने" की जगह पर ही चल पाया है। "अच्छा होने" को लेकर एक पग रखने की जगह भी नहीं बना। जबकि मानव परम्परा को धरती पर हुए हजारों वर्ष बीत चुके हैं। कितना मार्मिक बात है आप ही सोच लो!

मानव जैसे बौखला गया है। क्या बोलने से अच्छा लगेगा, इस जगह में आ गया है। ज्यादा लोगों को जो बोलने से अच्छा लगता है, वह बोल देता है। "अच्छा होना" तो हवा में है।

समझदारी पूर्वक समाधान संपन्न होने से ही अच्छे होने की शुरुआत है। उसका प्रस्ताव आपके सामने अध्ययन के लिए आ चुका है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## अनुभव को बताया जा सकता है

दर्शन स्थिति गति है। स्थिति में अनुभव है। गति में विचार आ गया। अनुभव के स्वरूप को स्पष्ट कर पाना यह दर्शन है। अनुभव की अभिव्यक्ति, सम्प्रेषणा और प्रकाशन के साथ चित्रण रहता ही है। अनुभव बीज रूप (स्थिति) में रहता है, सम्प्रेषणा गति रूप में रहती है।

अनुभव सम्पन्नता के बाद आत्मा में जो बीज रूप में अनुभव है वह मानव की परस्परता में संप्रेषित होता है। ''यह अनुभव का मुद्दा है'' यह अंगुली न्यास होता है। जैसे व्यापक वस्तु आपको बोध कराने के लिए मुझको संप्रेषित होना ही पड़ेगा। व्यापक वस्तु का अपने चित्त में चित्रण करने के लिए मेरे पास अनुभव है। व्यापक वस्तु की महिमा करने जाता हूँ तो उसको अपने चित्त में चिंतन करने का माद्दा मेरे पास है। जैसे पारगामियता और पारदर्शिता का चिंतन करने का माद्दा मेरे पास है। व्यापक अनुभव का मुद्दा है।

मैं व्यापक वस्तु के बारे में बोलता हूँ, आप सुनते हैं। सुनने से व्यापक वस्तु के बारे में आप कल्पना करते हैं। व्यापक वस्तु की पारगामियता और पारदर्शिता को जब मैं स्पष्ट करता हूँ तो वह आपके मन में पहुँचता है, विचार में पहुँचता है, चित्रण में पहुँचता है। इस का साक्षात्कार आपमें तुलन पूर्वक होता है, जिसके स्वीकृत होने पर आप में बोध और अनुभव हो ही जाता है। इस तरह व्यापक आपके अनुभव में आ गया।

अनुभव को बताया जा सकता है। अनुभव को बताने का प्रयोजन है मानव परम्परा को जागृत करना।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## विकल्प को समझना

पहले से हम कुछ खाका बनाए रहते हैं, उसके साथ इस प्रस्ताव को जोड़-तोड़ करने का प्रयास करते हैं। जितना जुड़ पाता है, उसको हम स्वीकार करते हैं। जो जुड़ नहीं पाता है, उस पर शंका करते हैं। वहीं अटक जाते हैं। जबकि जीव चेतना और मानव चेतना के बीच जोड़-तोड़ करने का कोई स्थान ही नहीं है। जीव चेतना के स्थान पर मानव चेतना को अपनाने की बात है। यही विकल्प का मतलब है।

एक बात को तो हमको निर्मम रूप में स्वीकार करना पड़ेगा कि हमको जागृति पूर्वक ही जीना है।

समझदारी होने तक सभी स्वतन्त्र हैं अपने मन की करने के लिए। समझदारी के लिए व्यक्ति का चाहत जब प्रबल होता है तभी अध्ययन की तरफ आते हैं। समझदार होने पर, समझदारी के साथ जीने के लिए ईमानदारी स्वयं स्फूर्त होती है। जिम्मेदारी स्वीकार होती है। भागीदारी के रूप में प्रमाणित होती है। ऐसा होना सभी की अपेक्षा है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## नियम, नियंत्रण, संतुलन

चारों अवस्थाओं में नियम, नियंत्रण, संतुलन प्रकाशित है।

पदार्थावस्था में उनके गठन के अनुसार आचरण ही नियम है।

परिणाम अनुषंगीयता ही नियंत्रण है।

पूरकता उपयोगिता ही संतुलन है।

प्राणावस्था में उनका सारक मारक आचरण ही नियम है।

बीजानुषंगीयता ही नियंत्रण है।

पूरकता उपयोगिता ही संतुलन है।

जीवावस्था में उनका क्रूर-अक्रूर आचरण ही नियम है।

वंशानुषंगीयता ही नियंत्रण है।

उनमें (जीने की) आशा से उनकी पूरकता उपयोगिता ही संतुलन है।

ज्ञानावस्था (मानव) में न्याय ही नियम है।

धर्म ही नियंत्रण है। मानव समाधान (व्यवस्था) पूर्वक ही नियंत्रित रहना देखा जाता है । समाधान = व्यवस्था = सुख = मानव धर्म।

सहअस्तित्व स्वरूपी सत्य ही संतुलन है। संतुलन ही प्रमाण है।

गणित न्याय, धर्म, सत्य, नियम, नियंत्रण और संतुलन को छूता भी नहीं है। अभी विज्ञानी गणित की मदद से यंत्र के लिए जो प्रारुप बनाता है, जिससे यंत्र बार-बार वही करता रहता है उसको नियम कह देता है। जबकि वह नियम नहीं है। सभी नियम नियति सहज हैं।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## प्रमाण के बिना परम्परा नहीं है

हर मानव कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के अधिकार से संपन्न है। उस आधार पर मानव स्वाभाविक रूप में सुखी होना चाहता है। जागृति के बिना सुखी होना बनता नहीं है। तो

सुखी होने के लिए जीवन बार-बार शरीर यात्रा आरम्भ करता है। जब शरीर यात्रा में यह प्रयोजन प्रमाणित नहीं होता तो दुखी होता है।

अब आपके सामने स्वयं की जागृति को पहचानने के लिए एक प्रस्ताव आ गया है। इसके पहले अभी तक कोई प्रस्ताव नहीं है जो शिक्षा विधि से आया हो। इससे पहले विगत में कहा था "साधना विधि से कल्याण होता है।" वह व्यक्ति के साथ ही चला गया। साधना विधि से जो भी उपलब्धि हुआ वह मानव परम्परा को नहीं पहुँचा। कोई व्यक्ति भी पहुँचा था या नहीं इसका भी कोई प्रमाण नहीं हुआ। हम मानते रहे वह बात अलग है। जागृति के लिए पुरुषार्थ (पुरुषार्थ = जागृति के लिए हम जो भी प्रयास करते हैं।)

जागृति के बाद परमार्थ (परमार्थ = जीने में प्रमाण प्रस्तुत करना।)

प्रमाण के बिना परम्परा नहीं है। मूल्यांकन का आधार प्रमाणित होना ही है।

जागृति मानव को प्राप्त करना अभी शेष है इस कमी को मानव हर शरीर यात्रा पर्यंत महसूस किया रहता है कि असफल रहे। उसका कारण है मानव परम्परा में जागृति का न रहना। इसलिए मानव परम्परा में जागृति के स्त्रोत को जोड़ने की आवश्यकता है। इसका मतलब जागृति को आचरण में, व्यवस्था में, संविधान में और शिक्षा में विधि को स्थापित किया जाए। इन चारों जगह पर परम्परा बनने के स्वरूप में बना दिया जाए। उसी के अर्थ में मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद का प्रस्ताव है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## निश्चयता से ही स्वतंत्रता है

भ्रमित व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है, लेकिन फल भोगने में परतंत्र है।

जागृत व्यक्ति कर्म करने में भी स्वतन्त्र है और फल भोगने में भी स्वतन्त्र है।

भ्रमित व्यक्ति कर्म फल के प्रति निश्चित नहीं होता है, इसलिए वह फल भोगने में परतंत्र है। जागृति के बाद हर कर्म निश्चित है और उसका फल भी निश्चित है। जागृत व्यक्ति कर्म फल के प्रति निश्चित है इसलिए स्वतन्त्र है।

निश्चयता से ही स्वतंत्रता है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## समृद्धि पूर्वक जीने का तरीका समझदारी से ही आता है

हम जब पूरा समझ जाते हैं, तब हमको अपने में समृद्धि पूर्वक जीने का तरीका समझदारी से आ ही जाता है। उससे परिवार जनों की संतुष्टि हो जाती है, इसलिए हम अच्छे काम करने में लग सकते हैं। यह बात हर व्यक्ति की पकड़ में आ सकता है।

विरक्ति विधि से मैं साधना में रहा। उससे जो अभाव हुए उनसे मैं पीड़ित नहीं हुआ। शास्त्रों में लिखा भी है पीड़ित न होना ही पात्रता है। अभाव से मैं पीड़ित नहीं हुआ मतलब अभाव पर विजय हो गया। साधना के सम्बन्ध में जो शास्त्रों में लिखा है, वह अपूर्व है, कल्पनातीत विधि से लिखा है! साधना के फल में जो मुझे मिला वह पता लगा कि यह अकेले की सम्पदा नहीं है। यह तो मानव जाति की सम्पदा है। इसको मानव जाति को अर्पित करना चाहिए। यह स्वीकारने के बाद मैंने यह पाया अभी तक जो मैं विरक्ति प्रारूप में जो चला, वह तो कोई प्रारूप नहीं है। सही प्रारूप समाधान, समृद्धि ही है। समाधान अनुभव पूर्वक मेरे पास हो गया था, समृद्धि का कृषि गोपालन और आयुर्वेद से जुगाड़ कर लिया।

उसके बाद यह आया जहाँ पाये, वहाँ के लोगों को इसे समझाओगे, या कहीं दूर जा कर समझाओगे। न्याय तो यही है जहाँ पाये, वहीं के लोगों को समझा दो। इसमें मेरा सहमति बन गया। इसलिए समृद्धि को प्रमाणित करने की निष्ठा बनी। जनता के पैसे की मेरी कोई अपेक्षा नहीं रही। समाधान अधिकार में परमुखापेक्षा (दूसरे के दान की उम्मीद) स्वीकृत नहीं होता। समस्या से ग्रसित मानव ही परमुखापेक्षा करता है।

मानव जाति में आज तक शुभ से जीने की अपेक्षा तो रही, पर शुभ का स्वरूप निर्णय नहीं रहा। अब वह प्रारूप आ गया है। स्वयं तृप्त होने के बाद उसको प्रमाणित करने की बात रहती है। प्रमाणित करने के क्रम में बहुत से लोग शुभ का स्वागत करने के लिए बैठे हैं। बहुत से लोग शुभ को लेकर शंका करने के लिए भी बैठे हैं। इन दो चैनल में आपको आदमी मिलेगा ही। जो जिस चैनल में जाना चाहता है, जाए। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं है। जिसकी पहले जरूरत है, वह पहले आएगा जिसकी जरूरत उसके बाद बनती है, वह उसके बाद आएगा। यह एक प्रस्ताव है, आवश्यकता के अनुसार ही यह स्वीकार होगा।

हर व्यक्ति समझदार होने योग्य है।

हर व्यक्ति सुखी होना चाहता है।

समझे बिना कोई सुखी होता नहीं है।

सुखी होने की चाहना जिसकी प्राथमिकता में पहले आता है, वह जल्दी समझेगा। जिसकी प्राथमिकता में बाद में आता है, वह बाद में समझेगा।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## अज्ञात और ज्ञात

कुछ बातें हमको समझ में आयी हैं वे ज्ञात हैं। जो बातें हमको समझ में नहीं आयी हैं वे अज्ञात हैं। जो बातें हमको ज्ञात हैं, उनको हम जीने में प्रमाणित करते ही हैं। अध्ययन अज्ञात को ज्ञात करने के लिए है। जैसे –

(1) सुख हम चाहते हैं यह ज्ञात है। संवेदनाओं में सुख की निरंतरता नहीं है यह भी ज्ञात है। सुख की निरंतरता का बिन्दु अज्ञात है।

(2) शरीर नश्वर है, यह हमेशा बना नहीं रहेगा यह हमको ज्ञात है। शरीर कैसे जीवंत रहता है, जीवन वस्तु के रूप में क्या है? यह अज्ञात है।

(3) मानव व्यवहार करता है यह ज्ञात है। व्यवहार की सीमा क्या है, व्यवहार के नियम क्या हैं यह अज्ञात है।

(4) धरती बीमार हो चुकी है यह ज्ञात है। धरती कैसे बीमार हुई और इसकी निरंतर स्वस्थता कैसे होगी यह अज्ञात है।

(5) तृप्ति की मुझ में अपेक्षा है यह ज्ञात है। तृप्ति बिन्दु क्या है यह अज्ञात है।

(6) मैं कल्पना करता हूँ यह ज्ञात है। मेरी कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु क्या है यह अज्ञात है।

अध्ययन के लिए अपने में ये दो आधार बिन्दुओं को सटीक पहचानना बहुत जरूरी है। हम कहाँ खड़े हैं और कहाँ हमको जाना है जब तक यह स्पष्ट नहीं होगा, तो हमारा आगे चलने का कार्यक्रम कैसे बनेगा?

अध्ययन कराने वाले व्यक्ति को पहचानना जरूरी है। प्रमाणित व्यक्ति ही अध्ययन करा सकता है। प्रमाणित व्यक्ति के अनुभव के प्रकाश में ही विद्यार्थी अध्ययन कर सकता है। यदि आप भी नहीं जानते, मैं भी नहीं जानता तो हम दोनों एक दूसरे के साथ सहानुभूति तो कर सकते हैं, मदद भी कर सकते हैं, पर अध्ययन के स्त्रोत नहीं बन सकते।

अध्ययन की विधि को ठीक समझना भी जरूरी है। अध्ययन शब्द से अर्थ तक पहुँचने की विधि है। शब्द कल्पनाशीलता का सहारा है। शब्द अर्थ को इंगित करता है। साक्षात्कार तक शब्द है, उसके बाद अर्थ है. अर्थ का बोध व्यक्ति को ही होता है। बोध पूर्ण होने तक अध्ययन है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## तत्-सान्निध्य, तदाकार और तद्रूप

वस्तु का मतलब है जो अपनी वास्तविकता को प्रकाशित करे। दो तरह की वस्तुएं हैं। इकाईयाँ या प्रकृति जिनको हम गिन सकते हैं। और दूसरी व्यापक जिसमें सभी इकाईयाँ डूबी, भीगी, घिरी हैं। इकाईयों की वास्तविकता चार आयामों में है रूप, गुण, स्वभाव और धर्म। व्यापक (शून्य) की वास्तविकता तीन आयामों में है पारगामियता, पारदर्शिता और व्यापकता। व्यापक में संपृक्त प्रकृति ही अस्तित्व समग्र है। मध्यस्थ दर्शन अस्तित्व के अध्ययन का प्रस्ताव है।

प्रस्ताव शब्दों में है। शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के मूल में अस्तित्व में वस्तु होता है। अध्ययनपूर्वक वस्तु का अर्थ व्यक्ति को बोध हो जाता है।

तत्-सान्निध्य = कोई भी वस्तु सान्निध्य (पास में होना) में ही दिखता है। शब्द से इंगित वस्तु का सान्निध्य हो जाना = तत्-सान्निध्य। जैसे ''यह खाली स्थली ही व्यापक वस्तु है'', इस तरह अंगुली न्यास हो जाना व्यापक का तत्-सान्निध्य है। ''यह वस्तु पदार्थावस्था है'', इस तरह अंगुली न्यास हो जाना ही पदार्थावस्था से तत्-सान्निध्य है।

तदाकार वस्तु पर ध्यान देने से वस्तु के आकार में जब हमारा ज्ञान होता है, तब हम वस्तु को समझे। यही तदाकार का मतलब है। तदाकार विधि से हम एक एक वस्तु को पहचानते हैं। अध्ययन विधि से जीवन एक-एक वस्तु में तदाकार होता है। प्रकृति की इकाईयों के साथ तदाकार होने का मतलब उनके रूप, गुण, स्वभाव और धर्म को समझना। रूप और गुण के साथ मनाकार होता है। स्वभाव और धर्म का बोध और अनुभव होता है।

व्यापक वस्तु का केवल अनुभव होता है।

तद्रूप व्यापक और ज्ञान में भेद समाप्त हो जाना ही तद्रूप है। ''व्यापक वस्तु से ही तदाकार जीवन में ज्ञान है'' यही अनुभव पूर्वक प्रमाण है।

तदाकार विधि से अध्ययन के पूर्ण होने पर जीवन तद्रूपता में स्वयं को पाता है। तद्रूपता में ही प्रमाण है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## कल्पनाशीलता की महिमा वश ही मानव अस्तित्व में अध्ययन का साहस जुटा पाता है

नियति सहज विधि से मानव शरीर रचना धरती पर प्रगट हुई। पदार्थ अवस्था से प्राण अवस्था, प्राण अवस्था से जीव अवस्था और जीव अवस्था से ज्ञान अवस्था का प्रगटन हुआ। मानव शरीर रचना ऐसी हुई कि जीवन उसके द्वारा अपनी कल्पनाशीलता को प्रकाशित कर पाया। यदि कल्पनाशीलता नहीं होती तो मानव ज्ञान के लिए प्रयत्न ही नहीं करता। कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता का प्रकाशन ही मानव और जीवों में मूल अन्तर है। कल्पनाशीलता की महिमा वश ही मानव अस्तित्व में अध्ययन का साहस जुटा पाता है।

कल्पनाशीलता का भ्रूण रूप जीवावस्था में जीने की आशा के स्वरुप में है। जीने की आशा के प्रकाशन के रूप में जीव जानवर चयन क्रिया संपादित करते हैं। चयन क्रिया का भ्रूण रूप प्राणावस्था (पेड़ पौधों) में है। अपने लिए आवश्यक रस द्रव्यों को जड़ें चयन कर लेती हैं।

प्राणावस्था की रचनाएँ मूलतः प्राण कोशिकाओं से बनी हैं। प्राण कोशों में प्राण सूत्र हैं। उन प्राण सूत्रों में रचना विधि है, जिसके अनुरूप प्राण कोषाएं रचना कार्य में संलग्न होती हैं। रचना विधि में गुणात्मक परिवर्तन होने से प्राण सूत्रों में नयी तथा और समृद्ध रचना विधि स्वयं स्फूर्त निकल आती है। जिससे नयी तरह की रचना तैयार होती है। इस तरीके से उत्तरोत्तर विकसित प्राण अवस्था की रचनाएँ तैयार हो गयी।

प्राणावस्था की शरीर रचनाओं में से कुछ में चलायमानता होते हुए भी जीवन उनको नहीं चलाता। जैसे कीड़े मकौडे, जौंक, आदि। उन जीवों में जीवन है, जिनमें (1) सप्त धातुओं से रचित शरीर हो, (2) समृद्ध मेधस हो, (3) जो मानव के संकेतों को पहचानते हों।

शरीर रचना में विकास क्रम मानव शरीर रचना तक पहुँचा। मानव शरीर रचना में मेधस पूर्ण समृद्ध हो गया। समृद्धि पूर्ण मेधस द्वारा जीवन मानव शरीर के माध्यम से कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता को प्रकाशित करने में समर्थ हुआ। इस कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के चलते मानव जंगल युग, शिला युग, धातु युग, ग्राम कबीला युग, राज युग से

चलते चलते आज तक पहुँच गया। इससे मानव अपनी परिभाषा के अनुरूप मनाकार को साकार करने में सफल हो गया। लेकिन मनः स्वस्थता का पक्ष अभी तक वीरान पड़ा रहा।

मनः स्वस्थता के पक्ष को भरने के लिए मानव अनुसंधान करता रहा। इस अनुसंधान क्रम में आदर्शवाद और भौतिकवाद आए। मध्यस्थ दर्शन का अनुसंधान भी इस क्रम में ही हुआ। यह अनुसंधान सफल हो गया। इस अनुसंधान ने मनः स्वस्थता के स्वरूप को पहचान लिया और जीने में प्रमाणित कर दिया। अनुसंधान को अध्ययन गम्य बनाने के लिए इसको शब्दों में प्रस्तुत किया गया। शब्द कल्पनाशीलता के लिए सहारा हैं अर्थ तक पहुँचने के लिए। शिक्षा विधि से इस अनुसंधान के लोकव्यापीकरण के लिए प्रयास जारी हैं।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## अध्ययन सुगम है

अज्ञात को ज्ञात करने की तीव्र इच्छा मुझ में थी। उसके लिए मैंने 20 वर्ष समाधि के लिए और 5 वर्ष संयम के लिए लगाया। संयम काल में प्रकृति ने अपने एक एक पन्ने को खोलना शुरू किया। जैसा प्रकृति प्रस्तुत हुआ, मैंने वैसा ही अध्ययन किया। आप किताब खोल कर प्रकृति के बारे में पढ़ते हो। संयम काल में प्रकृति ने अपने आप को खोल कर मुझ को पढ़ाया। पहले सहअस्तित्व कैसे है, क्यों है यह आया। उसके बाद विकास क्रम कैसे है, क्यों है यह आया। इसके साथ भौतिक रासायनिक रचना के स्वरूप में शरीर, उसके मूल में प्राण कोष, प्राण सूत्र यह सब आ गया। पूरी शरीर रचना के मूल में प्राण सूत्र हैं। पूरी भौतिक रचनाओं के मूल में अणु-परमाणु हैं। फिर विकास (गठनपूर्णता) कैसे है, क्यों है यह आ गया। जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में जीव भी आ गया। जीने के मूल में जीवन है यह स्पष्ट हुआ। इस तरह प्रकृति में तीन तरह की क्रियाएं हैं भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया और जीवन क्रिया। मैं स्वयं क्यों-कैसे काम कर रहा हूँ इस जगह पर पहुँचने पर अपने ''जीवन'' का अध्ययन किया।

जीवन क्रिया के विस्तार में जाने पर उसके 122 आचरणों को पहचाना। (जैसे) मन की क्रियाओं को मैंने देखा है। जीवन के मन परिवेश (चौथा परिवेश) में शरीर संवेदना पूर्वक होने वाले अलग-अलग आस्वादनों की पहचान करने वाली क्रियाओं को मैंने पहचाना। इस तरह जीवन के अध्ययन के साथ मानव का भी अध्ययन हुआ। जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मैंने मानव का अध्ययन किया है। जीवंत शरीर सहित मैंने जीवन का अध्ययन किया। सभी में वैसे ही जीवन है, यह स्वीकारा। इसको ''सिन्धु बिन्दु न्याय'' कहा। अकेले जीवन

का ही अध्ययन होता, मानव (जीवन और शरीर का संयुक्त स्वरूप) का अध्ययन नहीं होता तो मानव जाति के लिए इस बात का प्रयोजन नहीं निकलता। जीवन का अध्ययन मानव के जीने के अर्थ में ही है।

मैंने जो अध्ययनपूर्वक अनुभव किया वह मेरे अकेले के परिश्रम का फल नहीं है, यह समग्र मानव जाति के पुण्य का फल है यह मैंने स्वीकार लिया। इसलिए इसको मानव जाति को सौंपने का दायित्व मैंने स्वीकारा। मैंने जैसा अध्ययन किया वैसा ही उसको शब्दों में रखने का कोशिश किया। शब्द परम्परा के हैं परिभाषा मैंने दी है।

अभी तक मानव परम्परा में जो कुछ भी अध्ययन के आधार हैं वे मानव द्वारा ही प्रस्तुत किए गए। उन आधारों से तथ्य तक पहुँचने का कोई रास्ता नहीं मिला। प्रचलित सभी आधारों को छोड़ कर के यह बात है। परम्परा गत आधारों पर चलने से मानव जाति न्याय, धर्म, सत्य तक नहीं पहुँचा था, इसलिये भ्रम मुक्त और अपराध मुक्त नहीं हुआ था। इसलिए यह नया आधार अनुसंधानित हुआ। मैं इस नए आधार का प्रणेता हूँ। आप इसको जाँच करके देखिये पूरा पड़ता है या नहीं? जाँचने का अधिकार हर व्यक्ति के पास रखा है।

अध्ययन विधि से पहले यह आपके साक्षात्कार में लाना है। साक्षात्कार हो सकता है, यहाँ तक आप पहुँचे। साक्षात्कार हो गया है वहां आप को पहुँचना है। उसके बाद अनुभव हो गया है वहां पहुँचना है। उसके बाद प्रमाण हो गया वहां पहुँचना है। अध्ययन प्राथमिकता में आता है, तो हम जल्दी पहुँच सकते हैं। अध्ययन यदि द्वितीय-तृतीय प्राथमिकता में रहता है तो हम धीरे-धीरे पहुँचते हैं इसमें क्या तकलीफ है? प्राथमिकता में जब तक यह नहीं आता है तब तक दूर ही दिखता है। इस बात के अध्ययन में कहीं अहमता बनता नहीं, कहीं कोई विरोध होता नहीं इससे ज्यादा क्या सुगमता खोजा जाए?

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## समाधान ही सुख है

(1) अध्ययनपूर्वक बुद्धि में सहअस्तित्व बोध होता है। सहअस्तित्व के अलावा बुद्धि में बोध होने के लिए और कोई वस्तु ही नहीं है।

(2) बोध पूर्ण होने पर आत्मा सहअस्तित्व में अनुभव करता है। सहअस्तित्व को छोड़ कर अनुभव करने की कोई जगह ही नहीं है।

(3) सहअस्तित्व में अनुभव ही जीवन में सुख का स्वरूप है जिसकी निरंतरता होती है।

(4) जीवन में होने वाला सुख मानव के जीने में कार्य और व्यवहार से जुड़ता है।

(5) अनुभव मूलक कार्य और व्यवहार ही जीने में समाधान है।

(6) समाधान ही सुख है।

(7) अनुभव की व्याख्या जीने में ही होती है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## समझदारी की घोषणा का मतलब

सहअस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व की वास्तविकताओं को आपने सटीक पहचाना है, इसका प्रमाण आपके जीने में ही आएगा। व्यक्ति के प्रमाणित होने का मतलब उस व्यक्ति द्वारा अन्य लोगों को समझा देना। प्रमाणित होने का स्वरूप है समझे हुए को समझाना, सीखे हुए को सिखाना, किए हुए को कराना। समझदारी का और कौन सा प्रमाण हो सकता है आप बताओ? समझा देना ही समझे होने का प्रमाण होता है।

प्रश्न: आपने अनुसंधान पूर्वक समझा, उसमें पूरा समझने के बाद ही दूसरों को समझाने की बात रही। लेकिन हम जो अध्ययन विधि से चल रहे हैं, उसमें आप कहते हैं जितना समझे हो, उतना समझाते भी चलो। इसको समझाइये।

उत्तर: समझाने से अपनी समझ को पूरा करने का उत्साह बनता है। जैसे आपने थोड़ा सा समझा, उसको दूसरे को समझाया उससे आप में और आगे समझने का उत्साह बनता है। यह खाका गलत नहीं है। यह समझने की गति बढ़ाता है। हमें उत्सवित भी रहना है, सच्चाई को समझना भी है और सच्चाई को प्रमाणित भी करना है। कुछ लोग पूरा समझ के ही समझाना चाहते हैं वह भी ठीक है। कुछ लोग समझते-समझते समझाना भी चाहते हैं वह भी ठीक है। लक्ष्य है समझदारी हो जाए। समझदारी के बिना प्रमाण होता नहीं है। समझदारी के पूरा हुए बिना ''जीना'' तो बनेगा नहीं। यही कसौटी है। ''जीना'' बन गया तो समझदारी पूरा हुआ, समझाना बन गया। उसके बाद उत्साहित रहने के अलावा और क्या है आप बताओ?

इसमें व्यक्तिवाद जोड़ा तो अकड़बाजी होने लगती है। अकड़बाजी होती है, तो हम पीछे हो जाते हैं। व्यक्तिवाद जोड़ने से पिछड़ना ही है।

**प्रश्न: व्यक्तिवाद के चक्कर से बचने का क्या उपाय है?**

**उत्तर:** स्व मूल्यांकन को हमेशा ध्यान में रखा जाए। दूसरों को जाँचने जाते हैं तो

दिक्कत है। जो स्वयं को पारंगत घोषित किया है, उसे ही जाँचिये। जैसे मैंने अपने को ज्ञान में पारंगत घोषित किया है, आप मुझको जाँच ही सकते हैं। मुझको जाँचने में किसी को झिझक नहीं होनी चाहिए। मुझको उससे कोई दिक्कत नहीं है।

**प्रश्नः समझदारी की घोषणा का क्या मतलब है?**

**उत्तरः** जो स्वयं को समझदार घोषित किया है, उसके परीक्षण से ही अध्ययन करने वाले को अपनी समझ की पुष्टि मिलती है। घोषित किए बिना आपको कोई जाँचने जायेगा नहीं।

मैं पहला व्यक्ति हूँ जिसने स्वयं को समझदारी का प्रमाण घोषित किया। एक आदमी के ऐसे घोषणा किए बिना इस कार्यक्रम में कोई गति हो ही नहीं सकती थी। कितना बड़ा भारी ख़तरा ओढ़ लिया है आप सोचो! इसके बावजूद मैं निर्भय हूँ, मुझे कोई आतंक नहीं, कोई शंका नहीं, किसी तरह का प्रतिक्रिया नहीं क्या बात है यह? क्या चीज है यह? यह एक सोचने का मुद्दा है आप के लिए। मैंने जो समझदारी के प्रमाण होने का जो पहला मील का पत्थर रख कर जो रास्ता शुरू किया वह ठीक हुआ, ऐसा मैं मानता हूँ।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## स्वभाव गति में ही अध्ययन होता है

समझने के क्रम में यथासंभव स्वभाव गति को बनाए रखें। स्वभाव गति में ही मंगल मैत्री होती है। आवेशित गति में मंगल मैत्री नहीं होती। बेहोश रहने में भी नहीं होती। तीसरे चंचलता बने रहने में भी स्वभाव गति नहीं रहती।

स्वभाव गति में ही अध्ययन होता है।

मन सुनते समय भटकता है, इधर-उधर भागता है तब स्वभाव गति नहीं होती। मन को एक ही समय में तीन जगह रहने का अधिकार है इसलिये अध्ययन के लिए मन को एक जगह स्थिर करने की आवश्यकता है। इस का नाम है ध्यान। यदि आपने ध्यान दिया तो अस्तित्व में कोई ऐसी चीज नहीं है, जो आपको बोध न हो। अस्तित्व में किसी वस्तु पर बुरका नहीं लगा है। अस्तित्व की सभी वास्तविकताएं सहअस्तित्व स्वरूप में प्रगट ही हैं। इसलिये अस्तित्व को समझे हुए आदमी द्वारा दूसरे को बोध कराना सहज है। इस का नाम ''प्रबोधन'' है। प्रबोधन को सुनने वाला ''स्वभाव गति'' में ही ग्रहण करता है। ग्रहण करने के बाद यदि कोई बात संतुष्टि नहीं दे पाता है, उस स्थिति में सुनने वाला ''जिज्ञासा'' करता है संतुष्ट होने

के लिए। इस प्रकार सुनाने वाले और सुनने वाले के बीच मंगल मैत्री पूर्वक सारे बात स्पष्ट हो सकता है। सुनने वाले और सुनाने वाले को वस्तु समान रूप से स्पष्ट हो गयी तो दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं रह गया। इस को ''अनन्यता'' या ''प्रेम'' कहा है।

प्रेम या अनन्यता के बारे में परम्परा में नवधा भक्ति (नारद भक्ति सूत्र) की बात किया गया है। इसमें नौ सीढ़ियों से गुजरने की बात कहा गया है। कब उन नौ सीढ़ियों को कोई पूरा करेगा, किसी को पता नहीं चला!

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान

साधना समाधि संयम पूर्वक जो मैंने अध्ययन किया उसमें सर्वप्रथम सहअस्तित्व को देखा। देखने का मतलब है समझा। इससे ''पैदा होता है और मरता है'' इस विपदा से छूट गए। परिवर्तन होता है, परिणाम होता है यह पता लगा। रचना की विरचना हो सकती है। मरता कुछ नहीं है। जैसे शरीर की रचना गर्भाशय में होती है। शरीर की विरचना भी होती है। सत्ता में संपृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति को सहअस्तित्व स्वरूप में देखा यही परम सत्य है। नित्य वर्तमान यही है। मैंने जो साधना की थी, उसके मूल में जिज्ञासा थी ''सत्य से मिथ्या कैसे पैदा होता है?'' उसका उत्तर मिला अस्तित्व में कुछ भी असत्य नहीं है। अस्तित्व सहअस्तित्व स्वरूपी है। सहअस्तित्व में असत्य की कोई जगह ही नहीं है। ''ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या'' जो शास्त्रों में लिखा है, वह गलत सिद्ध हो गया। उसकी जगह होना चाहिए ''ब्रह्म सत्य जगत शाश्वत''।

(जनवरी 2007, अमरकंटक )

## प्रबोधन

प्रबोधन का मतलब है परिपूर्णता के अर्थ में शब्दों को व्यक्त करना। प्रबोधन का प्रयोजन है सामने व्यक्ति को बोध होना। बोध होने के बाद वही व्यक्ति जिसको बोध हुआ, अनुभव पूर्वक पुन: प्रबोधित करेगा। इस ढंग से यह एक से दूसरे में अंतरित होता है। कितने भी लोगों में अंतरित होने पर ज्ञान न कम होता है, न ज्यादा। न भाग होता है, न विभाग होता है। जितना हम दूसरों को बोध कराते हैं हमारा प्रसन्नता उतना ही बढ़ता है। इस प्रसन्नता से और लोगों को बोध कराने का उत्साह बनता है। इससे मानव थकने वाले गुण से मुक्त होता है। सत्य बोध जिनसे हुआ उनके प्रति कृतज्ञ रहना ही बनता है। उसका प्रतिफल वही है। इससे ज्यादा उसका प्रतिफल होता भी नहीं है।

मंगल मैत्री के बिना प्रबोधन सफल हो ही नहीं सकता। मंगल मैत्री पूर्वक हम एक दूसरे पर विश्वास कर सकते हैं। सुनने वाले और सुनाने वाले दोनों। वही है संगीत। संगीत विधि से ही सम्प्रेषणा होता है। सुनाने वाले को यह विश्वास हो कि सुनने वाला ईमानदारी से सुन रहा है और उसको बोध होगा। सुनने वाले को यह विश्वास हो कि सुनाने वाला ईमानदारी से सुना रहा है वह स्वयं बोली जा रही बात में पारंगत है, प्रमाण है।

(अगस्त 2006, अमरकंटक)

## सहअस्तित्व में प्रगटनशीलता स्वाभाविक है

सहअस्तित्व चार अवस्थाओं के रूप में प्रगट होने के लिए तीन प्रकार की क्रियायें हैं भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया और जीवन क्रिया। प्राकृतिक रूप में प्रगटन के बाद परम्परा है। मतलब कोई अवस्था जब प्रगट होती है, तब उसके बने रहने का स्वरूप परम्परा के रूप में स्थापित प्राकृतिक रूप में हो जाता है। इनमें ''घटना-बढ़ना'' भ्रमित मानव की प्रवृत्ति और कार्य व्यवहार से होता है।

पदार्थ अवस्था ही प्राण अवस्था को यौगिक विधि से प्रगट करता है। यह स्वयं स्फूर्त विधि से होता है। इसको कोई बाहरी ताकत नहीं करता। विगत (आदर्शवाद) में बताया था ''यह परमात्मा की करनी है।'' मध्यस्थ दर्शन ने परमात्मा को व्यापक स्वरूप में पहचाना। परमात्मा (व्यापक) का प्रगटन में ''करने वाले'' के रूप में कोई रोल नहीं है। परमात्मा (व्यापक) जड़ चैतन्य प्रकृति में प्रेरणा के स्वरूप में है ही! जड़ प्रकृति परमात्मा (व्यापक) में भीगे होने से प्रेरित है, जिससे क्रियाशील है। यह प्रेरणा नित्य है। यह प्रेरणा घटता बढ़ता नहीं है। वस्तु की क्रिया से व्यापक में कोई क्षति होता ही नहीं है। व्यापक में प्रेरणा अभी मिला, बाद में नहीं मिला, अभी ज्यादा मिला, बाद में कम मिला ऐसा कुछ नहीं होता।

परमाणु अंश भी इस तरह ऊर्जा संपन्न है और घूर्णन गति के रूप में क्रियाशील है। सभी परमाणु अंश एक जैसे हैं। परमाणु की प्रजातियों में भेद उनके गठन में समाहित होने वाले परमाणु अंशों के अनुसार है। सभी तरह के परमाणु प्रजातियों के प्रगट होने के बाद भौतिक संसार तृप्त हो जाता है। उसके बाद ही वह यौगिक क्रिया में प्रवृत्त होता है। भौतिक क्रिया में तृप्ति के बाद ही यौगिक क्रिया में प्रवृत्ति बन जाती है। फिर स्वयं स्फूर्त विधि से यौगिक प्रगटन होता है। यौगिक प्रगटन के लिए समस्त प्रकार के भौतिक परमाणु सहायक (पूरक) हो जाते हैं। यौगिक प्रगटन के लिए ''भूखे'' परमाणु भी सहायक हैं, ''अजीर्ण'' परमाणु भी सहायक हैं। यौगिक विधि से सर्वप्रथम जल ही प्रगट हुआ।

सहअस्तित्व में प्रगटनशीलता स्वाभाविक है। इस प्रगटनशीलता के आधार पर प्राण अवस्था स्थापित हो गयी। प्राण कोष में निहित प्राण सूत्रों में उत्तरोत्तर गुणात्मक विकास से नयी रचना विधि का प्रगटन होता है। इस क्रम में प्राण अवस्था के सभी वृक्ष, वनस्पति, औषधि प्रगट होने के बाद प्राणावस्था तृप्त हो गयी। प्राण अवस्था तृप्त होने के बाद जीव अवस्था की रचनाएँ शुरू हुई। जीव अवस्था भुनगी कीड़े (स्वेदज संसार) से शुरू हो कर अंडज और पिंडज दो प्रकार की प्रजातियाँ स्थापित हुई। उनमें से जलचर, भूचर और नभचर तीनों प्रकार के जीव हुए। शाकाहारी जीवों में प्रजनन क्रिया द्वारा प्रजनन गुणन ज्यादा होता है। मांसाहारी जीवों में अपेक्षाकृत कम प्रजनन गुणन होता है। शाकाहारी संसार की संख्या में संतुलन करने के लिए मांसाहारी संसार का प्रगटन हुआ यह मुझको समझ में आया। जीवावस्था के सभी वंश परम्पराएं स्थापित होने के बाद मानव शरीर रचना का प्रगटन हुआ।

मानव शरीर रचना सर्वप्रथम किसी जीव से ही प्रारंभ हुआ, उसके बाद मानव परम्परा शुरू हुई। जल, सघन वन, सभी प्रकार के जीव जानवर प्रगट होने के बाद ही मानव का प्रगटन हुआ। इन्हीं के बीच मानव पला। मानव शरीर के प्रगटन के साथ ही जीवन अपनी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता प्रगट करने की जगह में आ गया। सहअस्तित्व सहज प्रगटन विधि से इतने सब श्रम के बाद मानव का प्रगटन इस धरती पर हुआ।

मानव ने अपनी कल्पनाशीलता के चलते पहले वनों का संहार करना शुरू किया। विज्ञान युग आने के बाद खनिज संसार का संहार करना शुरू कर दिया। जबकि वन और खनिज के संतुलन से ही ऋतु संतुलन होता है। बिना ऋतु संतुलन के मानव जाति का धरती पर बने रहना सम्भव नहीं है। इस बात को आज के संसार के सामने उजागर करने की जरूरत है। यह जो मैं समझा रहा हूँ यह व्यर्थ नहीं जाना चाहिए।

मानव ने अपनी कल्पनाशीलता के प्रयोग से अपनी परिभाषा के अनुरूप मनाकार को साकार करने का काम बहुत अच्छे से कर लिया। मन:स्वस्थता का खाका वीरान पड़ा रहा। मानव के प्रगट होने से पहले जीव चेतना जीव अवस्था द्वारा प्रगट हो चुकी थी। मानव ने पहले जीवों जैसे ही जीने का प्रयत्न किया, फिर जीवों से अच्छा जीने का प्रयत्न किया। जीवों से अच्छा जीने के लिए मानव ने जीव चेतना का ही प्रयोग किया। इससे ''अच्छा लगने'' तक हम पहुँच गए। ''अच्छा होना'' इससे बना नहीं। ''अच्छा लगने'' की दौड़ में सुविधा संग्रह लक्ष्य बना कर धरती का शोषण किया और मानव परस्परता में अपराध किया। इसके चलते धरती ही बीमार हो गयी। अब विकल्प की आवश्यकता आ गयी। उसी अर्थ में मध्यस्थ दर्शन अध्ययन के लिए प्रस्तुत है। मध्यस्थ दर्शन मानव जाति के लिए जीव चेतना से मानव चेतना

में संक्रमित होने लिए प्रस्ताव है। मानव चेतना पूर्वक ही मानव परम्परा धरती पर बनी रह सकती है। और किसी विधि से नहीं।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## चेतना विकास

चेतना विकास से मध्यस्थ दर्शन का क्या आशय है?

चेतना विकास से आशय है जीव चेतना से मानव चेतना में संक्रमित होना। जीव चेतना का अर्थ है: प्रिय, हित, लाभ दृष्टियों से विचार करते हुए चार विषयों (आहार, निद्रा, भय और मैथुन) और पाँच संवेदनाओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) के लिए जीना। मानव चेतना का अर्थ है ज्ञान (सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान) और उससे अनुबंधित विवेक और विज्ञान के अनुसार जीना। ज्ञान विवेक विज्ञान कुल मिला कर मानव चेतना का विस्तार है। मध्यस्थ दर्शन मानव चेतना में संक्रमित होने के लिए अध्ययन विधि (शिक्षा) को प्रस्तावित करता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## विगत की मान्यताओं का विकल्प

व्यापक में प्रकृति प्रेरणा पाने योग्य स्थिति में है। प्रकृति व्यापक में स्वयं स्फूर्त विधि से प्रेरणा पाता ही रहता है। व्यापक ऊर्जा स्वरूप में है। प्रकृति व्यापक में संपृक्त होने के कारण ऊर्जा संपन्न रहती ही है। इस सम्पृक्तता के कारण ही प्रकृति में क्रियाशीलता है। यह क्रियाशीलता पूर्वक ही सहअस्तित्व सहज नियति क्रम का प्रगटन है। नियति क्रम है विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति।

सहअस्तित्व को न पहचानने से, जीवन को न पहचानने से, मानवीयतापूर्ण आचरण को न पहचानने से इसके विपरीत कुछ मान्यताएं रहती हैं। इन मान्यताओं में परस्पर कोई तालमेल न बैठने से मानव जाति को कोई निश्चित समझदारी हाथ लगा नहीं जिससे न्याय प्रदायी क्षमता स्थापित की जा सके, सही कार्य व्यवहार किया जा सके, सत्य बोध कराया जा सके। विगत की मान्यताओं से इनको लेकर मानव जाति ज्ञानी, अज्ञानी और विज्ञानी सर्वथा असफल रहे। यह फैसला हम अपने में नहीं कर पाते हैं, तो इस प्रस्ताव के अध्ययन में हम आगे बढ़ नहीं सकते। विगत की किसी मान्यता के साथ इस प्रस्ताव का गुड़-गोबर ही करेंगे।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## अध्ययन क्रम में अपना मूल्यांकन

अध्ययन क्रम में जीवन की साढ़े चार क्रियाएं दश क्रियाओं को पूरा करने के पक्ष में रहती हैं। अध्ययन पूरा करने के बाद ही दसों क्रियाओं का प्रमाण हो पाता है।

**प्रश्न: अध्ययन करते समय स्वयं को साढ़े चार क्रिया में माने या उससे अधिक?**

कहाँ मान सकते है साढ़े चार से अधिक? यही कह सकते हैं साढ़े चार क्रिया से जो प्रयोजन था, वह पूरा होता जा रहा है। साढ़े चार क्रिया पूर्वक आप भ्रमित पहले जी रहे थे। वहाँ आपको अनुमान हुआ ऐसे जीना पर्याप्त नहीं है। उसके बाद आपको दसों क्रियायें चालित करने का स्त्रोत मध्यस्थ दर्शन के रूप में मिल गया। उसके अध्ययन में आप लग गए। अध्ययन क्रम में आपको लगा कुछ भाग आपको बोध हो गया है, कुछ बोध होना शेष है। तब तक आपके जीवन की साढ़े चार क्रियाओं का समर्पण दश क्रियाओं के लिए हो गया कि नहीं? इससे साढ़े चार क्रिया से उत्थान की ओर गति हुई। उत्थान हो गया तब मानेंगे जब दसों क्रियायें प्रमाणित हुआ।

अध्ययन क्रम में साढ़े चार क्रियायें दश क्रियाओं को पूरा करने के लिए समर्पित रहती हैं। गुणात्मक परिवर्तन के लिए समर्पित होना जिज्ञासा के आधार पर आता है। जिज्ञासा कैसे आया? जीव चेतना में जीने से जो धक्के खा रहे हैं उससे आया! जीव चेतना में जीने से असहमति स्वयं में होने के बाद ''सही क्या है?'' इसके लिए स्वयं में जिज्ञासा उदय होती है। सही का अध्ययन करते हुए हमको जितना संतुष्टि मिलती है उसको हम तत्काल प्रकाशित करते ही हैं। इस ढंग से हैं अपने (जीवन विद्या) परिवार में सभी आज। यह गलत नहीं हुआ। इससे उपकार यह हुआ संसार में इस प्रस्ताव की एक ध्वनि तो पहुँचने लगी! लोगों के ध्यान आकर्षण के लिए यह ध्वनि पहुँचना जरूरी था।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## वैचारिक फंसावट का विकल्प

मानव जाति की वैचारिक फंसावट दो जगह है।

(1) शरीर को जीवन मान लेना

(2) रहस्यमयता को सत्य मान लेना (आस्था)

शरीर को जीवन मान लेने से शरीर से होने वाली संवेदनाओं को राजी रखने के लिए

भौतिक साधनों की होड़ शुरू हो जाती है। जीवन की अक्षय अपेक्षाएं सामयिक शरीर संवेदनाओं से पूरी हो नहीं सकती चाहे कितने भी भौतिक साधन इकठ्ठा कर लें। शरीर को जीवन मान लेने से सुविधा संग्रह ही जीवन का लक्ष्य बन जाता है। सुविधा संग्रह का तृप्ति बिन्दु मिलता नहीं है। किसी एक व्यक्ति को भी नहीं मिला, न आगे किसी को मिलने की सम्भावना है। यही भौतिकवाद की वैचारिक फंसावट है। इसका निदान यही है शरीर को शरीर जाना माना जाए, जीवन को जीवन जाना माना जाए। शरीर जीवन का साधन है।

रहस्यमय आस्था का मतलब है बिना जानते हुए मान लेना। रहस्य का पूजा करो! आस्था करो! शास्त्र में जो लिखा है वह मान लो! आज्ञापालन, उपदेश, भाषण को मान लो! आस्था के आधार पर जीना आज भी जनसामान्य को सुविधा संग्रह की तुलना में ज्यादा अच्छा लगता है। लेकिन अच्छा लगने मात्र से अच्छा हुआ नहीं। आस्था का प्रमाणीकरण नहीं हुआ। हम आस्था ही करते रह गए। यही आदर्शवाद की वैचारिक फंसावट है। इसका निदान है माने हुए को जान लो, जाने हुए को मान लो। बिना जाने हुए मान लेना रूढ़ी है। जान कर मानते हुए जीना प्रमाण है।

मध्यस्थ दर्शन भौतिकवाद और आदर्शवाद दोनों के विकल्प के स्वरूप में प्रस्तुत हुआ है। इसमें प्रस्तावित है:-समझदारी से समाधान, श्रम से समृद्धि।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## सच्चाइयों की स्वीकृति

बोध में सभी सच्चाइयाँ ही स्वीकार होती हैं। सच्चाइयों का स्वीकृति बुद्धि में ही होता है। भाषा की सीमा में नहीं होता। ध्वनि मत से स्वीकृति नहीं है। वस्तु मत से है। सहअस्तित्व स्वरूप में सभी सच्चाइयाँ रखा है। सच्चाइयों का तीन खाका है सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान। सहअस्तित्व में ही जीवन है और मानवीयतापूर्ण आचरण है। सहअस्तित्व में ही पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था (मानव) है। सहअस्तित्व का मूल रूप व्यापक में संपृक्त प्रकृति है। यह पाँच सूत्रों के रूप में है सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में विकास क्रम, सहअस्तित्व में विकास, सहअस्तित्व में जागृति क्रम, सहअस्तित्व में जागृति। यही पाँच सूत्र अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित होते हैं।

समझ जीने में ही प्रमाणित होती है। समझ गए हैं और ''जीने'' के लिए प्रयत्न कर रहे हैं यह एक खाका है। दूसरा खाका है प्रयत्न पूरा हो गया है, अब प्रमाणित हैं। ये दो ही खाका है। इसके अलावा और कोई तरीका ही नहीं है। यह हर व्यक्ति के साथ प्राण संकट है, या

सौभाग्य है! शरीर के साथ वरीयता करते हैं तो प्राण संकट है। शरीर के साथ वरीयता छोड़ते हैं तो सौभाग्य लगता है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## मानव इतिहास मध्यस्थ दर्शन के दृष्टिकोण से

मानव जब धरती पर सबसे पहले प्रगट हुआ तो जीव जानवरों की तरह ही जिया। जीव चेतना में मानव जिया पर जीवों से अच्छा जीना चाहा। मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता है इसलिए वह जीवों से अच्छा जीना चाहा। यह ''अच्छा चाहना'' मानव में गुणात्मक परिवर्तन की सहज अपेक्षा का ही प्रदर्शन है।

मानव ने अपनी कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता के चलते आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन की सभी वस्तुओं का इन्तजाम कर लिया। ''अच्छा चाहने'' के अर्थ में वस्तुओं का तो इन्तजाम कर लिया पर अपनी आवश्यकता का निर्णय नहीं होने से वस्तुओं के पीछे पागलपन बढ़ता गया। भौतिकवाद व्यवहारिक नहीं हुआ।

कल्पनाशीलता को दूसरी ओर मानव ने ''रहस्य'' के लिए भी प्रायोजित किया। ''अच्छा चाहने'' के लिए ही यह किया, इसमें दो राय नहीं है। रहस्यवाद व्यवहारिक नहीं हुआ।

इस तरह दोनों तरह से मानव को स्थिरता निश्चयता की जगह नहीं मिली। इसलिए मानव आवारा हो गया। आवारा हुआ तो मनमानी करता ही है। मनमानी करने के परिणाम हमारे सामने आ ही गए हैं। धरती बीमार होने से मानव की गलती उजागर हो गयी। अब विकल्प की आवश्यकता बन गयी।

मानव इतिहास को मैं ऐसे पहचानता हूँ। अभी मानव इतिहास को ऐसे कोई पहचानता नहीं है। घटना क्रम को इतिहास बताते हैं। यह घटना हुई, फिर दूसरी घटना हुई इसको अभी इतिहास बताते हैं। मानव में गुणात्मक परिवर्तन की सहज अपेक्षा यदि नहीं होती तो मानव चेतना के इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की जगह ही नहीं होती। धरती का बीमार होना भी मानव चेतना में संक्रमित होने की आवश्यकता को ही इंगित करता है। अपेक्षा और आवश्यकता के साथ अब सम्भावना का भी उदय हो गया है। मध्यस्थ दर्शन के अनुसंधान पूर्वक मानव जाति की जागृति की सम्भावना उदय हो चुकी है। यह एक ऐतिहासिक घटना है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

# जीने दो, जियो

मानव को चारों अवस्थाओं के साथ संतुलित रहने के लिए आवश्यक नियम है ''जीने दो, जियो''। इसी क्रम में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य प्रमाणित होता है।

ज्ञान अवस्था (मानव) के साथ सम्बन्ध में ''जीने देने'' का मतलब है न्याय। न्याय पूर्वक ही मानव संबंधों में संतुलन प्रमाणित होता है। न्याय का मतलब है मानव संबंधों में प्रयोजनों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह और उभय तृप्ति। इस तरह जीने देने पर ही मानव अपने जीने का प्रमाण प्रस्तुत कर पाता है।

जीव अवस्था के साथ सम्बन्ध में ''जीने देने'' का मतलब है जीवों के ''जीने की चाहना'' धर्म के प्रमाणित होने में पूरक होना, उसमें हस्तक्षेप नहीं करना।

वनस्पति संसार, रसायन संसार और भौतिक संसार के साथ सम्बन्ध में ''जीने देने'' का मतलब है उनको ''रहने देना''। उनकी प्राकृतिक व्यवस्था में पूरक होना।

इसके विपरीत भौतिकवाद का प्रतिपादन है ''अति बलवान को ही जीने का अधिकार है।'' मतलब सबको खा पी कर हजम करो! मध्यस्थ दर्शन के ''जीने दो, जियो'' और भौतिकवाद के इस प्रतिपादन में कितना दूरी है? आप ही तय करो! आप मेरे कहने पर कुछ करो ऐसा मैं नहीं कहता हूँ। मैं केवल अपराध मुक्त जीने का रास्ता बताता हूँ। आपको अपराध में ही जीना है तो उसका तो पूरा दूकान ही खुला है! धरती बीमार होने से यह बात तो उजागर हो गयी है कि धरती के साथ मानव द्वारा ज्यादती हुई है। यह तो अब सामान्य आदमी को भी पता चल गया है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

# विचार का मूल रूप

**प्रश्नः विचार का मूल रूप क्या है?**

**उत्तरः** विचार का मूल रूप है तुलन। तुलन ही गति रूप में है विश्लेषण। वही विचार है। तुलन के बिना आदमी एक कदम आगे नहीं रख सकता। जैसे प्रिय तुलन के अर्थ में ठीक लगना, हित तुलन शरीर स्वस्थता के अर्थ में ठीक लगना, लाभ के अर्थ में ठीक लगना। फिर उसी के अनुसार विश्लेषण हो जाता है। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के तृप्ति बिन्दु मिलने के प्रयोजन से ही मानव विश्लेषण करता है। मानव के सुख की मूल चाहना के लिए

तुलन करना बहुत आवश्यक है। सुख की मूल चाहना के प्रमाणित होने में न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक तुलन होता है, यह मध्यस्थ दर्शन का प्रतिपादन है।

**प्रश्न: क्या भाषा के साथ ही विचार होता है?**

**उत्तर:** विचार जीवन में है ही। शब्द/भाषा मानव परम्परा में विचारों की सम्प्रेषणा के लिए माध्यम है। भाषा के मूल में ''भाव'' होता है। मध्यस्थ दर्शन ने ''भाव'' के मूल में जीवन क्रियाओं को पहचाना। आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और अनुभव ये भाव भाषा द्वारा संप्रेषित होते हैं। शब्द द्वारा सम्प्रेषणा का प्रयोजन है दूसरे व्यक्ति को किसी क्रिया, प्रयोजन, वस्तु, घटना का बोध कराना।

आदर्शवादियों ने ''भाव'' को पाँच संवेदनाओं की सीमा में ही पहचाना। ज्ञान ही ''पूर्ण भाव'' है ऐसा बताया। भक्ति वादियों ने जिस देवी देवता को मानते हैं, उसका स्वरूप ही ''पूर्ण भाव'' है यह बता दिया। वह सब रहस्य हो गया प्रमाण नहीं हुआ।

भौतिकवादी ''भाव'' को नहीं मानते। जो बात यांत्रिक विधि से प्रमाणित नहीं होता उसको वे काल्पनिक बताते हैं।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार जीवन की दस क्रियाएं (स्थिति में पाँच और गति में पाँच) ही भाव हैं। इन्हीं भाव में ही सभी मूल्य निहित हैं। मानव परम्परा में जीवन की दस क्रियाएं ही मौलिक रूप में व्यक्त होने की वस्तु है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## जीवन ज्ञान का पहला सिद्धांत

अधिक बल और शक्ति, कम बल और शक्ति के माध्यम से प्रगट होता है। जीवन भौतिक रासायनिक रचना (शरीर) से अधिक बल और शक्ति संपन्न है। इसलिये जीवन शरीर के माध्यम से प्रगट होता है। जैसे बिजली अपने से कम बल शक्ति वाली वस्तु के माध्यम से प्रगट होता है। इस बात को अच्छे से समझना पड़ेगा। जीवन ज्ञान का यह सबसे पहला सिद्धांत है।

जीवन अक्षय बल और अक्षय शक्ति संपन्न है। इसमें कम ज्यादा होने की बात ही नहीं है। सटीक होने की बात है। सटीक होने के लिए गुणात्मक परिवर्तन है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

# जीवन में मूल्यांकन

मूल्यांकन का मतलब सम्पूर्ण पहचान। शरीर का पहचान मन करता है। मन शरीर की पूरी हैसियत को पहचानता है।

**प्रश्नः ''मन शरीर की पूरी हैसियत को पहचानता है'' इसका क्या अर्थ है?**

**उत्तरः** भ्रमित मानव का मन शरीर क्रियाओं और शरीर में होने वाली पाँच संवेदनाओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) को पहचानता है।

मन में मान्यता का अधिकार रखा है। शरीर में जो संवेदनाओं को पहचाना तो शरीर को ही जीवन मान लेता है। यही भ्रम का आधार है। मन ने जैसा पहचाना वैसा ही वृत्ति सहमत हो कर, चित्त में चित्रण सहमत हो जाता है। वहीं तक अटका है अभी।

वृत्ति मन को पहचानता है। अर्थात् वृत्ति मन का मूल्यांकन करता है। मन ने संवेदनाओ को जो पहचाना उसमें सही गलत क्या हुआ यह तुलन/विश्लेषण वृत्ति में होता है। अनुभव से पहले संवेदनाओं के अर्थ में ही प्रिय, हित, लाभ दृष्टियों से यह सही गलत को तुलन करना बनता है। मन में जो संवेदनाओ की पहचान हुई उसके अनुमोदन में ही वृत्ति में तुलन और चित्त में चित्रण हो जाता है। इस तरह वृत्ति शरीर मूलक दृष्टियों से मन का दृष्टा बना रहता है।

चित्त में वृत्ति का मूल्यांकन होता है। चित्त इस बात का दृष्टा होता है कि वृत्ति में क्या तुलन हुआ। यह चित्रण में जाता है। शरीर मूलक जीने में चित्रण से आगे की कोई बात होती नहीं है।

जीवन मूलक जीने में अनुभव से शुरू करते हैं। वह मन से शुरू नहीं होता। अनुभव के अनुरूप बुद्धि, चित्त, वृत्ति और मन हो जाते हैं। मन के द्वारा शरीर के साथ प्रमाण होता है। इस तरह शरीर के द्वारा जीवन अपने आप को प्रमाणित करता है। इस तरह वृत्ति में प्रिय, हित, लाभ के स्थान पर न्याय, धर्म, सत्य दृष्टियों के आधार पर तुलन होता है। बोध में सहअस्तित्व की स्वीकृति रहती है। चिंतन पूर्वक न्याय, धर्म, सत्य को प्रमाणित करने की विधि आ गयी। यह होने से जीवन की दसों क्रियाएं प्रमाणित हो गयी।

जीवन मूलक विधि से जीने में वस्तु की पूरी पहचान (रूप, गुण, स्वभाव और धर्म) तथा सहअस्तित्व की पूरी पहचान होती है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## ज्ञान

व्यापक ही ज्ञान है। ज्ञान में सभी अवस्थाओं का स्वभाव और धर्म निहित होता है। क्रिया में रूप और गुण रहता है। ज्ञान और क्रिया का सहअस्तित्व है।

स्वभाव और धर्म समझ में आने के बाद मानव को सहअस्तित्व में बोध होना बन जाता है। सहअस्तित्व में बोध होना मतलब पूरा अस्तित्व ही समझ में आ जाना।

चारों अवस्थाओं में, स्वभाव और धर्म ज्ञान स्वरूप में है, जो आचरण के रूप में प्रमाणित होता है। यह मुझ को समझ में आया। अभी तक यह न भौतिकवादी विधि से सफल हुआ था, न आदर्शवादी विधि से। आदर्शवादियों ने जगत को मिथ्या बता कर टाल दिया। भौतिकवादियों ने यंत्र में ले जाकर लटका दिया। इस तरह हम ''समझ'' से चूक गए। अब विधि यही है पूरा समझें और समझ के अनुसार जियें।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## तर्क की सीमा

तर्क साक्षात्कार तक पहुँचाने के लिए साधन है। शब्द का अर्थ होता है यहाँ तक तर्क है। अर्थ के साथ कोई तर्क नहीं है। इस का नाम है साक्षात्कार। अर्थ का मतलब है अस्तित्व में वस्तु। अर्थ के साथ क्या तर्क करोगे? शब्द का अर्थ समझ में आया = साक्षात्कार हुआ। साक्षात्कार के बाद बोध ही है, अनुभव ही है, अनुभव प्रमाण बोध ही है, प्रमाणित होने का संकल्प ही है। इतने तक में कोई तर्क नहीं है। अनुभव मूलक विधि से चिंतन करते हुए प्रमाणित होने के लिए जो चित्रण करते हैं वहाँ से फिर तर्क का उपयोग है। सम्प्रेषणा का तर्क सम्मत होना आवश्यक है तभी वह शिक्षा में आ सकता है।

साक्षात्कार होता गया तो अनुभव की सम्भावना उदय होता गया। साक्षात्कार पूरा होने पर बोध और अनुभव होता ही है। साक्षात्कार होने से तृप्ति की सम्भावना उदय हो जाती है। तृप्ति अनुभव के बाद ही है। दसों क्रियाएं प्रमाणित होने पर ही जीवन तृप्ति होती है, इससे पहले नहीं।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## होना क्या चाहिए? इसका उत्तर देकर इस प्रस्ताव को नकारिये

सहअस्तित्ववाद के इस प्रस्ताव पर तर्क से छेद करने का कोई जगह ही नहीं है। यह

पूरा प्रस्ताव तर्क सम्मत है।

दूसरे, इस बात को नकारने की कोई जगह नहीं है।

बाकी बचा नफरत! नफरत करने का अधिकार हर व्यक्ति के पास रखा है। आप इससे नफरत कर सकते हैं।

मैं अस्तित्व क्यों और कैसा है इसके लिए अपना अनुभव आपके सामने प्रस्ताव रूप में रखता हूँ।

''हम आपकी बात नहीं मानते।'' एक उत्तर आता है।

आपकी बात शिरोधार्य है, पर होना क्या चाहिए? मैं कहता हूँ।

''वह हम नहीं जानते।'' बदले में जवाब आता है।

इस तरह कुछ लोग अपना रास्ता इस प्रस्ताव के लिए बंद करके बैठे हैं।

होना क्या चाहिए इसको बता कर इस प्रस्ताव को नकारिये।

देखिये इस प्रस्ताव का लोकव्यापीकरण आसान तो नहीं है, पर जरूरी है। आसान नहीं है, क्योंकि हम इतना व्यर्थ के तर्क में फंस गए हैं। जो जितना फंसा हुआ है, उसको उतना ही मुश्किल लगता है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## अध्ययन की परिभाषा

अध्ययन = अनुभव की रौशनी में अधिष्ठान के साक्षी में स्मरण पूर्वक किया गया सभी क्रियाकलाप

अधिष्ठान के साक्षी का मतलब है आत्मा का साक्षी। आत्मा जो जीवन का मध्यांश है। मध्यांश निरंतर अनुभव का प्यासा रहता है। अनुभव की रौशनी में जो हम अस्तित्व की वास्तविकताओं को पहचानते हैं, उसको ''क्रियाकलाप'' नाम दिया। अनुभव को प्रमाणित करना ही ''अनुभव की रौशनी'' है। मैं जो अनुभव मूलक विधि से प्रस्तुत हो रहा हूँ, उसको आप जब स्वीकारते हैं तभी आप का अध्ययन है। मैंने जो संप्रेषित किया वह अनुभव की रौशनी में किया। आपने जो ग्रहण किया वह अनुभव की प्यास (अपेक्षा) में किया। प्यास है,

इसलिए ग्रहण करते हैं। मैं जो समझाता हूँ, वह अपने अनुभव की रौशनी में समझाता हूँ। आप में अनुभव की प्यास है, मुझ में अनुभव का स्त्रोत है। इन दोनों के संयोग में अध्ययन है। इतना ही है। इसमें कोई घटाने बढ़ाने की जरूरत नहीं है। आप अनुभव करने के बाद जब किसी तीसरे को समझाते हो, तो वह आपके अनुभव की रौशनी में समझाते हो।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## आत्म विश्वास और विश्वास

आत्म विश्वास का मतलब है अनुभव में विश्वास। आत्म विश्वास का मूल आत्मा में अनुभव ही है। आत्मा जीवन का मध्यांश है। सहअस्तित्व में अध्ययन पूर्ण होने पर ही आत्मा अनुभव करता है। अनुभव सम्पन्नता ही समझदारी है। समझदारी से पहले किसी को आत्म विश्वास नहीं हुआ।

आत्म विश्वास के आधार पर ही स्वयम् में विश्वास होता है। आत्म विश्वास के बिना स्वयं में विश्वास हो ही नहीं सकता। आत्म विश्वास ही श्रेष्ठता का सम्मान करने में विश्वास का आधार है। आत्म विश्वास ही अपनी प्रतिभा में विश्वास का आधार है। आत्म विश्वास ही प्रतिभा के अनुरूप व्यक्तित्व में विश्वास का आधार है। आत्म विश्वास ही व्यवहार में सामाजिक होने में विश्वास का आधार है। आत्म विश्वास ही उत्पादन में स्वावलंबी होने में विश्वास का आधार है।

स्वयं में विश्वास का परम्परा में गवाही या प्रमाण होता है। वह संबंधों की पहचान और मूल्यों के निर्वाह में गवाहित या प्रमाणित होता है।

आत्म विश्वास से जीने के लिए ही अध्ययन है।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## संपर्क सूचना अध्ययन अनुभव प्रमाण

साक्षात्कार सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में विकास क्रम, सहअस्तित्व में विकास, सहअस्तित्व में जागृति क्रम और सहअस्तित्व में जागृति का होता है जो अनुभव में जाकर सूत्रित होता है। सभी दिशायें/कोण एक बिन्दु में समाते हैं। वैसे ही सारी मध्यस्थ दर्शन की व्याख्या अनुभव बिन्दु में समाती है। बिन्दु का कोई लम्बाई चौड़ाई नहीं है। यह हुआ सार ग्रहण। फैलावट से बिन्दु तक अध्ययन है। अनुभव बिन्दु है। फैलना परम्परा है। अनुभव एक बिन्दु है उसका विस्तार अनंत दूर तक फैलता है। कहीं रुकता नहीं है वह!

धर्म अनुभव में ही समझ में आता है। धर्म अनुभव में आ गया तो सब समझ में आ गया। इस बिन्दु को पकड़ने की जरूरत है। बाकी सब तर्क संगति से समझ में आ ही जाता है। रूप और गुण तक चित्रण (स्मृति) में रहता है। स्वभाव का बोध होता है। अनुभव प्रमाण बोध होना (अनुभव मूलक विधि से) मतलब, धर्म बोध होना। इस तरह धर्म और स्वभाव जुड़ गया। वही चित्त के स्तर पर आ कर रूप और गुण से जुड़ता है। इसकी जब तर्क संगत व्याख्या करने जाते हैं तो वह फैलने लगता है। इस तरह हम धर्म की व्याख्या करने योग्य हो जाते हैं।

अध्ययन विधि से अनुभव एक से दूसरे में अंतरित होता है ऐसा मैं शुरू किया हूँ। अनुभव अंतरित होने पर ही संसार का कल्याण है, सर्वशुभ है। इसमें समानता का स्वरूप निकलता है। अगर एक ही व्यक्ति अनुभव कर सकता तो समानता हो ही नहीं सकती थी। अनुभव के बाद सभी समान हैं।

अनुभव तक अध्ययन है। उसके पहले सूचना है। उससे पहले संपर्क है।

संपर्क के बाद ही सूचना है। बिना संपर्क साधे सूचना कैसे दोगे?

सूचना के बाद ही अध्ययन है। बिना सटीक सूचना के अध्ययन कैसे करोगे?

अध्ययन के बाद ही अनुभव है। बिना अध्ययन किए अनुभव कैसे करोगे?

अनुभव के बाद ही प्रमाण है। बिना अनुभव के प्रमाणित क्या करोगे?

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## पहचान और निर्वाह

हर वस्तु अनंत कोण संपन्न है। हर वस्तु हर कोण से दिखता है। हर वस्तु किसी न किसी कोण से दूसरे वस्तु से जुडा ही रहता है। इस तरह हर वस्तु दूसरे पर प्रतिबिंबित है। हर वस्तु नियति क्रम में अपनी अवस्थिति के अनुसार दूसरे वस्तु के साथ अपने सम्बन्ध को पहचानता है और निर्वाह करता है।

मानव को जो सम्बन्ध समझ में आ गया उसको वह पहचानता है और निर्वाह करता है। सम्बन्ध जो समझ में नहीं आया, उसको न वह पहचानता है न निर्वाह करता है। मानव को चारों अवस्थाओं के साथ अपने सम्बन्ध को पहचानने की जरूरत है, तभी वह भ्रम और अपराध से मुक्त हो पाता है। मानव जब भ्रम और अपराध से मुक्त होता है तभी धरती अपने

आप को स्वस्थ कर सकती है। अपराध करते रहेंगे तो धरती पर आदमी तो नहीं रहेगा।

(अप्रैल 2008, अमरकंटक)

## अध्ययन का महत्व और अध्ययन की वस्तु

अध्ययन के मुद्दे पर जो मैंने अनुभव किया है अक्षर, शब्दों, वाक्यों को पढ़ना अध्ययन नहीं है। यह पूरा का पूरा ''पठन'' ही कहलाया। मैंने ऐसे परिवार में शरीर यात्रा शुरू की, जिसमें लाखों वैदिक ऋचाओं को मुखस्थ कर, वापस बोल कर दिखाए हैं। लाखों ऋचाओं को! इससे ज्यादा कुछ कहा नहीं जा सकता। ये सब करने के बावजूद इससे हम सर्व मानव के शुभ के लिए एक सूत्र भी प्रस्तुत नहीं कर पाये। इस कष्ट को मिटाने के लिए मैंने पचास वर्ष प्रयत्न किया। इन पचास वर्षों का जो अनुभव है, वह मैं आप के सामने रखने जा रहा हूँ।

हर शब्द का अर्थ होता है किसी भी भाषा में हो! संसार में अनेक भाषाएँ तैयार हुआ है। संसार की सभी भाषाओं के मूल में अर्थ निकालने जाएँ तो यही है कि ''सत्य भासना चाहिए''। सच्चाई दूसरों तक पहुँचना चाहिए। दूसरों के अन्तःकरण में सच्चाई प्रवेश होना चाहिए। यह बात ''भाषा'' के अर्थ में हमको इंगित होता है। यह अपेक्षा सब में है। कोई भाषा मैं आपसे सुनूंगा तो कोई सच्चाई मुझे मालूम होगा ऐसा मेरी अपेक्षा है। मुझसे कोई दूसरा भाषा सुनेगा तो उसकी भी यही अपेक्षा होगी कि कोई सच्चाई मुझसे उसको सुनने को मिलेगा। यह बात सबमें समान है। इस आधार पर सारे वेदों की रचना हुई। तीनों वेद सच्चाई को बताने के लिए प्रतिज्ञा लिया। सच्चाई के बारे में अंत में बताया कि सच्चाई अव्यक्त है, अनिर्वचनीय है। अनिर्वचनीय मतलब शब्दों से जिसको बताया नहीं जा सकता। यह मेरे कष्ट का कारण हुआ। और सबके लिए यह कष्ट का कारण हुआ या नहीं यह मैं नहीं कह सकता। मेरे लिए यह तकलीफ का कारण हुआ। सत्य भी हो, सच्चाई भी हो पर अव्यक्त भी हो, अनिर्वचनीय भी हो तो बाकी वर्चनीय क्या हुआ? इस तरह वर्चनीय सब मिथ्या हो गया? इस तकलीफ को दूर करने के लिए मैंने प्रयत्न किया।

उस प्रयत्न में मैं अपने को सफल मानता हूँ।

मैं जो अनुभव किया हूँ उसको मैं विनय ही कर सकता हूँ। उसको समझना हर व्यक्ति की जिम्मेदारी है। और उस जिम्मेदारी के साथ रखी है स्वतंत्रता। चाहे समझें, या न समझें। किंतु इस बात की मुझ में स्वीकृति है मैंने जो पता लगाया है उसमें सच्चाई को बांस पे चढ़ कर, चिल्ला कर बोला जा सकता है अच्छे से! और सच्चाई एक से दूसरे को समझ में आयेगी! ऐसा मेरा विश्वास है। यहाँ से मैं शुरू किया हूँ।

इस आधार पर अध्ययन के मुद्दे पर आपको इंगित करना चाहा ''हर शब्द का अर्थ होता है।'' वह अर्थ शब्द नहीं है। अर्थ मानव को समझ में आता है। दूसरे किसी को समझ में आएगा नहीं। पत्थर को हम बोलेंगे वह समझेगा नहीं। शब्द का प्रभाव पत्थर पर भी होता है। वनस्पतियों पर भी होता है। जानवरों पर भी होता है। मानव पर भी होता है। मानव पर होने के बाद उसका अर्थ खोजने की इच्छा मानव में बनी हुई है। हर मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता प्रभावशील है। आज पैदा हुए बच्चे में भी और कल मर जाने वाले वृद्ध में भी यह प्रभावशील है। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता इस के आधार पर हर मानव में कहे गए शब्द के अर्थ तक पहुँचने की इच्छा बनी हुई है। यही एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को अध्ययन कराने का स्त्रोत है। सर्वप्रथम मानव में अध्ययन करने का स्त्रोत बना है कि नहीं यह सोचना मेरा दायित्व था। उसमें पता लगा हर व्यक्ति में यह पूंजी रखी हुई है। क्या पूंजी? कुछ भी सुनेगा तो पूछेगा इसका मतलब क्या है? इस ओर जाने का अधिकार सबमें रखा है। सर्व मानव में रखी हुई इस कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता की पूंजी को समझ करके ही मैंने अध्ययन होने पर विश्वास किया।

''सहअस्तित्व परम सत्य है।'' जैसे यह अध्ययन का एक मुद्दा है। ''परम सत्य'' का मतलब क्या होता है? सत्य वही है जो निरंतर और एक सा बना रहता है। होने के रूप में व्यापक है और अनंत एक-एक वस्तुएं हैं। कभी भी व्यापक वस्तु से एक-एक वस्तुएं अलग-अलग हो नहीं सकते। अलग होने की सम्भावना नहीं है। अलग होने का तौर-तरीका अस्तित्व में नहीं है। प्राकृतिक रूप में भी नहीं है और अप्राकृतिक रूप में जो मानव प्रयत्न करता है, वैसे भी नहीं है। न हो सकता है, न अभी तक हुआ है। इस तरह मानव सहअस्तित्व को परम सत्य के स्वरूप में समझ कर, सहअस्तित्व में व्यवस्था को पहचानता है। मानव ने जितने भी सहअस्तित्व विरोधी कार्य किया, स्वयं समस्या में फंस गया।

समस्या में फँसना मानव के दु:ख का कारण हुआ। इसके लिए अध्ययन के लिए सूत्र दिया:

समस्या = दु:ख

समाधान = सुख = मानव धर्म

दु:ख से पीड़ा होता है। पीड़ित व्यक्ति स्वयं में स्वस्थ रहता नहीं है, दूसरों का उपकार तो स्वप्न में भी नहीं करेगा। पीड़ित आदमी केवल दूसरों के लिए परेशानी पैदा करेगा और कुछ नहीं करेगा। यह आप को भी समझ में आता है, मुझ को भी समझ में आता है।

यह समझने के बाद हम अनुमान कर सकते हैं ''स्वस्थ आदमी स्वयम् भी स्वस्थ रहता है, दूसरों को स्वस्थता देने का प्रयत्न भी करता है।'' भले ही यह आज संसार में प्रचलित न हों, हम इस बात को अनुमान रूप में तो स्वीकार कर ही सकते हैं। स्वस्थ आदमी स्वयं स्वस्थ रहता है और संसार को स्वस्थ करने के लिए हाथ पैर मारता ही है चाहे सफल हों, या असफल हों! आज तक के ''अच्छे'' आदमीयों के हाथ पैर मारने को मैंने इस रूप में निकाल लिया। बहुत अच्छे आदमी संसार को उपकार करने के लिए कहीं न कहीं कोशिश किया है। इन कोशिशों में कोई कमी नहीं, उन पर कोई शंका नहीं, कोई कृपणता नहीं पर सफलता का आंकलन करने जाते हैं, तो हमको पता लगता है ये सफल नहीं हों पाये। क्यों सफल नहीं हों पाये, यह पूछने पर पता चलता है ''उपकार क्या है?'' यह ध्रुवीकृत नहीं हुआ।

अभी हम जो अध्ययन करते हैं उसमें पहले यह ध्रुवीकृत होता है कि उपकार क्या है? समझे हुए को समझाना है पहला उपकार। सीखे हुए को सिखाना है दूसरा उपकार। किए हुए को कराना है तीसरा उपकार। इसमें से सीखने सिखाने और करने कराने के बारे में आदमी बहुत कुछ किया है। पर समझने समझाने का भाग अधूरा रह गया। इसका कारण यह रहा वैदिक विचार से लेकर भौतिकवादी विचार तक हम यह मान कर चले हैं कि ''करके समझो।'' मानव जाति आदि काल से ''करके समझो'' विधि से चला है। जबकि मानव जाति में करके समझना नहीं होता। जीव जानवरों में करके चलने की बात होती है। करके जीव जानवर समझते नहीं हैं, केवल चलते हैं। हर काम को पीछे जीव (वंश) में जैसे किया था, वैसे ही करके चलता है। मानव को जब ''करके समझो'' कहा गया तो उससे करके करना ही बना, समझना नहीं बना। सीखे हुए से केवल सीखा हुआ ही रहा समझ कोई उससे पैदा हुई नहीं। किए हुए से करता ही रहा समझ उससे कोई पैदा हुई नहीं।

''समझ'' क्या चीज है? यह अभी तक (मध्यस्थ दर्शन के अनुसंधान से पहले) ध्रुवीकृत नहीं हुआ।

''समझ'' क्या चीज है? इसका उत्तर मध्यस्थ दर्शन में 6 बिन्दुओं में उल्लेखित है।

नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म और सत्य।

पूरा समझ इन 6 बिन्दुओं से इंगित है। इससे अधिक समझ हो नहीं सकती, इससे कम में आदमी उपकारी तो नहीं होगा। इसको मैंने अच्छी तरह से जाँचा है, जी कर देखा है। आदमी को इन 6 मुद्दों में पारंगत होने की आवश्यकता है। इसका नाम है अध्ययन।

नियम एक वास्तविकता है। नियंत्रण एक वास्तविकता है। संतुलन एक वास्तविकता है। न्याय एक वास्तविकता है। धर्म एक वास्तविकता है। सत्य एक वास्तविकता है।

इन वास्तविकताओं के बारे में हमें पूरा अध्ययन होना, उसमें पारंगत होना और प्रमाणित होना ये तीन स्थितियाँ हैं। मानव जाति जब कभी भी इसको समझने तक पहुँचेगा, हम समुदाय चेतना में जियेंगे नहीं मानव चेतना में ही जियेंगे। समुदाय चेतना जीव चेतना को इंगित करता है। मानव चेतना सार्वभौम चेतना को इंगित करता है। इस तरह जब कभी भी ये 6 बातें हमको समझ में आ जाती हैं, हम सार्वभौम चेतना में जीने लायक हो जाते हैं। इन्हीं 6 बातों को समझाने के लिए मेरा सारा प्रयत्न है।

इन 6 बातों को समझाने के लिए पाँच सूत्र दिए -

(1) सहअस्तित्व

(2) सहअस्तित्व में विकास क्रम

(3) सहअस्तित्व में विकास

(4) सहअस्तित्व में जागृति क्रम

(5) सहअस्तित्व में जागृति

जब मैं इन पाँच सूत्रों को समझाने गया तो मेरे मित्र लोगों ने कहा यह किसी को समझ नहीं आएगा, इसका विस्तृत रूप में व्याख्या करना होगा। सूत्रित करना होगा। तब मैंने इसको दर्शन, विचार (वाद) और शास्त्र रूप में व्यक्त किया। यही समझकर करने का अधिकार है।

तो कुल मिला कर 6 बिन्दुओं को समझना है। समझ गए हैं इसका क्या प्रमाण होगा?

समझा पाना ही समझे रहने का प्रमाण है। यदि समझा नहीं पाते हैं, तो आपके समझे होने का कोई प्रमाण नहीं है।

अध्ययन की महिमा है वास्तविकता को समझना, सत्यता को समझना, यथार्थता को समझना।

कोई भी वस्तु जिसे इकाई के रूप में आदमी पहचान सकता है उसमें चार बातें निहित हैं रूप, गुण, स्वभाव और धर्म। इकाईयों के बीच में खाली स्थली को हम व्यापक रूप में

पहचानते हैं। व्यापकता उसकी महिमा है ही, उसके साथ पारगामियता और पारदर्शिता महिमा को मैंने देखा। जैसे आप और हम यहाँ बैठे हैं, यह व्यापक वस्तु का स्थली है। इसमें हम घिरे भी हैं, डूबे भी हैं। इसमें भीगे भी हैं इसका प्रमाण है, हमारे में ऊर्जा सम्पन्नता बनी हुई है। मैं बात कर रहा हूँ, यह मेरे ऊर्जा संपन्न होने का प्रमाण है। मैं जीवित दिखता हूँ यह मेरे ऊर्जा सम्पन्नता का प्रमाण है। इस तरह हम सभी ऊर्जा संपन्न हैं इस बात को हम स्वीकार सकते हैं।

यह ऊर्जा (व्यापक) ही मानव के द्वारा ज्ञान है। समझ है। समझ के साथ ही मानव ऊर्जा संपन्न है। मानव का अपने आकार में होना भर पर्याप्त नहीं है। मानव का ज्ञान से संपन्न होने पर ही उसके ऊर्जा संपन्न होने का प्रमाण है। सहअस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान में जब हम पारंगत हो जाते हैं तब हम ज्ञान संपन्न हैं। उसी का एक भाग है जीवन। जीवन ज्ञान में जब हम पारंगत हो जाते हैं तब हम ज्ञान संपन्न हैं। उसी का एक भाग है मानवीयतापूर्ण आचरण। मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान में जब हम पारंगत हो जाते हैं तब हम ज्ञान संपन्न हुए। इस प्रकार ज्ञान स्थिति से लेकर व्यवहार तक छू गया। ज्ञान के ये तीन आयाम हैं। तीनों आयामों में जब हम पारंगत हो जाते हैं, प्रमाण हो जाते हैं तब हम ज्ञान संपन्न हुए। इन तीनों चीजों में पारंगत होने तक हम अभ्यास करेंगे। अभ्यास करने का अधिकार हर व्यक्ति के पास है। हर छोटे, बड़े, बूढ़े के पास अभ्यास करने का अधिकार रखा है। कोई भी अभ्यास कर सकता है। ज्ञान संपन्न होना ही मानव की महिमा है।

अध्ययन की महिमा है ज्ञान संपन्न होने के क्रियाकलाप में प्रमाणित होना।

समग्र अस्तित्व को पहचानना है, मानव को पहचानना है और अध्ययन करना है। समग्र अस्तित्व कैसा है इसका अध्ययन पूरा होना। और मानव का अध्ययन पूरा होना।

मानव का अध्ययन करने पर मैं शरीर और जीवन को समझा।

मानव शरीर रासायनिक द्रव्यों से रचित एक रचना है। रासायनिक द्रव्यों से मानव शरीर कैसे बन गया? इसका इतिहास ऐसे बना है। सर्वप्रथम पानी एक रासायनिक वस्तु का प्रगटन हुआ। पानी में जो मूल वस्तु है एक जलने वाला, एक जलाने वाला। ये दोनों मिल कर प्यास बुझाने वाले वस्तु हो गए। जबकि मूल वस्तुओं में यह गुण नहीं था। यह तीसरा गुण आ गया। इस तरह यह समझ में आता है यौगिक विधि से नया गुण पैदा हो सकता है। इस प्रकार आगे अनुमान कर सकते हैं हर योग-संयोग से किस प्रकार अनेक नयी रचनाएँ, आचरण और गुण पैदा हो गए। इस क्रम में उत्तरोत्तर गुणात्मक विकास होते होते मानव शरीर का प्रगटन धरती पर हुआ।

दूसरा है जीवन। जीवन अपने स्वरूप में एक गठनपूर्ण परमाणु है। यह निरंतर एक सा ही बना रहता है। इस तृप्त परमाणु के सदा एक सा बने रहने के कारण हम जीवन को ''अमर'' कह सकते हैं। यही चैतन्य इकाई है। जीवन शरीर को चलाता है। जीवन के अमरत्व को पहचानना मानव तृप्ति का स्त्रोत है।

आदर्शवाद ने मानव को ''जीव'' की संज्ञा दिया। मानव जीव है, या मानव मानव ही है यह पहचानने का पहली बार मैंने प्रयत्न किया। उसमें मुझे पता चला मानव ज्ञान अवस्था की इकाई है। ज्ञान अवस्था के मूल में क्या है? इसका उत्तर है कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता। यह सब मानवों के पास है। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता सभी मानवों के पास होने के कारण मानव को मैंने ज्ञान अवस्था की इकाई के रूप में पहचाना।

इस कल्पनाशीलता के आधार पर मानव सहअस्तित्व को समझ पाता है। सहअस्तित्व में मानव को समझ पाता है। मानव को जीवन और शरीर के संयुक्त स्वरूप में समझ पाता है। जीवन को गठनपूर्ण परमाणु के स्वरूप में समझ पाता है। परमाणु में भी अनेक परमाणु अंशों से गठित होना समझ पाता है। यह जो समझ आने लगता है इसका नाम है अध्ययन।

समझदारी के लिए पहले सहअस्तित्व को समझना है। सहअस्तित्व है सत्ता में संपृक्त प्रकृति। प्रकृति दो भाग में है जड़ और चैतन्य। जड़ प्रकृति है पदार्थावस्था और प्राण अवस्था। पदार्थावस्था में खनिज होते हैं, प्राण अवस्था में वनस्पति होते हैं। ये दोनों मिल के जड़ संसार है। जीव संसार और मानव संसार मिल कर चैतन्य संसार है। यह जड़ चैतन्य प्रकृति सत्ता में संपृक्त है।

सत्ता में संपृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति सहअस्तित्व स्वरूप में नित्य वर्तमान है। सदा-सदा के लिए वर्तमान है। सदा-सदा के लिए कार्यशील है, स्थितिशील है। स्थितिशील हो और गतिशील भी है उसका नाम है ''वर्तमान''। यह एक बहुत प्रमुख बात है स्थिति में भी हो, गति में भी हो, जिसकी निरंतरता हो। उसका नाम है सहअस्तित्व। यह पूरा सहअस्तित्व। यह पूरा सहअस्तित्व नित्य वर्तमान है। अध्ययन की मूल वस्तु सहअस्तित्व ही है।

''सत्ता में संपृक्त प्रकृति'' आपने सुना। सुनने पर ऐसा लगता है समझ में आ गया! लेकिन उसके मूल में चले जाते हैं वह समझने का मुद्दा है। जैसे, लोहा लोहे के बारे में हम सोचने जाते हैं, उसमें रूप, गुण, स्वभाव और धर्म बना ही रहता है। इन चारों भागों को समझना यह अध्ययन है। बेल वृक्ष आपको आँखों से दिखता है। बेल वृक्ष को देख कर उसका आप चित्र बना दिया वह बेल वृक्ष का समझ नहीं है। बेल वृक्ष के रूप, गुण, स्वभाव और धर्म को

समझना अध्ययन है। इस ढंग से हर जड़ चैतन्य वस्तु के रूप, गुण, स्वभाव और धर्म को हम यदि समझते हैं तो हम समझदार हुए!

इतना सब कैसे समझा जाए? यह तो बड़ी भारी जटिल बात हो जायेगी? ऐसा भी एक प्रश्न बनता है। इसके लिए सिद्धांत दिया ''सिन्धु बिन्दु न्याय''। ''सिन्धु बिन्दु न्याय'' का मतलब है बहुत बड़ा एक समुद्र है, पर पूरे समुद्र का पानी कैसा है वह उसके एक बिन्दु के परीक्षण करने से हम समझ सकते हैं। पदार्थ अवस्था के एक लोहे के टुकड़े का परीक्षण करने मात्र से हम सम्पूर्ण लोहे संसार को समझ जाते हैं। मिट्टी के एक भाग को परीक्षण करने मात्र से हम मिट्टी संसार को समझ जाते हैं। पत्थर के साथ और मणि के साथ भी ऐसा ही है। उसी प्रकार वनस्पति संसार में भी एक पौधे का परीक्षण करने से उस पूरे संसार का परीक्षण हो गया। इस क्रम में हम मानव के अध्ययन तक पहुँचते हैं। इस ढंग से हम अपने अध्ययन को पूरा कर पाते हैं।

मेरे अनुसार पत्थर का अध्ययन कैसे करना है, यह सब तो करीब-करीब हो चुका है। मानव का अध्ययन कैसे किया जाए वहाँ रुका हुआ है। उसके बारे में अध्ययन की वस्तु के रूप में मानव है ही। बिना मानव को समझे, अध्ययन किए हम चल नहीं पायेंगे। चल नहीं पा रहे हैं। आगे नहीं चल पाने की स्थिति में हम आ चुके हैं।

गठनपूर्ण परमाणु को जीवन नाम दिया है। ऐसा जीवन जीव शरीर को भी चलाता है, मानव शरीर को भी चलाता है। मानव शरीर और जीव शरीर में मौलिक अन्तर यह है जीव शरीर में जीवन की कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता प्रगट होने की व्यवस्था नहीं है। मानव शरीर में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता प्रगट होने की व्यवस्था है। यह प्रकृति प्रदत्त है। नियति प्रदत्त है। नियति का मतलब है सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में विकास क्रम, सहअस्तित्व में विकास, सहअस्तित्व में जागृति क्रम और सहअस्तित्व में जागृति। मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का प्रगट होना इस विधि से आया है। इसको कोई करने वाला नहीं है। ईश्वरवादी विधि से जो बताया गया है कि ''ईश्वर के करने से होता है'' वह झूठ हो गया।

ईश्वर वादियों ने ईश्वर को ही दृष्टा, कर्ता और भोक्ता बताया है। जबकि ईश्वर न करता है, न भोगता है, न दृष्टा है।

व्यापक वस्तु में अनुभव करने पर मानव दृष्टा पद में आता है। मानव ही अनुभव करेगा और कोई करने वाला है नहीं। मानव के अतिरिक्त इस अस्तित्व में और कोई वस्तु नहीं है जो अनुभव करे। इसलिए मैंने मानव को ज्ञान अवस्था में पहचाना।

समाधि की स्थिति को मैंने देखा, संयम किया, संयम काल में अध्ययन किया अध्ययन में जड़ चैतन्य प्रकृति को व्यापक वस्तु में डूबे, भीगे, घिरे हुए देखा। अध्ययन की वस्तु सहअस्तित्व ही है। सहअस्तित्व में ही जीवन है, शरीर है। जड़ प्रकृति है, चैतन्य प्रकृति है। हर व्यक्ति इसमें पारंगत हो सकता है। उसके लिए मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद वाङ्गमय तैयार किया। सूचना के रूप में सारे वाङ्गमय को मैंने तैयार किया। सारे वाङ्गमय को मैं ''सूचना'' ही मानता हूँ। सूचना से अधिक कोई वाङ्गमय नहीं है अस्तित्व में।

यदि मेरे अनुसंधान से मानव आप हम को पहचान में आता है, तो हम एक अच्छा काम कर सकते हैं किस परम्परा का कौन सा ग्रन्थ मानव को पहचानने के लिए कितना काम किया? इस मुद्दे पर शोध कर सकते हैं। यह आदि काल से अभी तक के इतिहास का एक अच्छा अध्याय बन सकता है। इसमें आगे विद्वान स्वयं सोचेंगे। इसमें मेरा कोई प्रयत्न नहीं रहेगा। मेरा कथन इतना है सभी पावन ग्रन्थ शुभ को चाहते हुए शुरू किया, पर शुभ को व्यक्त करना नहीं बना। शुभ को व्यक्त करने के लिए व्यक्ति को संतुष्टि देने के लिए कुछ कहा भी होगा, समुदाय की आशा भी पैदा किया होगा। अभी तक इतना ही है। सारे पावन ग्रंथों का काम इतना ही है। उसमें से कुछ ग्रन्थ आक्रोश वाली बात भी करते हैं, तो कुछ अहिंसक और सहनशील होने की बात भी करते हैं। ये दोनों बातें हैं। इन दोनों तरह की बातों को लेकर आदमी चला है। उस तरह जहाँ जो पहुँचना है, पहुँचा है। ये दोनों विधियाँ आपको धरती पर दिखता ही है। पावन ग्रंथों के बारे में कहना इतना ही है।

इन सब पावन ग्रंथों से मुझ को क्या प्रेरणा मिली? ''ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म'' इन सब नामों से जो कुछ भी कहा। ''व्यापक है'' इस बात को हमको दिया। एक शब्द है यह। व्यापक वस्तु कैसा है, क्यों है? इसको मैंने अनुसंधान किया। अनुसंधान करने पर पता चला सर्वत्र विद्यमानता के आधार पर है व्यापक। सारी प्रकृति इसमें डूबे, भीगे, घिरे रहने के कारण से यह ब्रह्म है। ब्रह्म का मतलब है फैला हुआ। व्यापक सदा फैला दिखता है।

मानव प्रकृति ही ब्रह्म को पहचानता है। विगत में बताये थे ब्रह्म ही दृष्टा, कर्ता, ज्ञाता, भोक्ता है। इसमें उलटा हुआ मानव ही ज्ञाता है, कर्ता है, दृष्टा है, भोक्ता है।

एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है ''सहअस्तित्व नित्य वर्तमान व प्रभावी है।'' सहअस्तित्व को छोड़ कर हम कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पायेंगे।

शरीर द्वारा भी जीवन जीवन के साथ बातचीत करता है। यह सच्चाई है। जीवन अकेले में कोई बात नहीं कर सकता। जीवन जीवन के साथ ही बात कर सकता है। यह भी

सहअस्तित्व के नित्य प्रभावी होने के आधार पर है।

जीवन का जागृत होना शरीर के साथ मानव परम्परा में ही हो सकता है। जीवन मानव शरीर के बिना अपने आप को जागृत नहीं कर सकता। मानव शरीर के लिए प्रकृति में व्यवस्था है। यह भी सहअस्तित्व के नित्य प्रभावी होने के आधार पर है।

मानव परम्परा के जागृत होने के लिए शिक्षा में सहअस्तित्व को समझाने की व्यवस्था आवश्यक है। अभी के शिक्षा के स्वरूप में सहअस्तित्व को समझाने की कोई व्यवस्था नहीं दिया गया है। इसको अच्छी तरह से सोच के निर्णय लेने की आवश्यकता है।

सहअस्तित्व में चार अवस्थाओं को मैं समझा। पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था।

परिणाम अनुषंगी विधि से सब पदार्थों का आचरण निश्चित और व्यवस्थित है। पत्थर, लोहा, मिट्टी, मणि इनका आचरण निश्चित है। इन चार वर्गों में पदार्थ अवस्था को पूरा देखा जा सकता है। परिणाम के अनुसार आचरण करता हुआ पदार्थ अवस्था ''निर्दोष'' है।

वनस्पति संसार में अनेक प्रजातियाँ होती हैं। उनका आचरण निश्चित है। आम का आचरण निश्चित है। बेल का आचरण निश्चित है। धतूरे का आचरण निश्चित है। कोई ऐसा वनस्पति नहीं है जिसका आचरण सविपरीत हो, वाद विवाद हो, अव्यवस्था हो। ऐसा कुछ नहीं है सबका आचरण निश्चित है। बीज अनुषंगीयता विधि से आचरण करता हुआ प्राण अवस्था ''निर्दोष'' है।

उसी प्रकार जीवों में भी सभी आचरण निश्चित हैं। जीव संसार वंश के अनुसार आचरण करता हुआ ''निर्दोष'' है।

मानव में अभी आचरण निश्चित होना शेष है। सहअस्तित्व सहज समझदारी पूर्वक ही मानव का आचरण निश्चित हो सकता है।

मानवीयतापूर्ण आचरण क्या है?

मानवीयतापूर्ण आचरण मूल्य, चरित्र और नैतिकता का संयुक्त स्वरूप है। संयुक्त अभिव्यक्ति। संयुक्त प्रगटन। संयुक्त प्रस्तुति। संयुक्त प्रमाणीकरण। इतना चीज एक साथ है।

मूल्य, चरित्र, नैतिकता को कैसे समझा जाए?

मूल्य का प्रमाण संबंधों में होता है। मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के रहते संबंधों को पहचानने की क्षमता, संबंधों को पहचानने की व्यवस्था रखी है। इस व्यवस्था के आधार पर ही हम संबंधों को पहचानते हैं। इस क्रम में मानव के सम्बन्ध को पत्थर से, लोहे से, वनस्पतियों से और जीवों से पहचानते हैं। मानव के साथ संबंधों के अलग-अलग नाम हो गए। मानवों का सम्बन्ध एक ही स्वरूप में नहीं है। अनेक स्वरूप में है जैसे, माता-पिता के रूप में, भाई-बहन के रूप में, गुरु-शिष्य के रूप में, पुत्र-पुत्री के रूप में। संबंधों के नाम तो हम पा गए हैं। इन संबंधों के नाम के अनुसार प्रयोजनों को नहीं पहचाने। जैसे माता-पिता के साथ सम्बन्ध का प्रयोजन है: पुष्टि संरक्षण सहित व्यवस्था का प्रमाण। शरीर में शरीर पुष्टि और जीवन में ज्ञान पुष्टि, विवेक पुष्टि। दोनों तरह से पुष्टि मिले, उसके बाद व्यवस्था में जीना। व्यवस्था में जीना तब हुआ जब संबंधों को पहचाना और मूल्यों का निर्वाह किया।

मूल्य क्या है? साम्य मूल्य है विश्वास। संबंधों की निरंतरता हम बना कर रखते हैं तो विश्वास का हम निर्वाह किए। संबंधों को हम निरंतरता नहीं दे पाते हैं तो विश्वास का हम निर्वाह नहीं कर पाये। अब इसका आप अपने-अपने में शोध कर सकते हैं। जिसको हमने मित्र रूप में पहचाना, क्या वह सदा-सदा मित्र रूप में रहा? जो हम माता-पिता को पहचाना क्या
ट ट सदा-सदा उसकी निरंतरता रही? भाई को जो पहचाना क्या सदा हम भाई के साथ भाई के रूप में जी पाये? इसको निरीक्षण कर सकते हैं, परीक्षण कर सकते हैं, शोध कर सकते हैं। मध्यस्थ दर्शन पर आधारित शिक्षा की पहली देन यही है।

- संबंधों की पहचान
- मूल्यों का निर्वाह
- मूल्यांकन
- उभय तृप्ति

इससे किसको आपत्ति है बताइये? 700 करोड़ आदमी के सामने इस बात का आपत्ति होना बहुत मुश्किल है।

इसके बाद आता है ''चरित्र''। चरित्र के बारे में मैंने यह देखा है स्व धन, स्वनारी/स्व पुरूष और दया पूर्ण कार्य व्यवहार करने से ही मानव चरित्र है। मूल्य हैं परिवार में जीने के लिए। चरित्र है समाज में जीने के लिए। नैतिकता राज्य (व्यवस्था) में जीने के लिए है।

मूल्य परिवार में जीने से सुख देता है। चरित्र समाज में जीने से सुख देता है। नैतिकता

व्यवस्था में जीने से सुख देता है। जीने में समाधान होता है इसलिए सुख होता है। मूल्य, चरित्र, नैतिकता इन तीन चीजों को पहचानने पर हम इन तीन जगह व्यापक हो जाते हैं। विशाल हो जाते हैं। परिवार में हम समाधानित हो जाते हैं फलस्वरूप सुखी होते हैं। समाज में हम अखण्ड समाज पूर्वक समाधानित होते हैं फलस्वरूप सुखी होते हैं। सार्वभौम व्यवस्था में हम समाधानित होते हैं फलस्वरूप सुखी होते हैं।

मानवीयतापूर्ण आचरण ही क्यों? ऐसे ही क्यों जीना है? परिवार में जीना ही है। ये सब सम्बन्ध का निर्वाह करना ही है। क्योंकि इनको छोड़ कर सुखी होने का कोई प्रमाण नहीं है। परिवार के बाद, अखण्ड समाज में जीना ही है। इस क्रम में व्यवस्था में जीना ही है।

इस शिक्षा से अभी तक मानव जाति वंचित रहा। भौतिकवादी विधि से भी मानव का अध्ययन वंचित रहा। ईश्वरवादी विधि से भी मानव का अध्ययन लुप्त रहा, या सुप्त रहा।

शिक्षा की मूल वस्तु तीन हैं:-

(1) सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान का अध्ययन

(2) जीवन के स्वरूप का अध्ययन

(3) जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव और मानवीयतापूर्ण आचरण का अध्ययन

अभी के समय में हम जिसको व्यवस्था माने जा रहे हैं उसका स्वरूप कैसा है? इस बारे में आप को कुछ कहना चाहते हैं। अभी की पूरे विश्व में जितने भी राज्य और धर्म कहलाये जा रहे हैं वे ''शक्ति केंद्रित शासन'' विधि से शासन संविधान है। धर्म संविधान भी शासन के ही पक्ष में है। क्या यह समझ में आता है? यह सबको समझ में आना चाहिए।

शासन के पक्ष में संविधान लिखा गया है। संविधान में शासन की मंशा के अनुसार चलने वालों को हम सुप्रजा कहते हैं। शासन की मंशा के विरुद्ध व्यक्ति को हम अपराधी मानते हैं। संविधान में अपराधियों को दंड देने का प्रावधान है। धर्म संविधान में गलती करने वालों के लिए प्रायश्चित्त करने का प्रावधान है। इस तरह से संविधान लिखे गए हैं। इन संविधानों पर आधारित होती है शक्ति केंद्रित शासन व्यवस्था।

''शक्ति केंद्रित'' का क्या मतलब है? डंडा बजा कर अपनी बात मनवाना। उसके लिए गलती को गलती से रोकने का प्रयास, अपराध को अपराध से रोकने का प्रयास और युद्ध को

युद्ध से रोकने का प्रयास। एक व्यक्ति अपराध करता है उसको रोकने के लिए 10 लोगों को अपराध में पारंगत बनाना होता है। हर देश में ऐसी ही व्यवस्था रखा है। अब आप बताओ इस तरह आदमी अपराध प्रवृत्ति के लिए तैय्यार हुआ, या न्याय के लिए? इस तरह हम फंस चुके हैं। आदमी फंसा है। आदमी को चलाने वाला आदमी भी फंसा है। यही अमानवीय कार्यक्रम है। दूसरे शब्दों में जीव चेतना में जीते हुए विवशता पूर्वक किया हुआ कार्यक्रम। इसमें एक चलाने वाला होता है, उसको नाम दिया ''राक्षस मानव''। दूसरा चलने वाला होता है, उसको नाम दिया ''पशु मानव''। राक्षस मानव चलाता है, पशु मानव चलता है।

जीव चेतना से मानव चेतना में परिवर्तित होने पर ही हम मानवीय व्यवस्था को पाते हैं। मानवीय व्यवस्था है (1) परिवार, (2) अखण्ड समाज, (3) सार्वभौम व्यवस्था।

हम भय वश ही सर्वाधिक नमन किए हैं, पूजा किए हैं, प्रार्थना किए हैं। हमारी प्रार्थनाओं में यह झलकता है। ''हमारी और हमारे मित्रों की रक्षा करो, हमारे शत्रुओं का नाश करो।'' यह सब ही हमारी प्रार्थनाओं में दिखता है। इसको मैंने बहुत कुछ पढ़ कर देखा है। उससे मैं राजी नहीं हो पाया। चाहे उसका आप कोई भी कारण बता दीजिये भय पर आधारित पूजा, नमन, पत्री मुझको पटा नहीं! यही मूल मुद्दे के रूप में पुनर्विचार करने के लिए तत्परता, इच्छा, प्रयत्न और प्रयत्न का सफल होना और उसी क्रम में आज आपके सम्मुख मैं पहुँच गया।

अब आपके सम्मुख सहअस्तित्व के अध्ययन का प्रस्ताव है।

कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता पूर्वक हर मानव में सहअस्तित्व स्वरूप से तदाकार करने की व्यवस्था है। जो प्रस्ताव से इंगित है उसमें तदाकार होने के अधिकार का जब प्रयोग होता है, तब मानव समझ पाता है। अध्ययन में मन तदाकार होता है, तब हम समझ पाते हैं।

अध्ययन अनुक्रम का होता है। पदार्थ अवस्था से प्राण अवस्था का प्रगट होना अनुक्रम है। प्राण अवस्था का बीज रूप पदार्थ अवस्था में था, इसलिए प्राण अवस्था प्रगट हुई। उसी क्रम में जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था प्रगट हुई। एक कड़ी से दूसरी कड़ी जुड़ी होने का क्रम अनुक्रम है।

इससे निम्न सिद्धांत निकला:

अग्रिम अवस्था का बीज रूप पिछली अवस्था में रहता ही है।

यही सिद्धांत अनुक्रम का आधार है। मानव का प्रगट होने का बीज जीव अवस्था में था, इसलिए मानव का प्रगटन हुआ। अब मानव के प्रगट होने के बाद मानव में अनुभव होना

भी अनुक्रम से ही होता है।

अनुक्रम से प्रगटन, फिर अनुक्रम का अनुभव।

अनुक्रम से होने वाले परम प्रमाण को अनुभव कहा है। अनुभव परम प्रमाण है।

अनुभव प्रमाण ही व्यवहार में, अनुभव प्रमाण ही प्रयोग में प्रायोजित होता है। फलस्वरूप हम समाधान पाते हैं, समृद्धि पाते हैं और अनुभव प्रमाण के अनुरूप जी पाते हैं। इस प्रकार हर मानव अपने सौभाग्य को पहचान सकता है, स्वीकार सकता है, जी सकता है और उपकार कर सकता है।

(22 अक्टूबर 2005, मसूरी)

## मानवीयतापूर्ण आचरण

**प्रश्नः मानवीयतापूर्ण आचरण क्यों नहीं कर पाते हैं?**

**उत्तरः** सुविधा संग्रह और भक्ति विरक्ति लक्ष्य के साथ मानवीयतापूर्ण आचरण प्रमाणित नहीं हो सकता। सुविधा संग्रह को आप लक्ष्य में रखें और ज्ञान विवेक विज्ञान प्रमाणित हो जाए ऐसा हो नहीं सकता। सुविधा संग्रह के स्थान पर समाधान, समृद्धि लक्ष्य बना कर प्रयत्न करने से मानवीयतापूर्ण आचरण प्रमाणित हो जायेगा।

समाधान, समृद्धि लक्ष्य में से समाधान वरीय है। समाधान लक्ष्य के लिए ज्ञान विवेक विज्ञान को लेकर स्पष्ट होना है। ये तीनों भाग जब स्पष्टतः अध्ययन होता है तब मानवीयतापूर्ण आचरण के प्रति विश्वास होने लगता है। आचरण के प्रति विश्वास होता है तो हम आचरण करते ही हैं। आचरण करने लगते हैं तो समाधान, समृद्धि की तरफ ही जायेंगे। मानव के अध्ययन और अस्तित्व के इस प्रस्ताव के अध्ययनपूर्वक समझ आने पर आप जीने जाते हैं तो मानवीयतापूर्ण आचरण ही होगा, समाधान, समृद्धि ही प्रमाणित होगी। समझने के बाद यही होता है।

पहले मैं भक्ति विरक्ति के पक्ष में ही था। भक्ति विरक्ति विधि से ही मैंने साधना किया। साधना के फलस्वरूप जीवन समझ में आया, मानव समझ में आया, अस्तित्व सहअस्तित्व स्वरूप में समझ में आया इस सब के अनुसार मानव के अनुरूप जीने की बात सोची तो मानवीयतापूर्ण आचरण का ही स्वरूप निकला। अनुभव पूर्वक मैं समाधान संपन्न तो हो चुका था उसमें श्रम पूर्वक मैंने समृद्धि को जोड़ लिया। समाधान संपन्न होने के बाद समृद्धि

को जोड़ने के लिए मुझे बहुत दिन बरबाद नहीं करना पड़ा। इस तरह बहुत अच्छी तरह जीने की सभी परिकल्पनाएं पूरी हो गयी।

जीवों से ''अच्छी तरह जीने'' की परिकल्पनाएं बहुत रही हैं भक्तिवादी विधि से भी और भौतिकवादी विधि से भी। पर ''अच्छा आदमी'' क्या है? यह न भौतिकवादी विधि से तय हुआ, न भक्तिवादी विधि से हुआ। न भक्ति से, न विरक्ति से, न सुविधा से, न संग्रह से। खूब सुविधा का जुगाड़ कर लें तो हम अच्छे हो जायेंगे, यह नहीं प्रमाणित हुआ। हम इतना संग्रह कर लें तो अच्छे आदमी हो जायेंगे यह भी नहीं निकला। जब भक्ति विरक्ति से नहीं निकला, तो सुविधा संग्रह से क्या निकलना है? इन दोनों आधारों से जब कुछ उपलब्धि नहीं निकला तो मानव अपने मनमानी रास्ते बनाता रहा। मनमानी विधि से भक्ति विरक्ति और सुविधा संग्रह लक्ष्यों को लेकर चलता रहा। वह सार्थक नहीं हुआ। फिर ''न्यूनतम सुविधा'' और ''प्राथमिक आवश्यकता'' जैसी भाषाएँ लगाने लगे। इनका कोई निश्चित आकार-प्रकार नहीं बनता। सुविधा संग्रह का न्यूनतम और अधिकतम का कोई मतलब नहीं निकलता। जितनी सीमा बनाते हैं, उससे अधिक ही चाहिए। इस ढंग से हम भटक गए हैं।

भटके हुए को मार्ग पर लाने की विधि यही है हम प्रयत्न करके अपनी समझदारी को पूरा करें। अध्ययन करने पर, अनुभव होने पर समझदारी पूरा हो जाता है। अध्ययन से अनुभव का रास्ता बनता ही है। अनुभव मूलक विधि से जब हम सोचते हैं तो सर्वतोमुखी समाधान आ ही जाता है। उसके आधार पर समृद्धि को प्रमाणित करना बनता ही है। समृद्धि पूर्णतया उपकारी है। अपने बलबूते पर जब समृद्धि को पा लेते हैं तो उपकार के अलावा कुछ और करना बनता ही नहीं है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## सुविधा संग्रह या समाधान, समृद्धि

मध्यस्थ दर्शन का प्रस्ताव सुनना, सुनने में सहमत होना यह पहली बात है।

समझने की कोशिश करना यह दूसरी बात है।

समझ में आने के क्रम में जीने की इच्छा यह तीसरी बात है।

इस प्रस्ताव को जीने की इच्छा के क्रम में आप पाते हैं जो आपने पहले से तौर तरीका बनाया है जीने का, उसमें यह समाता नहीं है। आप जो पहले से तौर तरीका बना कर रखे हैं,

वह सुविधा संग्रह के खाके में ही किए हैं। अब आपको समाधान, समृद्धि के खाके में शिफ्ट होना है। इतना ही सार बिंदु है।

समाधान, समृद्धि चाहिए? या सुविधा संग्रह चाहिए? यह हमको निर्णय करना होगा। दोनों का प्रारुप अलग–अलग है। दोनों का कोई मेल नहीं है।

समाधान, समृद्धि पूर्वक जिए बिना न्याय करना तो सम्भव नहीं है।

आज की स्थिति में, हम अपने साथ में रहने वाले लोगों की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए, सुविधा संग्रह के लक्ष्य से क्या कर सकते हैं वह प्रारुप हम बना कर रखते हैं। उसी पर चल रहे हैं। यह स्थिति आज सब के साथ है। इस प्रारुप के साथ संतुष्टि–असंतुष्टि दोनों रहती है। स्वयं में कुछ भाग से संतुष्टि रहती है, कुछ भाग से असंतुष्टि रहती है। इस ढंग से जीव चेतना में जीता हुआ मानव 51 प्रतिशत फिर भी सही रहता है। बिना कुछ पढ़े, अध्ययन किए यह बात रहता है। स्वयं में 51 प्रतिशत से कम सहीपन को स्वीकारे बिना आदमी में जीने की कोई तमन्ना ही नहीं रहती। मनोविज्ञान का यह एक आधार बिन्दु है। जीने की आशा बने रहना जीवन की अनूस्युत क्रिया है। जब जीवन स्वयं में सहीपन को 51 प्रतिशत से कम होना स्वीकार लेता है, तब जीने की आशा के विपरीत कार्य करना बन जाता है।

सहीपन को लेकर जो खाका भरना है उसके लिए मध्यस्थ दर्शन का प्रस्ताव है। सहीपन का स्वागत जीवन में बना ही है। हम जो गलती को सही मान कर उसे भरते हैं, वह अस्थायी ही होता है। हर दिन के लिए वह भरता नहीं है। सहीपन की स्वयं में रिक्तता सहीपन से ही भरने पर वह शाश्वत हो जाता है।

(जनवरी 2007, अमरकंटक)

## अवधारणा, साक्षात्कार, बोध, अनुभव, प्रमाण

अवधारणा = अभ्यास के लिए प्राप्त स्वीकृतियाँ

अभ्यास किसलिए? अभ्युदय को अपनाने के लिए, अपना स्वत्व बनाने के लिए। अभ्युदय का मतलब है सर्वतोमुखी समाधान। जैसे किसी वृक्ष के बीज को धरती में हम डालते हैं, उसको सींचते हैं, ताकि उसका वृक्ष बन सके। उसी तरह अवधारणा अभ्युदय का बीज है।

स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य और वस्तु गत सत्य की अवधारणा होती है। अवधारणा

का साक्षात्कार होता है।

साक्षात्कार = शुभ के लिए जितनी भी सूचना (शब्द) मिलती है उससे जो वस्तु (अर्थ) इंगित होता है, उसको कल्पना में भर लेना। साक्षात्कार चित्त में होता है।

अवधारणा प्राप्त होने, साक्षात्कार होने तक ही मानव का पुरुषार्थ है। अवधारणा प्राप्त होने के बाद, साक्षात्कार होने के बाद परमार्थ ही है। स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य और स्थिति सत्य की अवधारणा का बुद्धि में बोध होता है। उसके बाद स्थिति सत्य अनुभव में आता है। सत्ता में संपृक्त जड़ चैतन्य प्रकृति सहअस्तित्व ही स्थिति सत्य है यह अनुभव में आता है। अनुभव में आने पर इसकी निरंतरता हो जाती है।

स्थिति सत्य (सहअस्तित्व) में ही वस्तु स्थिति सत्य और वस्तु गत सत्य का प्रगटन होता है। वस्तु मूलतः रासायनिक, भौतिक और जीवन स्वरूप में है। सम्पूर्ण वस्तुएं सत्ता में भीगी, डूबी, घिरी हैं। भीगे होने से ऊर्जा सम्पन्नता है, डूबे होने से क्रियाशीलता है, घिरे होने से नियंत्रण है। यही सहअस्तित्व है। यही नियति है। नियति विधि से ही हम ऊर्जा संपन्न हैं, नियति विधि से ही हम बल संपन्न हैं, नियति विधि से ही हम नियंत्रित हैं। सहअस्तित्व नित्य प्रगटनशील है यही नियति है। मानव का जीवन और शरीर दोनों नियति विधि से हैं। नियति विधि से ही हम साक्षात्कार तक पहुँचते हैं।

सहअस्तित्व (नियति) नित्य प्रगटनशील होने से अपने प्रतिरूप के स्वरूप में मानव को प्रस्तुत कर दिया उसका प्रमाण अनुभव मूलक विधि से ही होता है। इस तरह ईर्ष्या मुक्ति, द्वेष मुक्ति, अपराध मुक्ति और भ्रम मुक्ति हो जाती है। ईर्ष्या, द्वेष, अपराध और भ्रम से मुक्त हो जाना ही अनुभव संपन्न होने का प्रमाण है। ईर्ष्या, द्वेष, अपराध और भ्रम से हम सम्बद्ध हैं, मतलब अनुभव हुआ नहीं है। यही ''स्व निरीक्षण'' में देखने की बात है।

अनुभव का प्रमाण होता है। प्रमाण है परंपरा में पीढ़ी से पीढ़ी अनुभव अंतरित होना। इसका नाम है ''अनुभव मूलक विधि''। प्रमाण के बिना अनुभव मूलक विधि नहीं है।

सत्ता स्वयं ज्ञान स्वरूप है। चैतन्य प्रकृति को सत्ता ज्ञान स्वरूप में प्राप्त है। ज्ञान को मानव व्यवहार में न्याय स्वरूप में प्रस्तुत करता है, उत्पादन में नियम नियंत्रण, संतुलन, रूप में प्रस्तुत करता है।

(दिसम्बर 2009 अमरकंटक)

# मध्यस्थ क्रिया

प्रकृति की किसी भी वस्तु के ''बनने'' की कुछ प्रक्रिया होती है उसको कहा ''सम'' या ''उद्भव''। उसके ''बिगड़ने'' की भी कुछ प्रक्रिया होती है उसको कहा ''विषम'' या ''प्रलय''। वस्तु के ''बने रहने'' की सम विषम से मुक्त जो प्रक्रिया होती है उसको कहा ''मध्यस्थ'' या ''विभव''।

प्रकृति की हर अवस्था के ''बने रहने'' या ''मध्यस्थता'' का एक स्वरूप होता है जिससे उस अवस्था की परंपरा बनी रहती है। जैसे पदार्थ अवस्था परिणाम अनुषंगी विधि से परंपरा है। पदार्थ के ''बनने'' या गठन होने की प्रक्रिया होती है, ''बिगड़ने'' या विघटन होने की भी प्रक्रिया होती है। पदार्थ के ''बने रहने'' या ''मध्यस्थता'' का स्वरूप होता है परिणाम अनुषंगीयता। परिणाम मूलतः है परमाणु अंशों के गठन की मात्रा। इसी क्रम में प्राण अवस्था बीजानुषंगी विधि से परंपरा है। जीव अवस्था वंश अनुषंगी विधि से परंपरा है।

मानव जाति में जब इस सिद्धांत को ले गए तो पता चलता है ''क्रिया पूर्णता'' और ''आचरण पूर्णता'' ही मानव परंपरा के ''बने रहने'' का स्वरूप है। जीव चेतना विधि से मानव परंपरा के ''बने रहने'' का वैभव स्थिर नहीं होता है। मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना विधि से ही मानव परंपरा के ''बने रहना'' का वैभव स्थिर हो पाता है। ज्ञानार्जन से पहले ''उद्भव'' या ''प्रलय'' के पक्ष में मानव काम करता रहता है। ज्ञानार्जन के बाद ''बने रहने'' के स्वरूप में मानव परंपरा वर्तमान होता है। पीढ़ी से पीढ़ी तक चलने वाली विधि को हम ''मध्यस्थ'' कह रहे हैं। मध्यस्थता का यह स्वरूप सम और विषम आवेशों को सामान्य बनाने में प्रवृत्त रहता है।

मध्यस्थता स्थिति में मध्यस्थ बल है और गति में मध्यस्थ शक्ति है। सम और विषम आवेश भी स्थिति में बल और गति में शक्ति के स्वरूप में होता है। वैसे ही मध्यस्थता (आवेश मुक्ति) भी स्थिति में बल और गति मे शक्ति है। पदार्थ अवस्था से ज्ञान अवस्था तक ऐसे ही है।

मानव के सन्दर्भ में मानव जागृत होने पर आवेश मुक्त या मध्यस्थ होता है और सभी आवेशों को सामान्य बनाने में प्रवृत्त रहता है। जागृत होने से पहले मानव स्वयं आवेशित रहता है, तो आवेशों को सामान्य बनाने का काम कैसे करेगा?

प्रश्नः सत्ता को आपने ''मध्यस्थ'' कहा है। उससे क्या आशय है?

प्रकृति चार अवस्थाओं के रूप में सत्ता में है। सत्ता प्रकृति की क्रियाओं से निष्प्रभावित रहता है। सत्ता पर प्रकृति की क्रियाएं प्रभाव नहीं डालती हैं। प्रकृति की हर क्रिया के मूल में सत्ता सम्पन्नता रहता ही है। साम्य सत्ता में सम्पूर्ण क्रियाएं डूबे, भीगे, घिरे होने पर भी सत्ता में कोई अंतर नहीं आता है। इसलिये सत्ता को ''मध्यस्थ'' कहा है।

मध्यस्थ सत्ता में संपृक्तता के फलन में ही प्रकृति में मध्यस्थता है। प्रकृति में मध्यस्थता परंपरा के स्वरूप में प्रगट है। सत्ता ही मानव परंपरा में ''ज्ञान'' रूप में व्यक्त होता है।

(दिसम्बर 2008 अमरकंटक)

## बुद्धि और आत्मा

**प्रश्न: भ्रमित अवस्था में बुद्धि और आत्मा का कार्य, रूप क्या है?**

**उत्तर:** बुद्धि और आत्मा जीवन में अविभाज्य है। भ्रमित अवस्था में भ्रमित चित्रणों को बुद्धि अस्वीकारता है और वह चित्रण तक ही रह जाता है, बोध तक नहीं जाता। इस से भ्रमित मानव को ''गलती'' हो गयी यह पता चलता है। बुद्धि और आत्मा ऐसे भ्रमित चित्रणों के प्रति तटस्थ बना रहता है इसके प्रभाव स्वरूप में कल्पनाशीलता में ''अच्छाई की चाहत'' बन जाती है। यही भ्रमित मानव में शुभकामना का आधार है। भ्रमित अवस्था में बुद्धि और आत्मा में ''सही'' के लिए वस्तु नहीं रहती, पर गलती के लिए अस्वीकृति रहती है।

(दिसम्बर 2008, अमरकंटक)

## सहअस्तित्व में बोध

भ्रम के सम्मुख जब जागृति प्रस्तुत होता है तो भ्रम की अनावश्यकता स्वीकार हो जाती है। यह जीवन में जागृति की ओर प्रेरित करने वाली गति है।

जीवन स्वयं को भी जानने वाला है और सर्वस्व को भी जानने वाला है। सर्वस्व को जानने पर ''दृष्टा पद'' और उसको जीने में प्रमाणित करने को ''जागृति'' कहा है। सहअस्तित्व ही बोध का सम्पूर्ण वस्तु है। सहअस्तित्व में ही जीवन है। सहअस्तित्व में ही जीवन ज्ञान होता है। सहअस्तित्व में ही मानव है। सहअस्तित्व में ही मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान होता है। सहअस्तित्व ''में'' ही अध्ययन है। सहअस्तित्व से विभाजित करके कोई अध्ययन पूरा होता नहीं है।

प्रमाणित व्यक्ति के ''अनुभव की रौशनी'' में ही अध्ययन होता है। प्रमाण के आधार

पर दूसरों में अनुभव की आवश्यकता का पता चलना यह सर्वशुभ सम्मत प्रयोजन है। अनुभव किया हुआ व्यक्ति ही अनुभवगामी पद्धति से अध्ययन करा सकता है। मेरे अनुभव के साक्षी में आप अध्ययन करते हो। अनुभव के बाद आप स्वयं साक्षी (दृष्टा) हो जाते हो। अनुभव के साक्षी में ही अध्ययन पूर्ण होता है।

अध्ययन विधि से सहअस्तित्व स्वरूपी सत्य बोध होता है, फलत: अनुभव होता है। जानने मानने की संतुलन स्थिति का नाम है बोध। अध्ययन विधि से बोध होता है वह अनुभव मूलक विधि से प्रमाण स्वरूप में आता है। प्रमाण से तृप्ति मिलती है। अनुभव प्रमाण ''बीज स्वरूप'' में हो जाता है, जिसको फिर ''बोया'' जा सकता है। अनुभव एक से अनेक में अंतरित हो सकता है। यह सर्वशुभ है। सर्वशुभ में स्व शुभ समाया रहता है। प्रमाणित होने की ताकत स्वयं में बने रहने से स्वयं की तृप्ति बनी रहती है। यह तृप्ति जब चित्त के स्तर पर आती है तब ''समाधान'' कहलाती है। अनुभव मूलक विधि से जीने पर ही समाधान होता है। जीव चेतना विधि से जीने पर जीने में समाधान बनता नहीं है।

तदाकार विधि से चित्त बुद्धि में अनुभूत होता है तद्रूप अवस्था में। जब चित्त बुद्धि के आकार में हो जाता है तो बुद्धि में बोध चित्त में चिंतन स्वरूप में आता है। उसी के अनुरूप प्रमाणित होने के लिए चित्रण होना शुरू करता है। रूप और गुण का ही चित्रण होता है, स्वभाव और धर्म समझा रहता है। इस प्रकार चिंतन चित्रण के अनुरूप वृत्ति में तुलन विश्लेषण और मन में चयन आस्वादन होता है। मन वृत्ति में अनुभूत होता है मतलब अनुभव मूलक वृत्ति के स्वरूप में मन हो जाता है। इस प्रकार वृत्ति चित्त में, चित्त बुद्धि में और बुद्धि आत्मा में अनुभूत होता है। आत्मा सहअस्तित्व में अनुभूत होता है। पूरा जीवन अनुभव के आकार में हो जाता है। आत्मा में सहअस्तित्व का जानना मानना ''सुनिश्चित'' बना रहता है, जो मन द्वारा जीने में क्रियान्वित होता रहता है। इसको ''जागृति'' नाम दिया।

मूल्यांकन क्रम में आत्मा बुद्धि का, बुद्धि चित्त का, चित्त वृत्ति का और वृत्ति मन का मूल्यांकन करता है। मन शरीर और व्यवहार का मूल्यांकन करता है। अनुभव संपन्न होने के बाद ''आत्मा जानता मानता है'' इसकी गवाही पहले बुद्धि में ही होती है। अनुभव का प्रभाव पहले बुद्धि पर ही आता है। बुद्धि इस अनुभव प्रमाण बोध को प्रमाणित किया या नहीं यह आत्मा में ही मूल्यांकित होता है। अनुभव संपन्न आत्मा यह मूल्याकित करती है कि अनुभव प्रमाण बोध को बुद्धि सदुपयोग किया या नहीं? बुद्धि का दृष्टा आत्मा है। इस तरह अनुभव मूलक विधि से चित्त का दृष्टा बुद्धि, वृत्ति का दृष्टा चित्त, मन का दृष्टा वृत्ति, शरीर और व्यवहार का दृष्टा मन होता है।

परमाणु ही विकसित हो कर, गठनपूर्ण हो कर जीवन पद प्रतिष्ठा में आता है। वही जीवन जागृत हो कर प्रमाणित होता है। यही ''समाधानात्मक भौतिकवाद'' का मूल आधार है।

(दिसम्बर 2008, अमरकंटक)

## आचरण ही नियम है

दो अंश का परमाणु भी एक आचरण को प्रस्तुत करता है। दो अंश के जितने भी परमाणु हैं, वे हर देश में एक ही आचरण को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार तुलसी अपने गुणों को सर्व देश में एक ही प्रकार से प्रस्तुत करता है। उसी प्रकार गाय अपने स्वभाव को सभी देशों में एक ही प्रकार से प्रस्तुत करता है। जितने भी मृद, पाषाण, मणि, धातु हैं वे सभी देशों/स्थानों में समान आचरण को प्रस्तुत करते हैं। इस क्रम में मानव का आचरण पहचानने का कोशिश करें तो पता चलता है, मानव का आचरण अभी तक ध्रुवीकृत ही नहीं हुआ। आदर्शवादी विधि और भौतिकवादी विधि से मानव इतिहास में सोचा गया है इन दोनों विधियों से मानव के निश्चित आचरण का स्वरूप ध्रुवीकृत नहीं हुआ। मानव चेतना से ही ''मानवीयतापूर्ण आचरण'' आएगा। जीव चेतना में जीते हुए भी मानव मानव चेतना को चाहता है। मानव न्याय चाहता है, समाधान चाहता है, शान्ति चाहता है।

कल्पनाशीलता के साथ मानव ने कर्मस्वतंत्रता का प्रयोग किया। इस तरह मानव ने मनाकार को साकार करने का काम किया किन्तु मनः स्वस्थता का भाग वीरान पड़ा रहा। कल्पनाशीलता का तृप्ति बिंदु ''समाधान'' है। समझदारी से समाधान होता है। सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान इन तीनों के मिलने से समझदारी है। इन तीन में से एक भी चीज को हटाया तो समझदारी नहीं है।

एक व्यक्ति जो समाधान पाया उसे हर व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। इसका आधार है कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता। कल्पनाशीलता में तदाकार तद्रूप होने का गुण है। जो मैं बोलता हूँ, उसके अर्थ को समझने का अधिकार आपके पास कल्पनाशीलता के रूप में है। अर्थ में तदाकार तद्रूप हो गया मतलब समाधान हुआ। अनुभव हो गया, तो प्रमाण हो गया।

समझे हुए, प्रमाणित व्यक्ति के समझाने से समझ में आता है। जैसे आप और मैं यहाँ बैठे हैं। मैं जो समझाता हूँ, वह आप के समझ में आता है क्योंकि मैं समझा हुआ हूँ, प्रमाणित हूँ और आप समझना चाहते हैं। कल्पनाशीलता आपके पास भी है, मेरे पास भी है।

संयम काल में मैंने अपनी कल्पनाशीलता के प्रयोग से ही अध्ययन किया था। मैंने

सीधे प्रकृति से अध्ययन किया था, आप मुझ से अध्ययन कर रहे हो।

समाधि में मेरी आशा विचार इच्छा चुप थी। या मेरी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता चुप थी । संयम काल में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता क्रियाशील हुई, तभी तो मैं अध्ययन कर पाया। संयम काल में मैं सच्चाई के प्रति तदाकार तद्रूप हुआ। ऐसे तदाकार तद्रूप होना ''ध्यान'' देना हुआ कि नहीं? संयम काल में मैंने आँखे खोल कर ध्यान किया। ऐसे तदाकार तद्रूप होने का अधिकार आपके पास भी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के रूप में रखा हुआ है। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता हर व्यक्ति में नियति प्रदत्त विधि से है, या सहअस्तित्व विधि से है। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता सब में समान रूप से है चाहे आप अपने को ''ज्ञानी'' कहें, ''विज्ञानी'' कहें, या ''अज्ञानी'' कहें। इसलिये मैं कहता हूँ इस प्रस्ताव को अपना स्वत्व बनाने के लिए सबको समान रूप से परिश्रम करना होगा।

मानव ने जीव चेतना में जीते हुए जीवों से अच्छा जीने के अर्थ में अपनी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का प्रयोग किया। इसमें मानव सफल भी हुआ। इस तरह मानव आहार, आवास, अलंकार, दूरगमन, दूरश्रवण और दूरदर्शन समंधी सभी वस्तुओं को प्राप्त करने में सफल भी हो गया। इन सब को करने में कल्पनाशीलता का तृप्ति बिंदु न होने से मानव ''भोग कार्य'' में लग गया। चाहे पढ़े-लिखे हों, या अनपढ़ हों सब भोगवाद में लगे हुए हैं।

समाधान पूर्वक जिस दिन से जीना शुरू करते हैं, उस दिन से ''मानव चेतना'' की शुरुआत है। इसको ''गुणात्मक परिवर्तन'' या ''चेतना विकास'' नाम दिया।

कल्पनाशीलता हर व्यक्ति के पास है। अनुभव करने का आधार वही है। कल्पनाशीलता जीवन में है, शरीर में नहीं है। इसलिए ''जीवन जागृति'' की बात की है। जीवन जागृति का बिंदु ''अनुभव'' है। इतने दिन मानव जाति कुछ भी करता रहा, पर यह नहीं किया। मानव के पास पाँच विभूतियाँ हैं रूप, बल, पद, धन और बुद्धि। मानव ने इनमें से चार रूप, बल, पद और धन का प्रयोग अपनी कर्मस्वतंत्रता के रहते करके देख किया। ''बुद्धि'' का प्रयोग अभी तक नहीं किया। बुद्धि का प्रयोग कल्पनाशीलता की तदाकार तद्रूप विधि को छोड़ कर होगा नहीं। समझदारी के साथ हमको तदाकार तद्रूप होना है। अभी तक जीव चेतना में अवैध को वैध मानते हुए सुविधा संग्रह लक्ष्य के साथ तदाकार तद्रूप रहे। अब एक ही उपाय है मानव चेतना को पाया जाए और उसमें तदाकार तद्रूपता को पाया जाए।

**प्रश्नः आपने जब अध्ययन किया तो आपके पास कोई पूर्व स्मृतियाँ नहीं थी, सब कुछ क्लीन स्लेट था। जबकि हम जो अध्ययन कर रहे हैं तो हमारे साथ तो बहुत पूर्व**

**स्मृतियाँ हैं जो इस प्रस्ताव के पक्ष में नहीं हैं, फिर हम आपके जैसे अध्ययन कर सकते हैं, अनुभव तक पहुँच सकते हैं इस बात पर कैसे विश्वास करें?**

**उत्तरः** आपके पास जो ''जिज्ञासा'' है वह समाधि की क्लीन स्लेट से कहीं बड़ी चीज है। जिज्ञासा, समझने की गति और जीने की निष्ठा इन तीनों को जोड़ने से उपलब्धि तक पहुँच सकते हैं। जीने की निष्ठा इन तीनों को जोड़ने से उपलब्धि तक पहुँच सकते हैं। जीने की निष्ठा इच्छा शक्ति की बात है। जीने की निष्ठा में कमी के मूल में आपके पूर्वाग्रह ही हैं।

(दिसम्बर 2009, अमरकंटक)

## यांत्रिकता या अनुभव

आचरण ही नियम है। नियम प्राकृतिक हैं। मानवेत्तर प्रकृति स्वाभाविक रूप में निश्चित आचरण करती है। मानव के आचरण की निश्चयता के स्वरूप को सर्व देश में समान रूप से पहचान पाना अभी तक संभव नहीं हुआ। मानव अपने आचरण को समझदारी पूर्वक ही ''सुनिश्चित'' कर सकता है। समझदारी के बिना मानव का आचरण ''अनिश्चित'' ही रहता है।

मानवीयतापूर्ण आचरण ''यांत्रिकता'' है या ''अनुभव'' है?

यांत्रिकता से आशय है जो तर्क तक ही सीमित हो। अनुभव तर्क की सीमा में नहीं है। तर्क अनुभव तक पहुँचने के लिए सहायक है।

यथार्थता, वास्तविकता और सत्यता जब अनुभव में आता है तब मानवीयतापूर्ण आचरण होता है। इसके पहले नहीं होता। उससे पहले जो ''अच्छा लगता है'' उसमें लगे रहते हैं, ''अच्छा होना'' छूटा रहता है।

''अच्छा होना'' अनुभव में आता है। ''अच्छा लगना'' यांत्रिकता में आता है।

यांत्रिकता पाँच ज्ञानेन्द्रियों के क्रियाकलाप और जीवन में साढ़े चार क्रिया या चित्रण तक ही पहुँचता है।

अनुभव में ''अच्छा होना'' ही होता है, दूसरा कुछ होता ही नहीं है।

ज्ञानावस्था का मानव ही ज्ञान में अनुभव कर सकता है।

ज्ञान तर्क संगत होता है, पर ज्ञान तर्क नहीं है। ज्ञान तर्क को संतुष्टि देता है, पर ज्ञान

तर्क नहीं है।

तर्क यांत्रिकता तक पहुँचता है, ज्ञान अनुभव तक पहुँचता है।

मानवीयतापूर्ण आचरण जीवन में दसों क्रियाओं के साथ होता है। मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान मूलक होता है। ज्ञान अनुभव मूलक होता है। अनुभव मूलक विधि से प्रमाण होता है।

प्रमाण का ही परंपरा बनता है। उसी से ही मतभेद मुक्ति होता है, अपराध मुक्ति होता है, भ्रम मुक्ति होता है, अपने-पराये से मुक्ति होता है।

अनुभव ज्ञान सम्मत है। यांत्रिकता तर्क सम्मत है।

मानव के सारे तर्क की पहुँच ''अच्छा लगने'' और ''बुरा लगने'' तक ही है। ज्ञान (अनुभव) की पहुँच ''अच्छा होने'' से लेकर ''अच्छा रहने'' तक है।

अनुभव है अनुक्रम से स्वीकृति बनना। अनुक्रम है सहअस्तित्व में विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति। विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम और जागृति ये सहअस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व में हैं। इनको मानव स्वीकारता है, अनुभव करता है। स्वीकृति होने का प्रमाण आचरण में होता है, या आचरण ध्रुवीकृत होता है जिसको कहा ''मानवीयतापूर्ण आचरण''। जिसको प्रमाणित करने का स्वरूप है ''समाधान, समृद्धि''। मैं स्वयं समाधान, समृद्धि पूर्वक जीता हूँ।

मानवीयतापूर्ण आचरण जब परंपरा में आता है तो ''निरंतरता'' को प्राप्त करता है। मानवीयतापूर्ण आचरण की निरंतरता का स्वरूप है ''अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था''।

इस ढंग का तर्क, इस ढंग का बातचीत, इस ढंग का संवाद क्या भौतिकवादी विधि से हो पाता है? क्या ऐसा आदर्शवादी विधि से हो पाता है?

इस प्रस्तुति के आगे बेसिर पैर का तर्क चलेगा नहीं। सारे विश्व के सात सौ करोड़ आदमी मिल करके ताकत लगा लें फिर भी इस प्रस्ताव के ''ठोसपन'' को हिला नहीं पायेंगे। यह उपलब्धि इतनी ''ठोस'' होने के आधार पर ही मैंने विश्वास किया कि यह मानव जाति का सम्पदा है। हर मोड़-मुद्दे पर यह समाधान प्रस्तुत कर सकता है, यह विश्वास होने पर मैंने संसार के साथ जूझना शुरू किया। उसी क्रम में आज आप के सामने पहुँचे हैं।

(दिसम्बर 2009, अमरकंटक)

**प्रश्नः साक्षात्कार होने के बाद बोध होने पर ''और क्या'' समझ में आता है जो साक्षात्कार में नहीं आया था, उसके बाद अनुभव होने पर ''और क्या'' समझ में आता है जो बोध में नहीं आया था?**

**उत्तरः** साक्षात्कार में जो समझ आता है वही बोध और अनुभव में ''पक्का'' हो जाता है। उसके अलावा कुछ नहीं। साक्षात्कार में ''रूप, गुण, स्वभाव, धर्म'' चारों पहुँचता है। रूप में भौतिक, रूप और चैतन्य, रूप (जीवन) दोनों शामिल हैं। ''रूप, गुण, स्वभाव, धर्म'' समग्र अस्तित्व में जो नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म और सत्य है उसको इंगित करने के लिए है। उसका साक्षात्कार होता है। बुद्धि में धर्म और सत्य पहुँचता है। बाकी सब साक्षात्कार तक रह जाता है। और फिर अनुभव में सहअस्तित्व स्वरूपी सत्य ही पहुँचता है।

चारों अवस्थाओं का रूप, गुण, स्वभाव, धर्म जो साक्षात्कार हुआ, उसको अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित करने की आवश्यकता है। संसार को इसकी ''सूचना'' देने की आवश्यकता है। संसार को इसे ''समझाने'' की आवश्यकता है। सूचना किताब से होता है मानव के समझाने से समझ आता है।

हमारे कहने, करने और जीने में कितना अंतर है उस पर ध्यान जाने से ही समझने के लिए जिज्ञासा स्वयं में उदय होती है। स्व निरीक्षण से ही जिज्ञासा उदय होती है। जिज्ञासा के आधार पर ही अध्ययन होता है। जिज्ञासा की तीव्रता के साथ अध्ययन करने पर साक्षात्कार होता है।

''रहस्य'' से हम कुछ पा नहीं सकते।

संग्रह सुविधा से हम तृप्त हो नहीं सकते।

लोहार का चोट इतना ही है। इसके आगे कहा

प्रतीक प्राप्ति नहीं है, उपमा उपलब्धि नहीं है।

इस पर आप सभी सोच सकते हैं, अपना मंतव्य व्यक्त कर सकते हैं।

प्रत्येक एक अपने रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के साथ ''सम्पूर्ण'' है। इस ''सम्पूर्णता'' की गवाही है इकाई का स्वयं में व्यवस्था होना, समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना। इसके साथ यह भी है मानव का अभी स्वयं में व्यवस्था होना और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करना प्रतीक्षित है। अभी तक मानव केवल ''व्यक्तिवादी'' और ''समुदायवादी'' विधि से ही जिया

है। व्यक्तिवादी विधि से या समुदायवादी विधि से ''अखण्ड समाज'' नहीं बन सकता।

''गुण'' को मध्यस्थ दर्शन में सम, विषम और मध्यस्थ स्वरूप में होना समझाया गया है। प्रकृति की इकाईयाँ साम्य ऊर्जा (सत्ता) में संपृक्त हैं और कार्य ऊर्जा को प्रकाशित करती हैं। साम्य ऊर्जा घटता-बढ़ता नहीं है, कार्य ऊर्जा घटता-बढ़ता है। सम विषम गुण ''कार्य ऊर्जा'' से सम्बंधित हैं। मानव अपनी कार्य ऊर्जा को जब ''उत्पादन कार्य'' (मनाकार को साकार करना) में लगाता है और ''समझाने'' में लगाता है उसे ''सम'' गुण कहा। मानव अपनी कार्य ऊर्जा को विनाश करने में या भ्रमित करने में लगाता है उसे ''विषम'' गुण कहा। भ्रमित करने और विनाश करने में स्व शक्तियों का प्रयोग ही ''अपराध'' है।

**प्रश्नः ''मूल्यों का साक्षात्कार'' से क्या आशय है?**

**उत्तरः** मूल्य जीवन का स्वाभाविक रूप से ''प्रगटन'' है। अभी भी जब एक माँ संतान को अपने शरीर का प्रतिरूप ''मान'' लेती है, तो उसमें ममता का अपने-आप से प्रगटन होता है। अपनी संतान के प्रति ऐसी ममता का प्रगटन जीवों में भी होता है। मानव में ममता जब ''व्यवस्था'' के अर्थ में समझ आती है, तो ही सार्थक हो पाती है। यदि संतान को शरीर के प्रतिरूप ही मानते हैं तो ममता थोड़े समय तक रहती है, फिर समाप्त हो जाती है।

मूल्यों का कोई साक्षात्कार नहीं होता, मूल्यों का ''प्रगटन'' होता है। अनुभव मूलक विधि से जीवन में निहित मूल्य प्रगट होते हैं, प्रमाणित होते हैं। जीवन में जब धर्म अनुभव में आता है, उसके बाद मूल्यों की प्रगटनशीलता शुरू हो जाती है। मानव धर्म सुख है।

एक तरफ ''स्वयं में अनुभव'' है, दूसरी तरफ ''समग्र व्यवस्था'' है। इन दोनों के बीच में ''मूल्यों का प्रगटन'' है।

इसलिये मैं बारम्बार कहता हूँ ''चेतना विकास'' के साथ ही ''मूल्य शिक्षा'' है।

**प्रश्नः तो क्या ''मूल्यों का प्रगटन'' अनुभव के बाद है?**

**उत्तरः** अनुभव के बाद ही मूल्यों का प्रगटन है। अनुभव से पहले मूल्यों का प्रगटन कहाँ होने वाला है?

ईर्ष्या द्वेष से पचा हुआ मानव क्या ''मूल्यों का प्रगटन'' करेगा? अपने-पराये की दीवारें बनाते हुए क्या ''मूल्यों का प्रगटन'' होता है? अपराध को वैध मानते हुए क्या ''मूल्यों का प्रगटन'' होता है?

भ्रम का विकल्प जागृति है।

जागृति के बाद भ्रम रहता नहीं है।

भ्रम नहीं रहता तो जीवन से मूल्यों का प्रगटन अपने आप से होता है।

(अनुभव शिविर 2010, अमरकंटक)

## प्रामाणिकता ही प्रमाण है

**प्रश्नः अध्ययन बोध ( अनुभवगामी बोध ) और अनुभव प्रमाण बोध ( अनुभव मूलक बोध ) में क्या अंतर है?**

**उत्तरः** अध्ययनपूर्वक शब्द से अर्थ और अर्थ से वस्तु तक पहुँचना बनता है। अनुभव में जो अध्ययनपूर्वक सच्चाइयों का बोध हुआ था उसकी स्वीकृति हो जाती है। अनुभव में इस प्रकार स्वीकृति होने पर प्रामाणिकता आ गयी। जिसके फलस्वरूप बुद्धि में प्रमाण बोध होता है। जिसको प्रमाणित करने के लिए बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन सब काम करने लगते हैं।

बुद्धि का वर्चस्व (मौलिकता) बोध ही है। चित्त का वर्चस्व चिंतन ही है। वृत्ति का वर्चस्व न्याय, धर्म, सत्य के आधार पर तुलन ही है। मन का वर्चस्व मूल्यों का आस्वादन करना ही है। इस ढंग से पूरा जीवन ''अनुभव मय'' हो जाता है।

अध्ययन विधि से अनुभव में स्वीकृति तक पहुँचते हैं, अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित होने तक पहुँचते हैं। जो अध्ययन कराया उसको प्रमाणित करना।

प्रमाणित होने की शुरुआत अनुभव मूलक चिंतन से है। उससे पहले दृष्टापद है। अनुभव पूर्वक मानव दृष्टा पद में हो जाता है। प्रमाणित होना जीने में परंपरा के रूप में ही होता है।

अनुभव तभी होता है जब बोध हुआ हो। ''सही'' के अलावा कुछ बोध होता भी नहीं है। ''सही'' के अलावा दूसरा कुछ भी मानव के आगे आता है, उसमें तर्क फंसा ही लेता है। जब तक ''सहीपन'' का प्रस्ताव मानव के आगे नहीं आता तब तक तर्क उसे अपने चंगुल में फंसाए ही रखता है। ''सहीपन'' तर्क के चंगुल में आता नहीं है। तभी सहीपन का बोध होता है। सहअस्तित्व स्वरूप में अस्तित्व बोध बुद्धि में होता है। सहअस्तित्व परम सत्य है इसलिये अनुभव होता है। सहअस्तित्व बोध होने के बाद ही सहअस्तित्व में अनुभव होता है। मैं जो साधना समाधि संयम पूर्वक जो चला उसमें भी सहअस्तित्व बोध होने के बाद ही मुझे अनुभव

हुआ।

अध्ययन पूरा होने पर ही अनुभव होता है। अध्ययन की वस्तु सम्पूर्ण सहअस्तित्व ही है। अध्ययन यदि पूरा होता है तो प्रमाणित करने के संकल्प के साथ तुरंत अनुभव होता है। अनुभव पूर्वक ही प्रमाणित करने का प्यास तत्काल बुझता है। अध्ययन पूरा होने की स्थिति में प्रमाणित होने की तत्परता बनता है।

यदि आत्मा में अनुभव होता है, तो हम स्वयम् को प्रमाणित करने के योग्य हो गए।

अनुभव मूलक विधि से ही प्रमाण होता है। दूसरा कोई प्रमाण होता नहीं है।

अनुभव मूलक विधि से प्रमाण ही होता है। दूसरा कुछ होता नहीं है। अनुभव ही अंतिम प्रमाण है। अनुभव के बिना प्रमाणित होने का हैसियत तो आएगा नहीं!

अनुभव के प्रकाशन का स्वरूप है न्याय, धर्म, सत्य। आखिरी बात यही आती है ''जीने देना है और जीना है। होने देना है, होते ही रहना है।''

इसमें क्या तर्क करोगे बताओ? हर जीवन न्याय, धर्म, सत्य को चाहता ही है। जन्म से ही बच्चे न्याय के याचक होते हैं, सही कार्य व्यवहार करना चाहते हैं और सत्य वक्ता होते हैं। हर बच्चा न्याय का याचक है उसमें न्याय प्रदायी क्षमता को स्थापित करने की आवश्यकता है। हर बच्चा सही कार्य व्यवहार करना चाहता है उसमें कर्म और व्यवहार के अभ्यास कराने की आवश्यकता है। हर बच्चा सत्य वक्ता है ( जैसा देखा-सुना रहता है, वैसा ही बोलता है) उसमें सत्य बोध कराने की आवश्यकता है।

प्रमाणित होने की ''प्रवृत्ति'' मानव में है ही! प्रमाणित होने की ''आवश्यकता'' मानव में है ही! लेकिन प्रमाणित होने के लिए ''वास्तविकताओं की समझ'' मानव में अभी तक नहीं थी, वह स्पष्ट करने के लिए ही मध्यस्थ दर्शन का अध्ययन है।

जब तक अनुभव नहीं है, तब तक तर्क का झंझट बना ही रहता है। ऐसा तर्क ''निश्चयन विधि'' से जीने के लिए बाधक है। निश्चयन विधि से जीने के लिए अनुभव ही है। सहअस्तित्व स्थिर है, विकास और जागृति निश्चित है। इन तीन बातों को ही जीने में प्रमाणित किया जाता है। इन तीन बातों को समझाने के लिए ही पूरा दर्शन,वाद, शास्त्र लिखा है। पूरा वाङ्गमय संक्षिप्त होने पर पाँच सूत्रों में सूत्रित होता है सहअस्तित्व, सहअस्तित्व में विकास क्रम, सहअस्तित्व में विकास, सहअस्तित्व में जागृति क्रम और सहअस्तित्व में जागृति।

अनुभव मूलक विधि से जीने की प्रक्रिया है अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन। इन तीन तरीकों से मानव अपने अनुभव को जीने में प्रस्तुत करता है। प्रकाशन अनुभव की ज्यादा व्याख्या है। सम्प्रेषणा में सीमित व्याख्या है। अभिव्यक्ति में संक्षिप्त व्याख्या है। सामने व्यक्ति के अधिकार के अनुसार व्याख्या होती है। अध्ययन का लक्ष्य है विस्तार से संक्षिप्त की ओर बढ़ना। स्वयं प्रमाण स्वरूप हो जाना। इससे ज्यादा कुछ होता नहीं है। इससे ज्यादा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कल्पना के आधार पर ही मानव ज्ञान संपन्न होता है। नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य ये 6 आयामों में ही मानव के प्रमाणित होने की सीमा है। इससे ज्यादा नहीं है।

आप इस बात को पूरा समझ कर मेरे बराबर अच्छा जियोगे, या मुझसे ज्यादा अच्छा जियोगे! आपकी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता इस समझ से जुड़ेगा तो आप हमसे अच्छे हो ही गए! इससे पहले न भौतिकवाद ऐसे सोच पाया, न आदर्शवाद ऐसे सोच पाया। भौतिकवाद का मृत्यु आरक्षण और विशेषज्ञता में हुआ। आदर्शवाद रहस्य में जा कर फंस गया। इन दोनों के विकल्प में मध्यस्थ दर्शन प्रस्तुत हुआ है।

(दिसम्बर 2008, अमरकंटक)

## स्थिति गति

स्थिति = होना; गति = रहना।

मिट्टी से लेकर मानव तक किसी भी वस्तु को आप देख लीजिये उसका ''होना'' उसके रूप, गुण के आधार पर देखा जाता है, उसका ''रहना'' स्वभाव, धर्म के आधार पर स्पष्ट होना पाया जाता है। सभी जड़ चैतन्य प्रकृति का होना-रहना पाया जाता है। मानव का नियति विधि से प्रगटन क्रम में धरती पर ''होना'' देखा जाता है। मानव के अभी तक के इतिहास में उसका जीव चेतना विधि से ''रहना'' पाया जाता है।

मिट्टी का होना-रहना देख कर मानव का मानवीयता स्वरूप में रहना बनेगा नहीं। मिट्टी का होना-रहना मानव के लिए अनुकरणीय नहीं है। जानवर का होना-रहना मानव के लिए अनुकरणीय नहीं है। मानव जीव संसार के बाद धरती पर प्रगट हुआ। मानव ने अपनी मौलिकता को अभी तक पहचाना नहीं है। मानव जब अपनी मौलिकता को पहचानेगा तभी मानव चेतना विधि से जियेगा। मानव की मौलिकता ''मानवीयता'' ही है। मानव द्वारा अपनी मौलिकता को पहचान कराने के लिए ही मध्यस्थ दर्शन के अध्ययन का प्रस्ताव है।

(दिसम्बर 2009, अमरकंटक)

# नियति विधि से नियम है

नीति ''नियति'' से सम्बंधित है। नियति का अर्थ है सहअस्तित्व। सहअस्तित्व नित्य प्रगटनशील है। यही नियति है।

साम्य सत्ता में सम्पूर्ण जड़ चैतन्य प्रकृति क्रियाशील है। भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया, जीवन क्रिया इन तीन स्वरूप में प्रकृति क्रियाशील है। प्रकृति की मूल इकाई परमाणु है। परमाणु ही भौतिक क्रिया और रासायनिक क्रिया में भाग लेता है। जीवन क्रिया स्वयं एक गठनपूर्ण परमाणु है। समस्त प्रकृति सत्ता में डूबे, भीगे, घिरे होने के कारण ऊर्जा संपन्न, बल संपन्न और क्रियाशील है। इस आधार पर साम्य सत्ता में संपृक्त प्रकृति का सहअस्तित्व सहज प्रगटन होता रहता है।

प्रगटन के मूल में है ''मात्रात्मक परिवर्तन'' और ''गुणात्मक परिवर्तन''। जड़ संसार में मात्रात्मक परिवर्तन के आधार पर गुणात्मक परिवर्तन होता है। चैतन्य प्रकृति (जीवन परमाणु) में केवल गुणात्मक परिवर्तन है। अभी तक चैतन्य प्रकृति ने गुणात्मक परिवर्तन का मार्ग पकड़ा ही नहीं था। जीव चेतना में ही जीता रहा। हाथी भी जीता है, मानव भी जीता है। हाथी जीव चेतना में होते हुए भी अपराध के पक्ष में नहीं जीता। मानव जीव चेतना में होते हुए अपराध के पक्ष में ही जीता है। अब जीव चेतना में जीते हुए मानव को ठीक माना जाए या हाथी को ठीक माना जाए? इस बात को आत्मीयता के साथ मैं आपसे कह रहा हूँ। मानव प्रकृति अपने पूरे इतिहास में जीव चेतना में जीते हुए ह्रास विधि से ही कार्य करता रहा है। यही ''चेतना विकास'' की आवश्यकता का निर्णय है। अभी तक मानव ने अपने पूरे इतिहास में ''ह्रास'' का काम किया या ''विकास'' का? इसको सोच कर आप ही निर्णय कीजिये!

नीति का मतलब ही है नियति विधि से निर्णय लेना।

नियति विधि से नियम है। नियम ही आचरण है।

ज्ञान को प्रमाणित करने वाला मानवीयतापूर्ण आचरण ही मानव के लिए ''नियम'' है।

ज्ञान का मतलब है सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान। इस ज्ञान को प्रमाणित करने वाला आचरण ही मानव के लिए ''नियम'' है।

(अनुभव शिविर जनवरी 2010, अमरकंटक)

# शिक्षा के लिए विकल्प

आदिकाल से ही मानव परंपरा में शिक्षा की बात है। यह जंगल युग से ही है। शिक्षा के बारे में मानव चर्चा करते ही आया है। इस क्रम में हमारे देश में वैदिक शिक्षा की बात आयी। दूसरे देश में बाइबिल को शिक्षा में लाने की बात हुई। तीसरे देश में कुरान को शिक्षा में लाने की बात हुई। ऐसे ही विभिन्न प्रकार की शिक्षा परम्पराएं धरती पर स्थापित हुई। यह क्रम चलते-चलते आज के समय में विज्ञान शिक्षा का सभी देशों में लोकव्यापीकरण हो चुका है। विज्ञान शिक्षा से अपेक्षा थी कि इससे सबको तृप्ति मिलेगी, लेकिन इससे तृप्ति मिला नहीं।

अभी तक जो कुछ भी शिक्षा में आया, उसके ''विकल्प'' के रूप में मध्यस्थ दर्शन का ''चेतना विकास, मूल्य शिक्षा'' का प्रस्ताव है। जंगल युग से आज तक आदमी जीव चेतना में जिया है। मानव ने जीव चेतना में जीते हुए, जीवों से अच्छा जीने के क्रम में शरीर सुविधा से सम्बंधित सभी वस्तुएं प्राप्त कर लीं। इसमें खाना-पीना, कपड़ा, मकान, यान-वाहन, दूर संचार की सभी वस्तुएं शामिल हैं। यह सब होने के बावजूद मानव को शिक्षा से संतुष्टि नहीं मिली। इसका मूल कारण यह है मानव ज्ञान अवस्था की इकाई है और उसको जीव चेतना की शिक्षा से संतुष्टि मिल नहीं सकती। इसलिए ''विकसित चेतना'' के अध्ययन को शिक्षा में लाने के लिए प्रस्ताव है। मानव चेतना, देव चेतना, दिव्य चेतना ''विकसित चेतना'' है। इस तरह जी कर मानव ''कृत कृत्य'' हो सकता है। ''कृत कृत्य'' होने का मतलब है मानव जिस बात के लिए ज्ञान अवस्था में उदय हुआ है, वह सार्थक होना।

''चेतना विकास'' से आशय है मानव चेतना में जीने के लिए विश्वास स्वयं में पैदा होना। मानव के लिए मानवत्व ही स्वत्व के रूप में पहचानने की आवश्यकता है। देवत्व और दिव्यत्व श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम हैं। मानवत्व से श्रेष्ठता की शुरुआत है। इस आधार पर इसके लिए पारंगत होने की बात आती है।

मानवत्व का क्रिया स्वरूप है मानव के साथ न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जी पाना और मानवेत्तर प्रकृति के साथ नियम नियंत्रण, संतुलन, पूर्वक जी पाना। यदि ऐसे जीना बन पाता है तो हम परिवार में व्यवस्था पूर्वक जी पाते हैं। मानव चेतना पूर्वक मानव समाधानित होता है और परिवार में ''समाधान, समृद्धि'' प्रमाणित करने योग्य होता है। इस प्रकार मानव के जीने में विषमता समाप्त होता है। विषमता समाप्त होने का पहला मुद्दा है ''नर-नारी में समानता''। समझदारी को ही नर-नारियों में समानता के बिंदु के रूप में पहचाना जा सकता है। यदि इस बिंदु को पाना है, तो मानव चेतना को अपनाना ही होगा। मानव चेतना के इस प्रस्ताव को लेकर हम इस घर के बाहर तक तो पहुच गए हैं, पर यह संसार तक पहुँच गया मैं

इस पर अभी विश्वास नहीं करता हूँ। अब हमारी सभी की जिम्मेदारी है यह प्रस्ताव संसार में जल्दी से जल्दी कैसे पहुँचे। ''जल्दी'' इसलिए आवश्यक है क्योंकि धरती बीमार हो चुकी है, प्रदूषण छा गया है, अपराध प्रवृत्ति बढ़ गयी है, अपने-पराये की दूरियाँ बढ़ गयी हैं।

आज की स्थिति में सभी देशों को यह चेतावनी हो चुकी है कि इस तरह हम चलते रहे तो धरती बचेगा नहीं! धरती को बचाना है तो मानव का भ्रम मुक्त, अपराध मुक्त और अपने पराये की दीवारों से मुक्त होना आवश्यक है। अधिकाँश लोग धरती को बचाने के पक्ष में हैं। कुछ लोग ही धरती को न बचाने के पक्ष में होंगे। धरती को बचाने के लिए मानव चेतना के प्रस्ताव को हरेक व्यक्ति के पास ले जाने की जरुरत है।

विज्ञान शिक्षा के लोकव्यापीकरण क्रम में सभी देशों में शिक्षा संस्थाएं स्थापित हो चुके हैं। इस प्रस्ताव को शिक्षा संस्थाओं में पहुँचाने की आवश्यकता है।

(अनुभव शिविर, अमरकंटक जनवरी 2010)

## मानव चेतना पूर्वक सर्व मानव का सुखी होना बनता है

मानव के समाधानित होने के लिए उसका ज्ञान संपन्न होना आवश्यक है। ज्ञान है अस्तित्व को सहअस्तित्व स्वरूप में समझ पाना। सहअस्तित्व में जीवन को समझना। सहअस्तित्व में मानवीयतापूर्ण आचरण को समझना। यह तीन बात समझ में आता है तो ''ज्ञान'' हुआ। उसके पहले ज्ञान हुआ नहीं।

अस्तित्व को सहअस्तित्व स्वरूप में समझने का मतलब है सहअस्तित्व में ''दृष्टा पद प्रतिष्ठा'' को पाना।

मानव ही सहअस्तित्व में अध्ययन करता है। अध्ययन का प्रयोजन ही है सहअस्तित्व में दृष्टा पद प्रतिष्ठा को पाना। व्यापक और एक-एक वस्तु का सहअस्तित्व है। यह चार अवस्था (पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था) तथा चार पद (प्राण पद, भ्रांत पद, देव पद और दिव्य पद) के स्वरूप में प्रगट है। यही अध्ययन की वस्तु है।

सहअस्तित्व में ही जीवन ज्ञान है।

सहअस्तित्व में ही मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान है। मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान के आधार पर मानव चेतना का पता चलता है। सुविधा संग्रह के ज्ञान के आधार पर मानव चेतना का पता नहीं चलता। भक्ति विरक्ति के आधार पर मानव चेतना का पता नहीं चलता।

सहअस्तित्व में ज्ञान होने पर ही पता चला ''मानव चेतना'' का स्वरूप क्या है?

मानव चेतना पूर्वक जीने से ''उपकार'' करने की विधि आ गयी। उपकार का स्वरूप ज्ञान होने से देव चेतना और दिव्य चेतना का पता चला। मानव चेतना से पहले उपकार होता नहीं है, चाहे कुछ भी कर लें।

संग्रह सुविधा विधि से उपकार होता है, या शोषण होता है? आज जिनको सर्वोपरी विद्वान मानते हैं, वे उपकार कर रहे हैं, या शोषण कर रहे हैं?

शोषण करना है, या नहीं करना है? यह पूछते हैं, तो सभी मानवों का यही उत्तर मिलता है ''नहीं करना है।''

**प्रश्नः ''शोषण नहीं करना है'' यह सभी मानवों का उत्तर कैसे है?**

**उत्तरः** यही तो जीवन सहज है। जीवन में ''शुभ का चाहत'' बना हुआ है। जीवन सहज रूप में शुभ को ही चाहता है। जीवन सुखी होना चाहता है, इसलिए मानव से ऐसा सकारात्मक उद्गार निकलता है।

**प्रश्नः जीवन सहज रूप में ''शुभ'' को ही क्यों चाहता है?**

**उत्तरः** क्योंकि जीवन की गम्य स्थली ''शुभ'' है।

**प्रश्नः जीवन को ( या मुझे ) पता कैसे चला कि उसका गम्य स्थली ''शुभ'' है?**

**उत्तरः** जीवन को पता नहीं है, पर ऐसा है! अभी जो लोग कहते हैं, हम ''सुखी'' हैं या ''दुखी'' हैं उनको पता ही नहीं है सुख क्या है? अभी तक केवल संवेदनाओं का ज्ञान है। संवेदनाएं जब तक राजी रहती हैं, तब तक अपने को ''सुखी'' मान लेते हैं। संवेदनाएं जब राजी नहीं रहती तो अपने को ''दुखी'' मान लेते हैं। जंगल युग में क्रूर जीव जानवरों से दुखी होने की बात होती थी। आज अमानवीयता से दुखी होने की बात है, जिसको हम ''शोषण'' कह रहे हैं। सुखी होने की अपेक्षा में ही मानव आज तक दुखी होता आया है।

**प्रश्नः सुखी होने की अपेक्षा मानव में आ कैसे गयी?**

**उत्तरः** संवेदनाओं की सीमा में जीने से मानव को सुख भासता है ( या सुख जैसा लगता है) पर वह सुख होता नहीं है। सुख के इस भास के टूटने से मानव दुखी होता है। ''दु:ख नहीं चाहिए'' यह मानव को पता चलता है। पर ''सुख'' क्या है यह पता नहीं चलता। ''दु:ख नहीं

चाहिए'' इस बात का ज्ञान मानव को जंगल युग से ही है। ऐसी स्थिति जिसमें ''दु:ख नहीं हो'' उसको मानव ने ''सुख'' नाम दे दिया। इस तरह ''सुख चाहिए'' यह बात मानव के पकड़ में आयी। ''सुख'' नाम पकड़ में आया। लेकिन ''सुखी'' कैसे होना है यह मानव के पकड़ में नहीं आया। मानव की यह स्थिति जंगल युग से आज के अत्याधुनिक युग तक बनी हुई है। अत्याधुनिक युग में मानव ने बहुत शेखी मारा ऐसा कर देंगे, वैसा कर देंगे! पर उसका सुखी होना भर बना नहीं!

अब क्या किया जाए? यही पुनर्विचार की स्थिति है।

उसी क्रम में यह अनुसंधान हुआ है। अनुसंधान पूर्वक पता चला मानव चेतना पूर्वक सर्व मानव का सुखी होना बनता है।

अभी तक मानव जीव चेतना में जिया है। जीवों से अच्छा जीने का कोशिश किया है यह भी है। पर इस क्रम में धरती बीमार हो गया। भ्रमित मानव द्वारा जंगल और खनिज के अनानुपातीय शोषण से ही धरती बीमार हुई है। धरती जो बीमार हो गयी तो मानव चेतना को अपनाना मानव के लिए अनिवार्य हो गया। मानव धरती को तंग करते ही जाए तो धरती सुधरेगा कैसे? मानव समझे, धरती को तंग करना बंद करे तो धरती का अपने-आप सुधरना बनेगा।

मानव चेतना विधि से वन और खनिज के अनुपात को समझा जाए, जिससे ऋतु संतुलन रहने की बात बनती है। ऋतु संतुलन पूर्वक भौतिक वस्तुओं का उत्पादन करने से ''समृद्धि'' आती है। इस प्रकार समाधान और समृद्धि पूर्वक मानव का सुख और शान्ति पूर्वक जीना बनता है।

(दिसम्बर 2009, अमरकंटक)

## निरंतर सुख पूर्वक जीना

जीव चेतना में जीना = पाँच संवेदनाओं की सीमा में जीना। पाँच संवेदनाओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध) में से कोई ऐसी संवेदना ही नहीं है जिससे सदा-सदा अच्छा लगता रहे। इसलिए जीव चेतना की सीमा में जीने से कोई ''संतुष्टि बिंदु'' ही नहीं है।

संतुष्टि चाहिए या नहीं चाहिए? यह पूछने पर यही उत्तर मिलता है, ''चाहिए।''

ज्ञान विवेक विज्ञान ऐसा वस्तु है, जो सदा-सदा के लिए हमारा स्वत्व हो सकता है।

ज्ञान विवेक विज्ञान स्वत्व होने पर हमारा निरंतर सुख पूर्वक जीना बनता है। इस प्रकार जीने को ''मानव चेतना'' में जीना कहा। इस तरह ''संतुष्टि'' पूर्वक जिया जा सकता है।

इसमें किसको आपत्ति हो सकती है?

किसके ''पक्ष'' में और किसके ''विपक्ष'' में यह बात है?

(दिसम्बर 2009, अमरकंटक)

## समाधान, समृद्धि

जागृति पूर्वक हर मानव के जीने का स्वरूप बनता है ''समाधान, समृद्धि''।

समाधान में ज्यादा कम की गुंजाइश नहीं है। समाधान ज्यादा कम होने पर, या मनमानी होने पर समानता का आधार ही नहीं बनता। समाधान के लिए ज्ञान ही है। ज्ञान को कोई आधा-पौना किया नहीं जा सकता। सभी में ज्ञान स्वीकृत होने पर, सब में समाधान प्रमाणित होने पर ही ''समानता'' का आधार बनता है।

समृद्धि में ज्यादा कम की गुंजाइश है। दो परिवारों में समृद्धि की मात्रा में भेद हो सकता है। किसी परिवार को कम मात्रा में समृद्धि का अनुभव होता है, किसी को ज्यादा मात्रा में समृद्धि का अनुभव होता है। समृद्धि का अनुभव होना आवश्यक है। समृद्धि की मात्रा का निर्णय परिवार की आवश्यकता के अनुसार है। समृद्धि के लिए उत्पादन आवश्यक है। समाधान पूर्वक समृद्धि स्वीकार होना ही समानता है।

(दिसम्बर 2009, अमरकंटक)

## समाधान, समृद्धि का अनुकरण

स्वयं में विश्वास नहीं है तो दूसरे पर विश्वास करना सम्भव नहीं है। आज के प्रचलित तरीके से जीने से आदमी अहमता के आधार पर अकेला हो गया है, जबकि वास्तविक रूप में नियति विधि से आदमी सहअस्तित्व में है।

**प्रश्नः मानव के मानव से जुड़ने की विधि क्या हो?**

**उत्तरः** पहले हम ''श्रेष्ठता'' के साथ जुड़ते हैं, फिर ''समानता'' के साथ जुड़ते हैं। ''यह व्यक्ति मेहनत करके कुछ पाया है'' ऐसी श्रेष्ठता के अनुमान के साथ आप मुझसे जुड़े हो। ज्ञान में समानता, विचार में समानता और प्रयोजन में समानता इन तीन जगह में समानता

आने पर समानता के साथ जीना बन जाता है। समानता पूर्वक व्यवस्था में जीने के दो बिन्दु पहचाने (1) अमीरी-गरीबी में संतुलन, (2) नर-नारी में समानता। मानव के इस तरह व्यवस्था में जीने के लिए उसका ''समझदार'' होना आवश्यक है यह मैंने स्वीकारा है। समझदारी के पहले आदमी का व्यवस्था में जीना बनेगा नहीं।

**प्रश्नः समझदार होने तक क्या किया जाए?**

**उत्तरः** समझदार होने तक समझदार व्यक्ति का अनुकरण किया जा सकता है। एक व्यक्ति अगर समझदार होता है, तो वह कुछ लोगों को स्वीकार होता है। इसके साथ यह भी है, अनुभवशील व्यक्ति किसी न किसी को स्वीकार होता ही है, कि ''यह श्रेष्ठ व्यक्ति है।'' श्रेष्ठ व्यक्ति का व्यक्तित्व भी स्वीकार होता है। इसलिए अनुकरण की सम्भावना बनती है। जिसको प्रमाण के रूप में स्वीकारते हैं, उसका अनुकरण कर सकते हैं। समझदार व्यक्ति को प्रमाण रूप में स्वीकारने की गवाही उसका अनुकरण करने में है।

**प्रश्नः अध्ययन काल में ( समझदार होने तक ) बाकी लोगों के साथ संबंधों में क्या किया जाए?**

**उत्तरः** शिष्टता का निर्वाह। मैं भी समझदार नहीं हुआ हूँ, आप भी समझदार नहीं हुए हैं उस स्थिति में शिष्टता का निर्वाह हो सकता है। दो में से एक व्यक्ति समझदार होता है, तो अध्ययन और अनुकरण की सम्भावना बनती है। दोनों के समझदार होने पर समानता पूर्वक व्यवस्था में जीने की बात बनती है।

**प्रश्नः आपकी किस बात का अनुकरण करें?**

**उत्तरः** समाधान, समृद्धि पूर्वक जीने का। और किस बात का अनुकरण करोगे? समाधान, समृद्धि पूर्वक जीना अनुकरण योग्य है।

साक्षात्कार बोध के लिए निरंतर प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ऐसे प्रयत्न करते हुए हमारी दिनचर्या भी उसके अनुकूल होना आवश्यक है। अपने ''करने'' का यदि अपने ''सोचने'' से विरोधाभास रहता है तो साक्षात्कार बोध नहीं होता। पुनः हम शरीर मूलक विधि में ही रह जाते हैं। आवेश के साथ अध्ययन नहीं होता। आवेश अध्ययन के लिए अड़चन है।

पहले रास्ता ठीक होगा, तभी तो गम्य स्थली तक पहुँचेंगे! रास्ते पर चल कर ही गम्य स्थली तक पहुँचा जा सकता है। रास्ते पर हम चलें नहीं और हमें गम्य स्थली मिल जाए, ऐसा

कैसे हो? इसके लिए हमें यह जाँचने की जरूरत है क्या हमारा ''करना'' हमारे गम्य स्थली तक पहुँचने के लिए अवरोध तो पैदा नहीं कर रहा है? हम जैसा सोचते हैं, वैसा करें भी, वैसा कहें भी, वैसे फल परिणामो को पाएं भी, वैसा प्रमाणित भी करें यही ''गम्य स्थली'' है।

जैसे हम ''नियम'' का अध्ययन कर रहे हैं और हमारा आचरण नियम के विपरीत हो तो इसमें अंतर्विरोध हो गया। इस अंतर्विरोध के साथ नियम का साक्षात्कार नहीं होता। अध्ययन के साथ ''स्वयं का शोध'' चलता रहता है। मैं जो समझ रहा हूँ, क्या मैं उसके अनुरूप जी रहा हूँ? इसको पूरा करने के लिए ही ''अनुकरण विधि'' है।

अध्ययन एक ''निश्चित साधना'' है। अध्ययन रुपी साधना के साथ ''समाधान, समृद्धि'' के प्रारूप का अनुकरण किया जा सकता है। यह आदर्शवाद के प्रस्ताव से भिन्न है, जिसमें साधना के साथ सामने कोई प्रारूप रहता नहीं है। आदर्शवादी साधना में अनुकरण करने की कोई व्यवस्था नहीं है। भौतिकवाद में साधना का कोई मतलब ही नहीं है।

भौतिकवाद में उपलब्धि या गम्य स्थली के रूप में यंत्र है। यंत्र को खरीदो और प्रयोग करो इतना ही है।

(सितम्बर 2009, अमरकंटक)

## अध्ययन के लिए ध्यान देना होता है

अध्ययन के लिए ध्यान देना होता है। इस विकल्पात्मक प्रस्ताव के अध्ययन से ही मैं ''सब कुछ'' पा सकता हूँ उसको ''केंद्रीय ध्यान'' कहा। केंद्रीय ध्यान में अध्ययन पूर्ण होता है।

हम यदि स्वीकारे रहते हैं कि हमारे पास पहले से ही कुछ ''समझ'' है और उस ''समझ'' के आधार पर हमको कुछ चाहिए, तीसरे इस ''समझ'' से हमें कुछ करना है तो वह इस विकल्पात्मक प्रस्ताव के स्वीकार होने में बाधक होता है। इन तीनों पर निषेध लगाते हैं, या इन्हें नकार देते हैं, तो इस प्रस्ताव के अध्ययन के लिए ध्यान लगता है। यह ''अवैध'' को अवैध स्वीकारने की बात है। यह ''निषेध'' को निषेध स्वीकारने की बात है। इस तरह अवैध पर निषेध लगाने पर हमारा मन ''वैध'' के अध्ययन के लिए तैयार हो जाता है। अवैध पर निषेध के साथ अपनी ईमानदारी को लगाने की आवश्यकता है।

**प्रश्न: अध्ययन काल में मन और वृत्ति की क्या स्थिति होती है?**

**उत्तरः** अध्ययन से अनुभव की सम्भावना उदय हो जाती है। जिससे मन और वृत्ति में पहले उत्साह, फिर उत्सव!

**प्रश्नः अध्ययन काल में अपनी पूर्व स्मृतियों की क्या स्थिति रहती है?**

**उत्तरः** पूर्व स्मृतियाँ प्राथमिकता में नीचे रहते हैं।

**प्रश्नः क्या ध्यान के लिए जो परम्परा गत अभ्यास विधियाँ बताई गयी हैं, उनसे अध्ययन में कोई मदद मिलती है?**

**उत्तरः** अध्ययन ही अभ्यास है। आँखें मूँद लेना कोई ध्यान देना नहीं है। परम्परा गत अभ्यास विधियों का मध्यस्थ दर्शन के अध्ययन से कोई लेना-देना नहीं है।

(सितम्बर 2009, अमरकंटक)

## अध्ययन विधि

(1) भ्रमित अवस्था में कल्पनाशीलता आशा, विचार और इच्छा की ''अस्पष्ट गति'' है। हर मानव में प्रकृति प्रदत्त विधि से कल्पनाशीलता है। अपनी कल्पनाशीलता का प्रयोग करने का हर व्यक्ति के पास अधिकार है। इस कल्पनाशीलता का प्रयोजन है तदाकार तद्रूप विधि से अनुभव प्रतिष्ठा को पाना। कल्पनाशीलता संज्ञानीयता में गुणात्मक परिवर्तन होने के लिए बीज, रूप है। कल्पनाशीलता ही गुणात्मक परिवर्तन पूर्वक अनुभव प्रमाण संपन्न होती है। ''हर मानव के पास कल्पनाशीलता है।'' यदि यह निर्णय नहीं निकलता है तो मानव को अध्ययन कराने का कोई रास्ता ही नहीं है।

**प्रश्नः ''तदाकार तद्रूप'' से क्या आशय है?**

**उत्तरः** ''तद'' शब्द सच्चाई को इंगित करता है। सच्चाई के स्वरूप में कल्पनाशीलता हो जाना ही 'तदाकार तद्रूप' है। अनुभव प्रमाण जीवन स्वरूप में समाहित हो जाना तदाकार तद्रूप है। यह अध्ययन विधि से होता है।

(2) अध्ययन विधि से क्रमशः जागृति के लिए ''सच्चाइयों का साक्षात्कार'' होता है। साक्षात्कार आशा विचार इच्छा की ''स्पष्ट गति'' है। साक्षात्कार क्रम में जीव चेतना से छूटने की स्वीकृति और मानव चेतना को पाने की स्वीकृति दोनों रहता है। अध्ययन विधि में क्रम से वास्तविकताएं साक्षात्कार हो कर बोध होती हैं। पहले सहअस्तित्व साक्षात्कार होना, फिर सहअस्तित्व में विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम और

जागृति साक्षात्कार होकर बोध होना। बोध पूर्ण होने के फलस्वरूप आत्मा में अनुभव होता है।

रूप, गुण, स्वभाव और धर्म का साक्षात्कार होता है। इसमें से स्वभाव और धर्म का बोध होता है। बोध पूर्ण होने पर धर्म का अनुभव होता है। इस तरह ''संक्षिप्त'' हो कर अनुभव होता है।

**प्रश्नः मुझे किसी वास्तविकता का साक्षात्कार हुआ है या नहीं इसका मुझे कब पता चलेगा?**

**उत्तरः** स्वयं के प्रवृत्तियों पर स्पष्ट अनुभव के बाद ही पता चलेगा उससे पहले पता नहीं चलता। अनुभव के बाद स्वयं को प्रमाणित कर पाते हैं तो मतलब साक्षात्कार हुआ है, नहीं तो नहीं हुआ।

(3) अनुभव की रौशनी में अध्ययन होता है। अध्ययन विधि में ''अनुभव की रौशनी'' अध्ययन कराने वाले के पास रहता है। गुरु की प्रेरणा ही अनुभव की रौशनी है। ''गुरु'' का मतलब ही है अध्ययन कराने वाला। ''जिज्ञासा'' अध्ययन करने वाले (शिष्य) के पास रहता है। शिष्य ''अनुभव की रौशनी'' पर विश्वास करता है। इसका मतलब शिष्य गुरु के अनुभव संपन्न होने पर विश्वास करता है। अध्ययन करने वाला अनुभव की रौशनी में कल्पनाशीलता के प्रयोग से वास्तविकताओं को पहचानता है। अध्ययन करने वाला प्रभावित होता है। अध्ययन कराने वाला प्रभावित करता है। अध्ययन कराने वाला (अनुभव मूलक विधि से) चिंतन पूर्वक अध्ययन कराता है। अध्ययन करने वाला (अनुभवगामी विधि से) साक्षात्कार करता है। अध्ययन पूर्ण होने के बाद अध्ययन करने वाले और अध्ययन कराने वाले में समानता हो जाती है।

अध्ययन व्यक्ति में, से, के लिए होते हुए भी व्यक्तिवादिता नहीं है। मौन होना अध्ययन नहीं है। अध्ययन जागृत व्यक्ति के साथ ''सार्थक संवाद'' पूर्वक होता है।

(4) ''संक्षिप्त'' हो कर अनुभव होता है। जो ''विस्तृत'' हो कर फैलता है। अनुभव पूर्वक कल्पनाशीलता अनुभव मूलक हो ही जाती है। इसके आधार पर अनुभव का विस्तार हो जाता है। अनुभव में बीज रूप बनने के बाद वह सर्व देश और सर्व काल में जीवन के प्रमाणित होने का स्त्रोत बन जाता है। इस तरह ''अनुभव की रौशनी'' में हर बात को स्पष्ट करने का अधिकार बन जाता है।

(5) सहअस्तित्व में व्यापक स्वरूप में सत्ता और चार अवस्थाओं के स्वरूप में प्रकृति समाहित है। चारों अवस्थाओं के साथ मानव सहअस्तित्व को कैसे प्रमाणित करे, इसके लिए मानव को ''अनुभव'' की जरूरत आयी। नहीं तो अनुभव की जरूरत ही नहीं थी। सहअस्तित्व में प्रमाणित होने के लिए ही हमको अनुभव की आवश्यकता है। अनुभव स्थिति में ''सूत्र'' है, जीने में ''व्याख्या'' है।

**प्रश्नः आप कहते हैं ''समझ के करो।'' हम जब इस प्रस्ताव को ''समझने'' के क्रम में हैं, उस दौरान अपने ''करने'' का क्या किया जाए?**

**उत्तरः** अनुभव के लिए समझना है। अनुभव के बाद ''समझ के करना'' ही होता है। ''समझने'' की अन्तिम-बात अनुभव में है। अनुभव से कम दाम में किसी भी मुद्दे में संतुष्टि नहीं होता न किसी सम्बन्ध में, न मूल्यों में, न लेन-देन में। तब तक ''करने'' के लिए बताया है अनुकरण। अपने जीने के प्रारुप में अनुकरण विधि से आप परिवर्तन कर सकते हैं। जैसे मैं समाधान, समृद्धि पूर्वक जीता हूँ। आप उसको अनुकरण कर सकते हैं। यदि ऐसा कर पाते हैं, तो अपने लिए काफी सहूलियत हो गयी। हर दिन अपने वातावरण में कमियों के प्रति शर्मिंदा होने के स्थान पर आगे अनुभव के लिए हम प्रयत्न कर सकते हैं। ऐसा अनुकरण अध्ययन के लिए सहायक है।

(सितम्बर 2009, अमरकंटक)

जीव चेतना में जब साढ़े चार क्रिया की सीमा में मानव जीता है, तो उसे लगता रहता है ''यह पूरा नहीं है।'' ''यह पूरा नहीं है।'' यह स्वयं में पीड़ा के रूप में प्रेरणा पाने का अधिकार है। इस ''पीड़ा'' को अन्तः प्रेरणा कह सकते हैं। अनुभव संपन्न व्यक्ति के संयोग में आने पर बाह्य-प्रेरणा से ''पूर्णता की अपेक्षा'' बन जाती है। अध्ययन करने वाले और अध्ययन कराने वाले के संयोग पूर्वक यह ''अपेक्षा'' बनती है। अध्ययन कराने वाला अध्ययन करने वाले के लिए पूर्णता के लिए ''प्रेरणा स्त्रोत'' होता है। ''पूर्णता'' है क्रिया पूर्णता और आचरण पूर्णता।

अध्ययन करने वाला अपनी कल्पनाशीलता के प्रयोग से अनुभव मूलक विधि से अध्ययन कराने वाले की प्रेरणा से सत्य को पहचानने का प्रयास करता है।

इस प्रस्ताव को अपना स्वत्व बनाने के लिए कल्पनाशीलता को प्रयोजन के साथ लगाना पड़ता है। कल्पना से वास्तविकता में जाने के लिए यदि प्रयत्न होता है तो अध्ययन के

लिए प्रवृत्त होना होता है। अध्ययन के लिए प्रवृत्ति को क्रियान्वयन करने से साक्षात्कार होता है। आशा विचार इच्छा की स्पष्ट गति साक्षात्कार है। यह अध्ययनपूर्वक ही होता है। साक्षात्कार के आधार पर अनुभव की सम्भावना बनती है। अनुभव के बाद प्रमाण।

कल्पनाशीलता ही अनुभव प्रमाण में परिवर्तित होती है। कल्पना में अनुभव प्रमाण समाता नहीं है। अध्ययनपूर्वक कल्पना अनुभव प्रमाण में परिवर्तित हो जाती है। इस का नाम है ''गुणात्मक परिवर्तन''। यही कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु है।

**मानव में कल्पनाशीलता समझने के लिए स्त्रोत है**

कल्पनाशीलता के आधार पर ही हम समझते हैं। अभी तक मानव के इतिहास में, या उपलब्ध वाङ्गमय में कल्पनाशीलता को समझने के स्त्रोत के रूप में नहीं पहचाना गया। मध्यस्थ दर्शन के प्रस्ताव द्वारा ही कल्पनाशीलता के स्त्रोत की पहचान कराने की कोशिश शुरू हुआ। सर्व मानव के पास कल्पनाशीलता है, जिससे वह समझ सकता है।

**प्रश्नः अर्थात् ''मेरे'' पास वह कल्पनाशीलता है, जिससे मैं अस्तित्व को समझ सकता हूँ?**

**उत्तरः** केवल आपके पास ही नहीं, कुछ चुने ही लोगों के पास ही नहीं ''सर्व मानव'' के पास कल्पनाशीलता है। आपके और हमारे पास ऐसी कोई ताकत नहीं है, जिससे समझ हममें ही रहे, हमसे बाहर नहीं जाए। दूसरे के पास जाए ही नहीं! अभी अत्याधुनिक संसार के साथ यही परेशानी है। अत्याधुनिक पढ़ाई व्यक्तिवादिता को बढ़ाती है ''मैं ही लायक हूँ, बाकी सब बेकार हैं।'' जबकि सच्चाई यह है सम्पूर्ण अत्याधुनिक संसार जीव चेतना में जी रहा है। ''सम्पूर्ण अत्याधुनिक संसार जीव चेतना में जी रहा है'' इस निर्णय पर हमको पहुँचना पड़ेगा।

सर्व मानव के पास कल्पनाशीलता ''नियति प्रदत्त'' विधि से है। मानव ने अपनी इस कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता को ''बनाया'' हो, या ''पैदा किया'' हो ऐसा नहीं है। सहअस्तित्व नित्य प्रगटनशील होने से मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता नियति प्रदत्त है। ज्ञान अवस्था द्वारा स्वयं को प्रमाणित करने के लिए कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता आवश्यक है। कल्पनाशीलता के प्रयोग से हम सच्चाई के साथ तदाकार तद्‌रूप हो कर प्रमाणित करते हैं। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के प्रयोग से ही मानव सच्चाई का अध्ययन कर सकता है, सच्चाई को प्रमाणित कर सकता है।

भ्रमित अवस्था में कल्पनाशीलता आशा विचार इच्छा की अस्पष्ट गति है। भ्रमित

अवस्था = जीव चेतना। कल्पनाशीलता के प्रयोग से हम ''ज्ञान'' तक पहुँचते हैं। कल्पनाशीलता के आधार पर ही हम ज्ञानार्जन करते हैं। ज्ञानार्जन करना = शब्द के अर्थ के रूप में जो वस्तु इंगित है, उस अर्थ में हमारी कल्पना का तदाकार होना। ज्ञान को हम तदाकार तद्‌रूप विधि से अनुभव करते हैं। कल्पनाशीलता पूर्वक जो हम तदाकार हुए उसको ''साक्षात्कार'' कहते हैं। अनुभव होने पर, पारंगत होने पर तद्‌रूप हो गए। तद्‌रूप होना = अनुभव का प्रमाणित होना। यही मानव का ऐश्वर्य है।

अनुभव आत्मा में होता है। अनुभव के फलस्वरूप पूरा जीवन अनुभव में तदाकार हो जाता है। फलस्वरूप अनुभव जीने में प्रमाणित होता है। मेरे जीवन में यही हो रहा है। हर परिस्थिति में अनुभव को प्रमाणित करने की प्रक्रिया मेरे जीवन में चल रही है। मुझ में अनुभव सम्पन्नता अक्षय रूप में रखा है। ऐसे ही हर व्यक्ति अनुभव संपन्न हो जाए। अनुभव ही ज्ञान समृद्धि का अन्तिम स्वरूप है। समझदारी की परिपूर्णता अनुभव में ही होता है जो ''दृष्टा पद'' है। अनुभव जब जीने में आता है उसे ही ''जागृति'' कहा है। जागृति ही अनुभव का प्रमाण है।

अनुभव मूलक विधि से ही कल्पनाशीलता का प्रयोजन सिद्ध होता है। कल्पनाशीलता जब शरीर मूलक विधि से दौड़ता है तो वह आशा विचार इच्छा तक ही सीमित रहता है। इसलिए ''अस्पष्ट'' रहता है। अभी मानव जाति भ्रमवश अस्पष्ट है। अस्पष्टता मानव को स्वीकार नहीं होता। स्पष्टता ही स्वीकार होता है। स्पष्ट होने के लिए अध्ययन कराते हैं। अनुभव संपन्न व्यक्ति अनुभव मूलक विधि से जो चिंतन चित्रण विचार कार्य करता है वह अध्ययन करने वाले के लिए ''प्रेरणा'' होती है। अनुभव मूलक विधि से ही जीवन में चिंतन सक्रिय होता है।

अध्ययन विधि से जीवन की दसों क्रियाएं क्रियाशील हो सकती हैं यह ''सम्भावना'' बनता है। अध्ययन पूरा होने पर दसों क्रियाओं के क्रियाशील होने की निरंतरता बन जाती है। दसों क्रियाएं क्रियाशील हो सकने की ''सम्भावना'' बनने के आधार पर मानव में जो खूबियाँ बनती हैं, वे अपने आप से स्पष्ट होती हैं। इस ''सम्भावना'' से पहले जो साढ़े चार क्रिया में घनीभूत रहते थे उससे तो छूट जाते हैं।

अभी सम्पूर्ण शिक्षा गद्दी, राज्य गद्दी और धर्म गद्दी साढ़े चार क्रियाओं में घनीभूत है। मानव अपने इतिहास में ''स्व विवेक'' से जीवों से अच्छा जीने के लिए शोध अनुसंधान करता ही रहा। जीवों से श्रेष्ठ जीने की सम्भावना स्वयं में उदय करने के लिए ही यह अध्ययन है। अध्ययन पूर्ण होने पर, अनुभव मूलक विधि से जीवों से अच्छा मानव चेतना विधि से प्रमाणित

करना बन जाता है।

सच्चाइयाँ जैसे-जैसे साक्षात्कार होने लगती हैं अनुभव होने की ''सम्भावना'' उदय हो जाती है। पहले कल्पनाशीलता पूर्वक साक्षात्कार होगा यह सम्भावना उदय होती है। फिर साक्षात्कार पूर्वक अनुभव होगा वहाँ तक की सम्भावना उदय होती है। अनुभव होने के बाद प्रमाण स्वयं स्फूर्त होता है और उसकी निरंतरता होती है।

साक्षात्कार क्रमिक रूप से होता है। पूरा सहअस्तित्व साक्षात्कार होने पर वह पूर्ण होता है। सहअस्तित्व में ही विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम और जागृति साक्षात्कार होना। यह सब यदि साक्षात्कार हो गए तो तत्काल अनुभव होता है। मध्यस्थ दर्शन का जो पूरा वाङ्गमय लिखा है, उसका आशय या प्रयोजन इतना ही है।

(सितम्बर 2009, अमरकंटक)

## समझना और कार्य करना

शब्द के अर्थ को मानव ही समझता है। मानव ही अपनी समझ के अनुसार कार्य करता है।

''समझना'' और ''कार्य करना'' ये दो भाग हैं। ''कार्य करने'' के पक्ष में जीव जानवर कुछ शब्दों को स्वीकारते हैं किंतु वे उन शब्दों के अर्थ को ''समझते'' नहीं हैं। जैसे कुछ जानवरों को यह बताने पर, यहाँ जाना है वे वहाँ चले भी जाते हैं। सर्कस में जानवरों से नाच कूद कराते ही हैं। लेकिन जानवरों को आप ''सहअस्तित्व'' समझाओ और वे समझ जाएँ ऐसा होता नहीं है। आप जानवरों को ''जीवन'' समझाओ और वे समझ जाएँ, ऐसा होता नहीं है। आप जानवरों को ''मानवीयतापूर्ण आचरण'' समझाओ और वे मानवीयतापूर्ण आचरण करने लगें, ऐसा होता नहीं है।

शब्द से इंगित अर्थ को मानव ही समझता है। शब्द के अर्थ में सहअस्तित्व वास्तविकता के रूप में इंगित होता है, जिसको मानव ही समझता है।

अब हमको यह निर्णय लेना है हमको जीव-जानवरों जैसे ''कार्य करने'' की सीमा में जीना है, या ''समझ'' की सीमा में जीना है?

समझ कर मानव समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व पूर्वक जी पाता है। समझ

के प्रमाणित होने की यही जगह हैं और कहीं भी नहीं।

समझे हैं, तो ऐसे जी पायेंगे। नहीं समझे हैं, तो ऐसे जी नहीं पायेंगे।

(सितम्बर 2009, अमरकंटक)

## संवाद का उद्देश्य और मर्यादा

**प्रश्नः आपके साथ संवाद का उद्देश्य क्या होगा और इस संवाद की मर्यादा क्या होगी?**

**उत्तरः** संवाद का उद्देश्य तय पहले होना आवश्यक है। किस प्रयोजन के लिए हम संवाद करें?

हमारे संवाद का उद्देश्य रहेगा ''मानवत्व को पहचानना और मानवीयता का संरक्षण होना।''

इस उद्देश्य के अंतर्गत हम समाधान समृद्धि पूर्वक जीने के लिए संवाद करेंगे। इस उद्देश्य के अंतर्गत हम नियम नियंत्रण, संतुलन, पूर्वक जीने के अर्थ में संवाद करेंगे। और आगे इस उद्देश्य के अंतर्गत हम प्रबुद्धता, प्रभुता और प्रभुसत्ता के बारे में संवाद करेंगे। ये सभी मुद्दे अलग-अलग टुकड़े नहीं हैं, इस उद्देश्य के भाग हैं।

यह संवाद करते हुए हम इस बात को भी आमंत्रित करते ही रहेंगे, जो यह बताये यदि विगत में मानवत्व का पहचान हुआ हो, यदि विगत में मानवीयता का संरक्षण हुआ हो। हर परिस्थिति, हर संवाद, हर सम्मलेन में यह निमंत्रण रहेगा। इसको हम भूलेंगे नहीं।

हमारे हिसाब से, विगत की समीक्षा है विगत में न तो मानवत्व को पहचाना गया, न ही मानवीयता का संरक्षण हुआ। न किसी देश में! न किसी काल में!

मानवत्व को पहचानना = मानव का अध्ययन।

मानवीयता का संरक्षण = मानवीयतापूर्ण आचरण (मूल्य, चरित्र, नैतिकता) का प्रमाणीकरण।

अध्ययन कराने वाला प्रमाणित है, यह स्वीकार होने से ही संवाद की मर्यादा है।

(सितम्बर 2009, अमरकंटक)

## साम्य ऊर्जा और कार्य ऊर्जा

साम्य ऊर्जा और कार्य ऊर्जा का अध्ययन जड़ प्रकृति के सन्दर्भ में है।

साम्य ऊर्जा सम्पन्नता वश परमाणुओं में चुम्बकीय बल सम्पन्नता है। चुम्बकीय बल सम्पन्नता वश परमाणुओं में क्रियाशीलता है। क्रियाशीलता वश (जड़) इकाईयों में कार्य ऊर्जा का प्रकाशन है जो ध्वनि, ताप और विद्युत के रूप में होती है। साम्य ऊर्जा यथावत रहती है। साम्य ऊर्जा का व्यय नहीं होता। कार्य ऊर्जा का व्यय होता है। जड़ प्रकृति में जो कार्य ऊर्जा प्रगट होती है, उसको मानव अपने उद्यम से घटा और बढ़ा सकता है और उसको अपने उत्पादन कार्य के लिए प्रयोग में ला सकता है। यह मानव अभ्यास पूर्वक सिद्ध कर चुका है।

(सितम्बर 2009, अमरकंटक)

## अनुभवमूलक विधि से प्रमाण, अनुभवगामी विधि से अध्ययन

मानव परम्परा में सुदूर विगत से समझदारी संपन्न होने का प्यास बना ही रहा है। हर पीढ़ी में किसी आयु तक मानव समझने के पक्ष में ज्यादा से ज्यादा प्रयत्नशील रहना पाया जाता है। यौवन अवस्था तक ही समझदारी का प्यास सर्वाधिक व्यक्तियों में रहना पाया जाता है। सर्वाधिक मानव संतानों में यौवन अवस्था (लगभग 18 वर्ष) तक किसी निष्कर्ष में आने का शुरुआत हो जाता है। 18 वर्ष तक सर्वाधिक व्यक्ति अपने को समझदार मान ही लेते हैं।

शिक्षा का प्रयोजन पिछली पीढ़ी का अगली पीढ़ी को ''समझदारी'' प्रवाहित करना है। अभी तक के शिक्षा क्रम में ''भय'' और ''प्रलोभन'' को ही समझदारी मानते हुए देखा जाता है। विगत का गम्य स्थली भय और प्रलोभन ही रहा है। इसमें भय दूसरों के लिए प्रयोग करना और प्रलोभन के लिए स्वयं तैयार रहना समाहित रहता है। इस मनमानी का क्रियारूप देने के मूल में मानव में प्रकृति प्रदत्त विधि से प्रावधानित कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता ही रहा।

जीव चेतना में मानव का गम्य स्थली ''भय'' और ''प्रलोभन'' के रूप में प्रभावित होना ही रहता है। इसमें से ''भय'' पूर्वक दूसरों को पीड़ित करने के क्रम में मानव परम्परा में मनमानी व्यवस्था बनती गयी। यह मनमानी व्यवस्था अपने-पराये की दीवारों के आधार पर ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट हुई।''पराया'' कहलाने वालों के साथ सर्वाधिक अपराध करने की योजना करना और ''अपना'' कहलाने वालों के साथ न्यूनतम अपराध करने की योजना करना और ज्यादा से ज्यादा प्रलोभानात्मक प्रभाव रहता है। इस ढंग से जीव चेतना में हम मानव

अपने-पराये के साथ ही रहते हैं।

जीव चेतना विधि से यह तय नहीं हो पाता सबको अपना कैसे माना जाए! जीव चेतना विधि से आचरण में सबको अपना मानना तय होता नहीं है। जीव चेतना विधि से संविधान इसको तय नहीं कर पाता। जीव चेतना विधि से शिक्षा में अपने-पराये की दीवारों से मुक्ति, या सबको अपना मानने की सूत्र व्याख्या स्पष्ट नहीं हो पाती। इन सभी प्रभावों के चलते अपराध और अपराध कार्यक्रमों के साथ सहमत हो कर चलना मानव की विवशता बन जाती है।

मानव जाति में हर नर-नारी प्रकारांतर से शुभ चाहता है, मनः स्वस्थता चाहता है, सुख, शान्ति चाहता है लेकिन विवशतावश ही सम्पूर्ण अस्वीकृत कार्यक्रमों को कर देता है। यह सर्वेक्षण मानव मानसिकता में ''समाधान'' को प्रस्तुत करने के लिए आधार बिन्दु है। वर्तमान में पायी जाने वाली सभी समस्याओं का समाधान सूत्र के रूप में ''चेतना विकास मूल्य शिक्षा'' को प्रस्तावित किया गया है।

अनुभवमूलक विधि से मानवीयतापूर्ण आचरण ''मूल्य'', ''चरित्र'' और ''नैतिकता'' के संयुक्त, रूप में प्रभावित होता है। इसे मैंने भली प्रकार से अभ्यास पूर्वक प्रमाणित किया है।

मूल्य का तात्पर्य है संबंधों को ''प्रयोजनों'' के अर्थ में पहचानना। प्रयोजनों के आधार पर संबंधों को पहचानने से प्रयोजन अपेक्षा में ''सम्बन्ध निर्वाह निरंतरता'' निहित रहता ही है। सम्बन्ध निर्वाह निरंतरता स्वयं ''विश्वास'' का द्योतक होता है। इस तरह विश्वास सभी संबंधों में साम्य रूप में प्रगट होता है। जैसे माता-पिता और संतान के सम्बन्ध में प्रयोजन ''पोषण और संरक्षण'' है। इस प्रयोजन के अर्थ में जब सम्बन्ध निर्वाह की निरंतरता बनती है, तो विश्वास सहित ममता, वात्सल्य और कृतज्ञता मूल्य प्रमाणित होते हैं। इस प्रकार सभी संबंधों को प्रयोजनों के अर्थ में पहचानने पर उन संबंधों की निर्वाह निरंतरता होना, मूल्यांकन होना और उभय तृप्त होना स्वाभाविक हो जाता है।

चरित्र रूप में मानवीयतापूर्ण आचरण स्वधन, स्वनारी और दयापूर्ण कार्य व्यवहार यह मानव चेतना विधि से ही प्रमाणित होना पाया जाता है।

नैतिकता हर नर-नारी द्वारा अपने तन, मन, धन रुपी अर्थ को पहचानने की आवश्यकता है। अर्थ का सदुपयोग करना और सुरक्षा करना ही नैतिकता है। नैतिकता धर्म नीति और राज्य

नीति के अर्थ में प्रायोजित होती है।

सहअस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व में मानव के ज्ञान अवस्था की इकाई होने के कारण मानव में समाधान, समृद्धि अभय और सहअस्तित्व पूर्वक जीने की अपेक्षा सदा-सदा से है। मानव चेतना विधि से मानवीयतापूर्ण आचरण पूर्वक यह अपेक्षा पूरी हो जाती है।

अनुभव मूलक विधि से ही मानव मानव चेतना को व्यक्त करता है, तथा अनुभवगामी विधि से अध्ययन करता है। अनुभव जीवन में संपन्न होना पाया जाता है। जीव चेतना ''विवशता'' के रूप में मानव परम्परा में स्पष्ट हुआ है।

जीव अवस्था में जीव चेतना वंशानुषंगीय विधि से चार विषयों (आहार, निद्रा, भय, मैथुन) की सीमा में व्यवस्था होना देखा गया। हर जीव शरीर सम्पूर्णता के साथ त्व सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता है। वंशानुषंगीयता का सम्पूर्ण रूप इतने में ही निहित हुआ।

मानव वंशानुषंगीयता की सीमा में सीमित नहीं हो पाया क्योंकि कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता मानव को नियति प्रदत्त वरदान रहा। मानव को वंशानुषंगीयता से छूट कर किस आधार पर परम्परा के रूप में वैभवित होना है यह जीव चेतना विधि से निश्चित नहीं हो पाता। मानव चेतना विधि से मानव किस प्रकार परम्परा के रूप में वैभवित होना है यह निश्चयन होता है।

21वीं सदी तक मानव जाति जीव चेतना से पूरी तरह प्रभावित रहा है। अब मानव चेतना सहज वैभव के प्रति समझदारी विकसित करने और प्रमाणित करने का कार्यक्रम शुरू हो चुका है। इसे हर व्यक्ति, हर परिवार और सभी समुदाय अध्ययन कर सकते हैं और प्रमाणित कर सकते हैं।

अनुभव मूलक विधि से प्रमाण प्रस्तुत होना ही मानव चेतना का तात्पर्य है। शरीर मूलक विधि से, अथवा जीव चेतना विधि से जीवन की साढ़े चार क्रियाएं क्रियान्वित रहती हैं। शेष साढ़े पाँच क्रियाएं सुप्त रहती हैं। मानव चेतना विधि से जीने के लिए पूरी 10 क्रियाओं का प्रकाशन आवश्यक हो जाता है। इसे भली प्रकार से अनुभव किया गया है।

सहअस्तित्व नित्य वर्तमान है। सहअस्तित्व नित्य प्रभावी है। और सहअस्तित्व ही परम सत्य है। जब ये तीन मुद्दे पूरी तरह स्पष्ट हो जाते हैं, तो जीवन सहअस्तित्व में अनुभव संपन्न होता है।

अनुभव मूलक विधि से आत्मा में अनुभव और उसके प्रमाण स्वरूप में बुद्धि में बोध और संकल्प होता है। संकल्प का तात्पर्य है अनुभव को प्रमाणित करने के लिए संकल्प। बुद्धि में संकल्प का चित्त में चिंतन होता है। इस सच्चाई को किस विधि से प्रमाणित करना चाहिए, यह निश्चित होने के बाद ही चित्त में चित्रण होना पाया जाता है। ऐसे चित्रण जब तुलन के लिए वृत्ति में प्रस्तुत हुआ तो स्वाभाविक रूप में प्रिय, हित, लाभ दृष्टियाँ न्याय, धर्म, सत्य दृष्टियों में विलय होता देखा गया। ऐसे तुलन का विश्लेषण जीवन मूल्यों, मानव मूल्यों के रूप में विचार में निश्चित होता है। विचारों में ऐसे न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक निश्चितता होने के फलस्वरूप मन में मूल्यों का आस्वादन होना और उस आस्वादन को प्रमाणित करने के लिए संबंधों में चयन करना होता है।

इस तरह अनुभव मूलक विधि से दस क्रियाएं प्रगट होने के क्रम में मानव परम्परा अखण्ड समाज और सार्वभौम व्यवस्था के रूप में अवतरित होना पाया जाता है।

जय हो! मंगल हो! कल्याण हो!

(अप्रैल 2006, अमरकंटक)

## धर्म और व्याख्या

''धर्म'' शब्द एक वेद कालीन या बहुत प्राचीन कालीन उपलब्धि है। प्राचीन काल से ''धर्म'' शब्द का प्रयोग होता आया है। विविध प्रकार से धर्म गद्दियाँ स्थापित हुई। इस धरती पर जितनी भी धर्म गद्दियाँ प्रचलित हो चुकी हैं, वे सभी धर्म के ''लक्षणों'' को लेकर उन समुदायों को समझाया करते हैं। इस क्रियाकलाप को ''उपदेश'' कहते हैं। ''प्रवचन'' भी कहते हैं। इस तरह उपदेश और प्रवचन देने वालों को ''धर्म रक्षक'' मानते हैं। इन उपदेश और प्रवचन को सुनने वालों को ''अनुयायी'' माना जाता है। इस तरह धर्म गद्दियों द्वारा भांति-भांति विधियों से ''आस्था'' की सीढ़ियों तक लोगों को पहुँचाता हुआ और लोगों को पहुँचता हुआ देखा जाता है। इसमें उल्लेखनीय बात यही है धर्म के लक्षणों को बताने वाले को स्वयं धर्म का स्वरूप पता नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में अनुयायियों को या आस्था करने वालों को धर्म कैसे समझ में आएगा यह प्रश्न मानव सम्मुख होता ही है। इस प्रश्न का सटीक उत्तर नहीं होने के आधार पर ऐसा ही बनता है बाकी लोग जैसा कर रहे हैं, वैसा ही हमको भी चलना चाहिए। इस आधार पर मानव परम्परा ने आस्था तंत्र को आज तक बनाए रखा है।

आस्थाएं संवेदनशीलता की अनुकूलता में ही चित्रित होना, व्याख्यायित होना देखा जाता है। संतान अपेक्षा, पद अपेक्षा, धन अपेक्षा, स्वास्थ्य अपेक्षा, सुविधा अपेक्षा के लिए

प्रार्थना होती हैं और उनके प्राप्त होने पर आस्था बना रहता है। इस को ''आस्था परम्परा'' भी कहा जाता है। मानव ने अपने अभावों को व्यक्त करने के लिए आस्था क्रियाकलाप को सुविधाजनक माना। हम कुछ भी बोलें, सोचें उसके प्रत्युत्तर में कुछ भी न बोलने वाले स्थान, मूर्ति, चित्र को अभी तक आस्था क्रियाकलाप के लिए सुविधाजनक माना जाता है। ऐसे स्थली में जो कोई भी प्रार्थना करते हैं, या अपेक्षा करते हैं उसके फलित होने का अपेक्षा करना होता है। ऐसे प्रतीक्षाकाल में घटना विधि से कुछ न कुछ हो ही जाता है। उस घटना को प्रार्थना का, आस्था का फल माना जाता है। इस प्रकार बड़े-बड़े मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारा, चबूतरा, पत्थर पर लालिमा पोत कर रखना देखा जाता है। इन स्थानों को ''पूजा स्थली'' माना जाता है। मूर्तियाँ और चित्र इन सबके साथ जुडी हुई संगतियाँ हैं।

इसके आगे ''आस्था स्थलियों'' से जुडी हुई गतिविधियों का सर्वेक्षण करने पर पता चलता है ऐसी स्थलियों पर वहाँ के आस-पास के कुछ लोग जाया करते हैं, कुछ लोग नहीं भी जाया करते हैं। जो जाया करते हैं, उनकी प्रार्थनाओं में जो अपेक्षा रहती है उनका आंशिक भाग या पूरा भाग किसी-किसी के साथ घटित भी होता है, किसी-किसी के साथ घटित नहीं भी होता है। जो लोग इन आस्थावादी जगहों पर नहीं जाया करते उनकी भी कुछ अपेक्षाएं घटित होती हैं, कुछ नहीं घटित होती। इस प्रकार यह निश्चय करना मुश्किल है कोई उपलब्धि पूजा-पाठ, पत्री आदि से हुई या अपने-आप से हुई। जैसे संतान के लिए प्रार्थना। जो लोग प्रार्थना नहीं भी करते, उनके भी संतान होता है। पैसे और पद के लिए प्रार्थना। जो लोग प्रार्थना नहीं करते उनको भी पद और पैसा मिला रहता है। फिर यह मुद्दा बनता है पूजा-पाठ के आधार पर कैसे कोई चीज प्राप्त होती है? यह कहना मुश्किल हो जाता है।

इसको और गहराई से सर्वेक्षण करें तो पता चलता है सम्पूर्ण अवैध उपलब्धियों को भी आस्था का फलन माना जाता है। जैसे बहुत शोषण करके धन इकट्ठा करने में सफल हो गए तो उसको अपनी प्रार्थना का फल मान लिया। इस विधि से हम कहाँ पहुँच गए हैं यह हमारे सामने है।

आस्थावाद इस प्रकारवाद ग्रस्त होता गया है। 18वीं शताब्दी से मानव जाति द्वारा उन्मुक्त विचार क्रम में, अथवा भौतिकवादी विचार क्रम में तर्क सम्मत विधि से सोचना, समझना, निर्णय करना शुरू हुआ। विज्ञान विधि ने भी तर्क को भरपूर अपनाया। ऐसे सभी तर्क का प्रयोजन भी कुल मिला कर संवेदनाओं को राजी करना ही रहा। संवेदनाओं को राजी करने के लिए सभी अपराधिक कृत्यों जैसे जंगल, खनिज, वन्य जीव, घरेलू जीव इन सबका शोषण, मानव द्वारा दूसरे मानव का शोषण, एक देश का दूसरे देश का शोषण को वैध मान लिया।

इस तरह जो भी किया गया उसके फलन में धरती बीमार हो गयी।

धरती बीमार होने की स्थिति में मानव परम्परा कैसे बना रहेगा? इस तरह तो पिछली पीढ़ियों ने आगे की पीढ़ियों के जीने की स्थली और संभावनाओं को ही समाप्त कर दिया! इस स्थिति के लिए पीछे की पीढियाँ जो अपराध के लिए सहमत हुए हैं ये सब प्रकारांतर से जिम्मेदार होना स्वाभाविक है। इस स्थिति का निराकरण आवश्यक है।

इस स्थिति का निराकरण शोध अनुसंधान विधि से मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद के रूप में मानव सम्मुख प्रस्तुत हुआ है। इसके मूल में अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन है। इसका मतलब मानव ही समझने वाला इकाई है। मानव ही प्रमाणित होने वाला इकाई है। समझदारी से संपन्न होने पर मानव समाधानित होता है, सुखी होता है और यही मानव धर्म है।

अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था के रूप में सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व प्रगट है, वर्तमान है। मानव ज्ञान अवस्था में नियति सहज विधि से है। मानव ज्ञान अवस्था में होने के आधार पर सुखी होने की चाहत में ही जी रहा है। मानव ने पाँच संवेदनाओं के अर्थ में सुखी होने के बारे में सोचा और संवेदनाओं को राजी रखने के लिए प्रयास किया। इस प्रकार के प्रयासों के क्रम में मनाकार को साकार करना सम्भव हो गया। मन: स्वस्थता की अपेक्षा शेष रहे आया। ''सुखी होना'' ही मन: स्वस्थता का स्वरूप है।

''समाधानित होना'' ही सुखी होना है। सर्वतोमुखी समाधान ही निरंतर सुख का स्त्रोत है। यही मानव धर्म का व्यवहारिक सूत्र है। समाधान ही अनुभव में सुख है। समाधान, समृद्धि ही अनुभव में सुख, शान्ति है। समाधान, समृद्धि अभय ही अनुभव में सुख, शान्ति, संतोष है। समाधान, समृद्धि अभय सहअस्तित्व ही अनुभव में आनंद है। जीवन में सुख, शान्ति, संतोष, आनंद मूल्यों का अनुभव होने की स्थिति में मानव परम्परा के कार्य और व्यवहार में समाधान, समृद्धि अभय सहअस्तित्व प्रमाणित होता है। अनुभव स्थिति में सहअस्तित्व स्वरूपी अस्तित्व का दृष्टा होना पाया जाता है। अनुभव मानव परम्परा में प्रमाणित होता है, जिससे नित्य उत्सव होता है। यही आनंद का स्वरूप है।

विकल्प रूप में मानव परम्परा गुणात्मक परिवर्तन के लिए ज्ञान, विवेक और विज्ञान में पारंगत होने की आवश्यकता है। यही अपराध मुक्त प्रवृत्ति और कार्यक्रम का सूत्र है।

(अप्रैल 2006, अमरकंटक)

## न्याय और व्याख्या

न्याय का स्वरूप मानव संबंधों में स्पष्ट होता है।

मानव द्वारा अपनी परस्परता में संबंधों को पहचानना एक साधारण प्रक्रिया है। ''पिता'', ''माता'', ''भाई'', ''बहन'' ये नाम से परस्परता में संबोधन होता ही है। फिर पिता के भाई-बहन (''चाचा'', ''बुआ''), माता के भाई-बहन (''मामा'', ''मौसी'') के संबोधनों के लिए नाम होता ही है।

मानव समझदारी पूर्वक ही हर सम्बन्ध को प्रयोजनों के अर्थ में पहचान पाता है फलस्वरूप मूल्यों का निर्वाह होता है।

हर मानव संतान का अपने अभिभावकों को ''पोषण-संरक्षण'' के अर्थ में पहचानना स्वाभाविक है। जीव चेतना विधि से पोषण-संरक्षण केवल शरीर से सम्बंधित रहता है। संतान को भाषा से संपन्न बनाना और प्रचलित अलंकार से संपन्न कराने का प्रयास बना रहता है। शरीर की सीमा तक ही किया गया पोषण-संरक्षण किसी आयु के बाद नगण्य हो जाता है, या इसकी प्राथमिकताएं बदल जाती हैं, या कुछ दूसरी भौतिक वस्तुओं से जुडी प्राथमिकताएं स्थापित हो जाती हैं। फलस्वरूप अभिभावकों की अपेक्षा के अनुरूप संतान का व्यवहार न हो पाना घटना के रूप में देखने को मिल रहा है। यही पीढ़ियों के बीच की दूरी (जनरेशन गैप) के रूप में देखने को मिल रहा है। इस घटना का निराकरण होना जरूरी है। यह निराकरण जीव चेतना विधि से सम्भव नहीं है। जीव चेतना विधि में जीवों का ही अनुकरण करना बनता है।

इस स्थिति का निराकरण मानव चेतना विधि से यह है

(1) हर मानव संतान का अभिभावकों के साथ अपने संबंधों में प्रयोजनों को स्मरण में रखते हुए कृतज्ञ होना।

(2) विश्वास पूर्वक संबंधों का निर्वाह करना।

(3) तन, मन, धन रुपी अर्थ का उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनशीलता के अर्थ में अर्पण समर्पण के लिए उदार-चित्त रहना।

इस तरह संबंधों का निर्वाह होना ही ''न्याय'' है। संबंधों का प्रयोजन सिद्ध होना, संबंधों में मूल्यों का निर्वाह होना और उभय तृप्ति होना ही न्याय की व्याख्या है।

## विद्यार्थी निष्ठा से सुखी होते हैं

विद्यार्थी निष्ठा से सुखी होते हैं। विद्या को पाने का निष्ठा यदि बना रहता है तो विद्यार्थी सुखी रहता है। निष्ठा जब टूट जाती है तो दुखी रहता है, इधर-उधर झांकता है। विद्या का मतलब है ज्ञान, विवेक, विज्ञान से संपन्न होना। ज्ञान, विज्ञान, विवेक संपन्न होने के लिए जो उपक्रम है, उसमें सदा-सदा अपना ध्यान लगा रहता है इसका नाम है ''निष्ठा''। यदि अपना ध्यान लगना बंद हो जाता है, या ध्यान उचट जाता है उसका मतलब निष्ठा नहीं है। निष्ठा नहीं होने से मानव का विद्या से संपन्न होना या ज्ञान विवेक विज्ञान संपन्न होना सम्भव नहीं है। समझने के लिए निष्ठा चाहिए, हमारा मन लगना चाहिए, हमको इसमें तुलना चाहिए। विद्या से संपन्न होने की अपेक्षा को बनाए रखना चाहिए। विद्या से संपन्न होने के बीच में कोई रोड़ा नहीं लाना चाहिए। बीच में रोड़ा हो तो समझना बनता नहीं है। इतना ही निष्ठा का मतलब है।

निष्ठा पूर्वक हम समझने लगते हैं। निष्ठा पूर्वक समझना सुगम हो जाता है। निष्ठा नहीं होने से दुर्गम है ही यह तो स्वाभाविक है।

(अनुभव शिविर 2006, अमरकंटक)

## बुद्धि के साथ ''विवेक'' पूर्वक हम सुखी होते हैं

बुद्धि के साथ सुखी होने की विधि है विवेक। अविवेक पूर्वक हम दुखी होते हैं। विवेक के बारे हमें विगत में पूर्वजों ने बताया था ''आत्मा का अमरत्व और शरीर का नश्वरत्व विवेक है''। सहअस्तित्ववादी विधि से हम यहाँ बता रहे हैं जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व और व्यवहार के नियम ये तीन मिला करके विवेक है। जीवन के रूप में मैं अमर हूँ यह समझ में आना। शरीर गर्भ में जैसा रहता है, बाहर वैसा नहीं रहता और बड़े होने पर वैसा नहीं रहता, फिर एक दिन शरीर विरचित भी होता है यह हमारे सामने घटित घटनाएं हैं। शरीर प्राण कोशों से रचित एक रचना है। रचना का विरचना होता ही है। शरीर नश्वर है यह समझ में आना। शरीर को विरचित होना ही है, तो इसका क्या किया जाए? सदुपयोग किया जाए। शरीर का सदुपयोग करने हेतु हम ''व्यवहार के नियम'' पर जाते हैं। शरीर के नश्वरत्व के प्रति हम पूरा आश्वस्त रहते हैं। जीवन के अमरत्व के प्रति हम पूरा आश्वस्त रहते हैं। व्यवहार के नियमों के प्रति हम पूरा आश्वस्त रहते हैं। बुद्धि की ताकत इन तीनों को समझने से है। विवेक पूर्वक जीने से हम ''सुखी'' होते हैं।

अविवेक पूर्वक सोचते हैं, तो शरीर को अमर मानना शुरू कर देते हैं। जीवन को अमर

मानने की जगह शरीर को अमर मानने पर दुखी होना स्वाभाविक है। ''शरीर का नश्वरत्व'' को स्वीकारना नियति सहज स्वीकृति है। नियति सहज का मतलब शरीर का विरचित होना एक अस्तित्व सहज क्रियाकलाप है। अस्तित्व सहज जो भी क्रियाकलाप है, उसको नियति सहज माना। मानव अपनी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता वश शरीर को अमर माना है, उससे दुखी होना निश्चित ही है। शरीर को जीवन मानते हैं, तो शरीर में होने वाला छोटा सा परिवर्तन हमको भयंकर विघ्न जैसा प्रतीत होने लगता है। इसलिये शरीर को शरीर मानने की आवश्यकता है, जीवन को जीवन मानने की आवश्यकता है। जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव संज्ञा में होने की बात को स्वीकारने की आवश्यकता है। इन स्वीकृतियों के साथ हम विवेक पूर्वक जीते हैं। विवेक पूर्वक जीने से हम सुखी होते हैं।

विवेक को हटाया मतलब, ''जीवन के अमरत्व'' को भुलावा दे दिया। फिर हमारे लिए शरीर ही जीवन हो गया। शरीर को जीवन मानने के बाद दु:ख का रोड़ा शुरू हो गया। इतना ही बात है।

इस तरह से मानव के पास ये पाँच विभूतियाँ (रूप, बल, पद, धन और बुद्धि) सदा-सदा है। कोई आदमी नहीं है, जो इन पाँचों से रिक्त हो। अपने में इनको अनुभव करना है, कि मैं इन पाँचों से संपन्न मानव हूँ। हम सभी सुखी होने के इच्छुक हैं। फिर रूप के साथ सद्चरित्र, बल के साथ दया, धन के साथ उदारता, पद के साथ न्याय और बुद्धि के साथ विवेक पूर्वक हम सुखी होते हैं। इतना ही बात है।

सारा मानव जाति का सुखी या दुखी होने का इतिहास इतना ही है। चाहे विगत में हो, वर्तमान में हो, या भविष्य में हो। तीनों काल में सुखी या दुखी होने की प्रक्रिया इतना ही है। ये ''निर्णायक'' विधि से स्पष्ट है। ''निर्णायक'' मतलब इसमें अब तर्क कुछ भी नहीं है।

(अनुभव शिविर 2006 अमरकंटक)

## पद से ''न्याय'' पूर्वक सुखी होना बनता है

हम मानव नैसर्गिक विधि से ज्ञान अवस्था में है। ज्ञान अवस्था एक पद है। यह ''देव पद'' है। हमारे पद के अनुरूप हम न्याय का प्रयोग करने से हम पद से सुखी हो जाते हैं। न्याय पूर्वक जीने से हमारा देव पद में जीते हुए सदा-सदा के लिए सुखी रहना बन जाता है। न्याय से हम सुखी होते हैं, अन्याय से दुखी होते हैं। उसी तरह उदारता पूर्वक हम सुखी होते हैं, कृपणता पूर्वक हम दुखी होते हैं। दया पूर्वक हम सुखी होते हैं, निष्ठुरता पूर्वक हम दुखी होते

हैं। इन सब बातों को अपने में अच्छे से गाँठ बाँध कर रखने की बात है इसका नाम है, संस्कार। इन विधियों को जीवन में प्रमाणित करना ही संस्कार है।

(अनुभव शिविर 2006, अमरकंटक)

## धन के साथ हम ''उदारता'' पूर्वक सुखी होते हैं

तन, मन और धन ये तीन प्रकार से धन (''अर्थ'' ) होता है। धन से हम कैसे, क्या करके सुखी होते हैं?

धन के साथ हम ''उदारता'' पूर्वक सुखी होते हैं।

उदारता का मतलब है धन को उपयोग करने, सदुपयोग करने और प्रयोजनशील बनाने की क्रिया। धन का परिवार में ''उपयोग'' करना, अखण्ड समाज में ''सदुपयोग'' करना और सार्वभौम व्यवस्था में ''प्रयोजनशील'' बनाने की क्रिया है उदारता। हर अभिभावक में अपने बच्चों के प्रति उदारता रहता ही है। सभी ने अपने बच्चों के प्रति उदारता प्रगट किया है, भले ही कुछ समय तक ही क्यों न हो। मानव में संबंधों में उदारता प्रगट करने की प्रवृत्ति बनी हुई है। उदारता सहज विधि से धन से सुख पाने की विधि बनती है।

(अनुभव शिविर 2006, अमरकंटक)

## बल को ''दया'' पूर्वक प्रयोग करने पर हम सुखी होते हैं

मानव के पास तीसरी विभूति है ''बल''। बल क्या है? शरीर बल, मनोबल। मन के बिना शरीर में कोई बल होता नहीं है। मनोबल के साथ ही शरीर का बल प्रगट होता है। ये आप हम सबके लिए अनुभव करने का मुद्दा है। जीवन शरीर को जीवंत बनाए रखता है और जीवन ही के कारण से शरीर कार्यकलाप के रूप में शरीर बल प्रगट होता है। यह जो बल प्रगट होता है, उसका प्रयोग करने में हम कैसे सुखी होते हैं और कैसे दुखी होते हैं?

बल को ''दया'' पूर्वक प्रयोग करने से हम सुखी होते हैं।

''दया'' की परिभाषा है पात्रता के अनुरूप वस्तु उपलब्ध कराने का क्रियाकलाप। इसको हर अभिभावक अनुभव कर सकते हैं। हर मानव संतान में मानव चेतना को ग्रहण करने का पात्रता बना रहता है। इसको मैं एक बार दोहराता हूँ ''हर मानव संतान में मानव चेतना को पूरा का पूरा ग्रहण करने का पात्रता बना ही रहता है।'' यह यदि आपको स्वीकार होता है, तो जो ऐसे हर संतान में ग्रहण करने की पात्रता बनी हुई है, उसमें मानव चेतना को स्थापित कर

देना ही ''पात्रता के अनुरूप वस्तु उपलब्ध कराने'' का तात्विक रूप में प्रमाण है। तार्किक रूप में इस बात को कहा है ''मनाकार को साकार करने के साथ-साथ मन: स्वस्थता भी प्रमाणित हो जाए।'' यही बात को व्यवहारिक रूप में कहा ''दया पूर्वक वस्तु उपलब्ध करा दी जाए।''

हर अभिभावक को अपनी संतान के साथ दया करने का अधिकार बना रहता है। हर मानव अभिभावक में अपनी संतान के प्रति दया प्रगट करने का प्रवृत्ति बनी ही रहती है। उसके लिए कोई अलग से प्रशिक्षण लेने की जरूरत नहीं है। दया पूर्वक यदि ''बल'' (शरीर बल और मनोबल) का प्रयोग कर पाएं तो संतान में मानव चेतना स्थापित होगी। जिससे अभिभावक भी सुखी होंगे और संतान भी सुखी होगी।

(अनुभव शिविर 2006, अमरकंटक)

## रूप ( शरीर ) से सुख मिलने की विधि ''सद्चरित्रता'' है

मानव को मैंने समझा है। मानव के पास पाँच विभूतियाँ रहता है रूप, बल, पद, धन और बुद्धि। इन पाँच प्रकार की विभूतियों से हर व्यक्ति संपन्न रहता ही है। इन पाँचों विभूतियों के साथ मानव कैसे ''सुखी'' होता है इसको मैंने समझा। इन पाँच विभूतियों के रहते हुए भी मानव के ''दुखी'' होने की बात तो आदिकाल से ही है। लेकिन इन विभूतियों से सुखी होना ''समझदारी'' के बाद होता है, ''समझदारी'' के पहले होता नहीं। समझदारी के पहले ''मनमानी'' होती है और उसका अपने तरीके का ''फल'' होता ही है। जो शाश्वत् और निरंतर होगा वही ''सिद्धांत'' है।

मानव अपने रूप (शरीर) के साथ यदि सद्चरित्रता का पालन करता है तो उसे रूप का सुख है। मानव जड़ और चैतन्य का संयुक्त स्वरूप है। शरीर का रूप होता है। जीवन का रूप सूक्ष्म होता है जो आंखों से दिखता नहीं है, लेकिन समझ में आता है। शरीर, रूप का भोगने वाला जीवन ही है। शरीर रूप को चलाने वाला जीवन ही है। रूप को चलाने की विधि ''सद्चरित्रता'' होने पर रूप का सुख मिलता है।

सद्चरित्रता क्या है?

मानवीयतापूर्ण आचरण को मैं पाया। मैं स्वयं मानवीयतापूर्ण आचरण को करता हूँ। उसमें ''मूल्य'', ''चरित्र'' और ''नैतिकता'' ये तीन भाग समाये हैं। उसमें ''चरित्र'' का जो भाग है उससे शरीर को सुख, रूप में पहचानने की विधि बनती है। वह है स्व धन, स्व नारी/ स्व पुरूष और दया पूर्ण कार्य व्यवहार। इससे शरीर से सुख पाने का स्त्रोत बना है। कहीं भी

इसको कोई भी आदमी आजमा ले, शोध कर ले और परीक्षण कर ले। मानव शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में ही जीवित दिखता है। यदि जीवन भाग जाता है तो मानव संज्ञा नहीं रहता। इस आधार पर शरीर के स्वरूप में जो रूप है उससे सुख मिलने की विधि यही है सद्‌चरित्रता के साथ सुख।

जीवन जब शरीर को जीवंत बनाता है तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पाँच संवेदनाएं प्रगट होती हैं। विगत में मानव के इतिहास में हम कई बार इन संवेदनाओं के पक्ष में लट्टू हुए हैं। इनके विरोध में तप किए हैं। लट्टू होने का मतलब हमने संवेदनाओं को राजी करने में ही पूरा शरीर यात्रा समर्पित कर दिया।

दूसरे इसके विपरीत संवेदनाएं होना ही नहीं चाहिए, इसके लिए जूझ पड़े! इसको तप या विरक्ति कहा गया। ''विरक्ति'' का मतलब संवेदनाओं को नकारने का कार्य। ऐसे विरक्तिवादी मन को ''तप'' से संपन्न करने का आश्वासन शास्त्रों में लिखा हुआ है। इस आश्वासन को परीक्षण करने के लिए बहुत अच्छे-अच्छे लोग अपने आप को अर्पित किए लेकिन अंत में कोई ''प्रमाण'' मिला नहीं। विरक्ति से संवेदनाओं को ''नकारने'' की बात तो चिन्हित हुई, लेकिन ''क्या पाना है'' यह बात चिन्हित नहीं हुई। क्या पाना है, उसके बारे में भाषा के रूप में ''ज्ञान'' को बताया। फिर ज्ञान रहस्य में छुप गया।

कुल मिला कर ''सामान्य मानव'' के लिए न तो ''तप'' सुलभ हुआ और न ही संवेदनाओं को सदा राजी रखना सुलभ हुआ। सब लोगों को ''विरक्ति'' मिल नहीं सकती, न सब लोगों से संवेदनाओं की पूजा-पाठ हो सकती है। सारा मानव का रोना, गाना, तलवार चलाना और फूल-माला चढ़ाना इस बात को लेकर है। इस बात में हमको ध्यान देने की जरूरत है। ये दोनों भाग ''अतिवाद'' में गिरफ्त हो गया यही इनकी समीक्षा है। अब क्या किया जाए? सबको मिलने वाली क्या चीज हो सकता है? इस बात पर सोचा जाए! यह सोचने पर पता चला ''समाधान, समृद्धि'' पूर्वक हर व्यक्ति जी सकता है। हर परिवार जी सकता है। हर व्यक्ति शरीर, रूप के साथ जुड़ा है। शरीर के साथ संवेदनाएं जुडी हैं। संवेदनाओं के साथ सुखी होने की विधि है सद्‌चरित्रता। स्व धन, स्व नारी/स्व पुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार विधि से हमको ज्ञान के साथ संवेदनाओं से मिलने वाला सुख मिलता है।

ज्ञान है सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान। ज्ञान में संपुटित होने पर ही संवेदनाएं नियंत्रित हो पाती हैं। संज्ञानीयता में संवेदनाएं नियंत्रित रहती हैं। इसको मैंने अच्छे से परिशीलन करके यह निष्कर्ष निकाला है। संज्ञानीयता पूर्वक (या मानव चेतना पूर्वक) हम जब संवेदनाओं को नियंत्रित पाते हैं तो हम ''सद्‌चरित्र'' होते हैं।

संवेदनाएं नियंत्रित होने के प्रमाण में ही हम सद्चरित्र होते हैं। इसकी जरूरत है या नहीं है? इसको आप सभी सोच सकते हैं, उसके अनुसार स्वीकार सकते हैं।

(अनुभव शिविर, जनवरी 2006, अमरकंटक)

## कार्य कारण क्रियाकलाप

सुदूर विगत से मानव इतिहास में जो लोग अपने को ''विद्वान'' मानते रहे वे अनेक विधाओं में जिज्ञासा, शोध और अनुसंधान करते रहे। यह सब को ''शुभ'' के अर्थ में समाहित करते रहे। ''कार्य कारण'' को लेकर शोध प्रवृत्तियाँ और उसके अनुसार ''क्रियाकलाप'' आदि मानव काल से ही होता रहा। यह हर मानव में होने वाली कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के आधार पर होता रहा। इस क्रम में मानव ''भय'' से मुक्त होने और ''प्रलोभन'' से तृप्त होने के प्रयत्न करते आया। यह क्रमागत विधि से वनस्थली युग, दूसरा ऋषिकुल युग, तीसरा गुरुकुल युग के रूप में परिलक्षित होना घटना क्रम विधि से स्पष्ट हो गया।

भारत में यह क्रम अब चलते-चलते ''भौतिकवादी युग'' के रूप में पहचाना जाता है। इसके पूर्व युगों को ''आदर्शवादी युग'' माना गया। चाहे भौतिकवादी विधि से हो, या आदर्शवादी विधि से हो ''मानव का अध्ययन'' अभी तक ओझिल रहा है।

यदि आप हम अच्छे तरह से निरीक्षण परीक्षण करें तो पता चलता है ''मानव परम्परा व्यक्तिवाद और समुदायवाद से मुक्त नहीं हो पाया।'' व्यक्तिवाद और समुदायवाद ही अपने-पराये की दीवारों का कारण है जिससे अनेक प्रकार के मतभेद और भाषा, वेश के आधार पर मानव विभाजित होता गया। आदर्शवादी विधि से मानव जाति को अपने-पराये की दीवारों से मुक्त विधि से सोचने, समझने और करने के लिए कोई सूत्र व्याख्या हाथ नहीं लगा है।

आदर्शवादी विधि में आज्ञा पालन, उपदेश और तर्क विहीन अनुशासन विधि से धर्म गद्दियों द्वारा संचालित प्रणालियाँ और उन्ही का गौरव-सम्मान करते हुए भी ''घुटन'' का कारण बना रहा। इन्हीं गतिविधियों के साथ विज्ञान संसार स्थापित हुआ। विज्ञान विधि क्रम में तर्क का समुचित दरवाजा खुल गया। सभी तर्क करने की छूट मिली। विज्ञान विधि से निर्मित औजारों और दमनकारी/विध्वंसकारी औजारों के प्रति शासन परम्पराएं विवश होती गयी। विज्ञान विधि के क्रम में ही प्रौद्योगिकी विधा द्वारा बहुमुखी उत्पादन कार्यों को साध लिया गया। इस तरह जो उत्पादित वस्तुएं सभी परम्पराओं के लिए आकर्षक होना स्वीकार हुआ। इस हौसले के साथ विज्ञान शिक्षा का लोकव्यापीकरण हुआ जिसको व्यक्तिवाद/

समुदायवाद न कहते हुए भी वह ''विशेषज्ञता'' और पेटेंटी (पदजमससमबजनंस चतवचमतजल तपहीज) में ग्रस्त हो गया। इस तरह विज्ञान विधि व्यापार और लाभ से संलग्न हो गयी। विज्ञान शिक्षा के लोकव्यापीकरण होने से लाभोन्मादी, भोगोन्मादी, कामोन्मादी शिक्षा पूरे संसार में फैला। इस तरह उन्माद त्रय ''प्रलोभन'' का आधार हुआ और सामरिक तंत्र और कार्यक्रम ''भय'' का आधार हुआ। विज्ञान युग के पहले भी मानव जाति ''भय'' और ''प्रलोभन'' से ग्रसित रहा ही है। भले ही वह पहले स्वर्ग के लिए ''प्रलोभन'' और नर्क के लिए ''भय'' और पाप-पुण्य शब्दों की छाया में पला हो। विज्ञान विधि से पूर्णतया सुविधा संग्रह के लिए ''प्रलोभन'' और युद्ध संग्राम ध्वंस-विध्वंस तथा दंड-विधानों के प्रति ''भय'' प्रभावित हो गया।

उक्त क्रम में हर मानव का प्रकारांतर से, अर्थात् कायिक वाचिक मानसिक कृत कारित अनुमोदित भेदों से, ''अपराध'' में फंसे रहना स्पष्ट हो गया। इसकी गवाही है धरती का बीमार होना, प्रदूषण असहनीय स्थिति में पहुँचना, सामरिक तंत्र द्वारा सर्वनाश के कगार पर पहुँचा देना, द्रोह विद्रोह शोषण युद्ध क्रम में वन खनिज का अनानुपाती शोषण होना। उपरोक्त घटना क्रम की गवाहियों को देखें तो पिछले 100-150 वर्षों में विज्ञान शिक्षा सर्व देश में फैल गयी और विज्ञान मानसिकता द्वारा ही अपराधिक घटनाओं को घटित कराने के लिए ज्यादा से ज्यादा प्रवृत्तियाँ पनपी हैं। इससे यह सकारात्मक तथ्य भी समझ में आता है मानव का स्वीकृति होने पर उसे वास्तविकताओं का शिक्षा विधि से अध्ययन कराया जा सकता है। इस आधार पर ''चेतना विकास मूल्य शिक्षा'' के नाम से ''अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन, मध्यस्थ दर्शन'' को प्रस्तुत किया गया है। इससे कार्य कारण और क्रियाकलाप को सकारात्मक रूप में पहचानने और प्रयोग करने का अवसर उपलब्ध हो गया है।

अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन विधि से कार्य कारण का स्वरूप ''सहअस्तित्व'' रूप में प्रमाणित हुआ है। सहअस्तित्व का नित्य वर्तमान, नित्य प्रभावी और नित्य वैभव होना अध्ययनगम्य हुआ है। सहअस्तित्व स्वयं व्यापक में सम्पूर्ण एक-एक वस्तु डूबा, भीगा, घिरा हुआ क्रियाशील होना अध्ययनगम्य हुआ है। साम्य ऊर्जा रुपी व्यापक वस्तु में सभी एक-एक वस्तुएं चाहे वे छोटे से छोटे हों, या बड़े से बड़े हों संपृक्त होने के आधार पर ऊर्जा संपन्न, बल संपन्न और चुम्बकीय बल संपन्न रहना समझ में आता है। अनंत छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी इकाईयाँ जो क्रियाशील हैं, उनको व्यापक से अलग करने का कोई रास्ता, कोई विधि, कोई प्रक्रिया है ही नहीं। इस कारण से सहअस्तित्व सदा-सदा के लिए अविभाज्य वैभव है, प्रभाव है, वर्तमान है। इस प्रकार मूल रूप में व्यापक वस्तु ही सम्पूर्ण कार्यों का कारण रूप में होना पाया जाता है। ''कार्य'' अनेक रूप में होना भी दृष्टव्य है। जबकि ''कारण'' एक ही

स्वरूप में होना बोध होता है। इस अध्ययन से यह समझ आता है कार्य और कारण का अलग होना, अलग रहना, अलग करना इन तीनों तरीके की परिकल्पना ''भ्रमात्मक'' है। कार्य के बिना कारण का पता चलता नहीं है। कारण के बिना कार्य का होना सम्भव नहीं है। इस निरीक्षण, परीक्षण और सर्वेक्षण पूर्वक पाये जाने वाले निष्कर्ष के आधार पर सुगम, संगीतमय और सार्थक ''विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम और जागृति'' सहज वैभव को हृदयंगम करना, आत्मसात करना और प्रमाणित करना हर व्यक्ति के लिए सम्भावना उदय हो गया है। इससे हर व्यक्ति में समझदारी से ''समाधान'', हर परिवार में समझदारी और श्रम से ''समाधान और समृद्धि'', सर्व मानव अखण्ड समाज रूप में होने से ''समाधान, समृद्धि और अभय'' और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था स्वरूप में होने से ''समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व'' प्रमाणित होता है। सम्पूर्ण मानव जाति के प्रमाणित होने की सम्भावना उदय होने के क्रम में यह लेख ''सूचना'' के रूप में प्रस्तुत है। इन सूचनाओं के आधार पर व्यक्ति अपने सोच विचार को विधिवत संलग्न करने से ऊपर कहे गए ''सुगम, संगीतमय और सार्थक'' अर्थ हर व्यक्ति में साक्षात्कार हो सकता है।

''कार्य कारण'' समझ में आने के बाद ''क्रियाकलाप'' का स्वरूप सहज रूप में समझ में आता है।

अस्तित्व में सम्पूर्ण क्रियाकलाप चार अवस्थाओं के रूप में फैला हुआ है। कार्य कारण संपन्न पदार्थ अवस्था परिणाम अनुषंगी विधि से विकास क्रम में यथा स्थिति, सम्पूर्णता और त्व सहित व्यवस्था विधियों से वैभवित रहना पाया जाता है। इन्हीं पदार्थ अवस्था की विभिन्न वस्तुओं के संयोग वियोग विधि पूर्वक यौगिक क्रिया का प्रगटन, संवर्धन क्रम में प्राण कोषा, प्राण सूत्र और उन प्राण सूत्रों के रचना विधि सम्पन्नता के आधार पर विभिन्न रचनाएँ बीज वृक्ष विधि से आवर्तनशील परम्परा के रूप में होना देखने को मिलता है। यही प्राण कोषायें रचना विधि में विकास पूर्वक जीव शरीर रचना संपन्न किया जाना और उसका वंश अनुशंगीयता विधि से आवर्तनशील होना स्पष्ट हो चुका है। जीव अवस्था में अनेकानेक प्रकार की शरीर रचनाएँ आवर्तनशील होने के उपरांत ही मानव शरीर रचना घटित होना और प्रजनन विधि क्रम में वंशों के रूप में देखने को मिला है। इस को ''नस्ल'' और ''रंग'' के रूप में मानव ने पहचाना।

उक्त विधि से सम्पूर्ण अस्तित्व ''होने'' से और क्रियाकलाप स्वरूप में ''रहने'' से विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति के रूप में अस्तित्व ''वर्तमान'' होना स्पष्ट हुआ। सम्पूर्ण वर्तमान सहअस्तित्व स्वरूपी है। सहअस्तित्व अपने स्वरूप में व्यापक में संपृक्त जड़

चैतन्य प्रकृति है। इस प्रकार कार्य, रूप में होना ही वर्तमान है। इसको समझने वाला मानव ही है। प्रमाणित करने वाला भी केवल मानव ही है।

चारों अवस्थाओं को ''व्यवस्था'' के रूप में पहचानना मानव चेतना विधि से सम्भव हो गया। जीव चेतना विधि से अथवा ईश्वर चेतना विधि से हमे यह समझ में नहीं आया था ''वर्तमान'', ''प्रमाण'' और ''जागृति'' वास्तविक रूप में कैसे होता है, क्यों होता है? 21वीं शताब्दी से ही मानव चेतना स्पष्ट होना शुरू हुई। मानव चेतना विधि से ही अखण्डता और सार्वभौमता स्पष्ट होती है। जीव चेतना विधि से हम व्यक्तिवादी और समुदायवादी चेतना तक ही पहुँच पाते हैं। जीव चेतना वश ही मानव जाति अपने-पराये के चक्कर में आयी। जीव चेतना विधि से ही मानव जाति ने मानवेत्तर प्रकृति को अपने ''भोग'' की वस्तु मान लिया। मानव को धरती पर प्रगट करने के लिए मानवेत्तर प्रकृति सम्पूर्ण प्रकार से मानव के लिए ''अनुकूलता'' को प्रगट किया। मानव प्रगट होने के बाद कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के आधार पर संवेदनशीलता के अर्थ में ''अनुकूलता'' और ''प्रतिकूलता'' को तय करता रहा। भ्रमित मानव अपनी अनुकूलता के लिए विविध प्रकार से शोषण किया और प्रतिकूलता को निर्मित करता रहा। मानव ने यह सब करने को लाभवादी, भोगवादी और कामवादी मानसिकता के अर्थ में आवश्यक माना। इस के फल परिणाम में धरती का बीमार होना हुआ और सार्थक रूप में दूर संचार (दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन) का प्राप्त होना घटित हुआ।

अभी तक कोई ऐसा समुदाय देखने को नहीं मिला जो अपने-पराये की दीवारों से मुक्ति और अपराध मुक्ति दिलाने के प्रस्ताव से संपन्न हो। अपराध मुक्ति और अपने-पराये की दीवारों से मुक्ति न्याय सम्मत, समाधान सम्मत और सत्य सम्मत मानसिकता पूर्वक ही सम्भव है। मध्यस्थ दर्शन के अनुसंधान पूर्वक यह अध्ययनगम्य हो चुकी है। इसका लोकव्यापीकरण होना शेष है। यही जागृति और प्रमाण का साक्षी होगा।

मानव समझदारी पूर्वक ''समाधान संपन्न'' हो सकता है। साथ ही यह भी समझ आता है हर मानव समझदार हो सकता है। यही मुख्य बात है। मानव परम्परा में ही समाधान सहज प्रमाण होना सम्भव है और अब इसकी आवश्यकता बन चुकी है। हर परिवार समझदारी से समाधान और श्रम से समृद्धि संपन्न होना स्वाभाविक है। जीव चेतना में श्रम कोई करता है, वस्तु से संपन्न होने का अधिकार किसी दूसरे का रहता है। यह महान गलत हो गया। इसमें सांत्वना लगाने के लिए ''बौद्धिक श्रम'' और ''भौतिक श्रम'' का काल्पनिक भाषा दिया गया। इसके परिशीलन से पता चलता है बौद्धिकता जीवन सहज प्रगटन है। बौद्धिकता से विचारशीलता पूर्वक मानव परम्परा में ''श्रम'' होना पाया जाता है। यह श्रम ''निपुणता'' और

''कुशलता'' में नियोजित होता है।

जीवन ही ज्ञान, विवेक और विज्ञान को अभिव्यक्त या प्रकाशित करता है। ज्ञान ही विवेक और विज्ञान के रूप में विचार पूर्वक प्रकाशित होता है। ऐसे विचार का स्त्रोत ज्ञान ही है। ज्ञान सहअस्तित्व स्वरूपी है। सहअस्तित्व सहज अस्तित्व में कोई विभाजन रेखा नहीं है क्योंकि सहअस्तित्व नित्य प्रभावी है। इसका भाग-विभाग होता नहीं है। जो कुछ भी एक-एक रूप में दिखता है यह सब सहअस्तित्व सूत्र में सूत्रित है। एक-एक के सहअस्तित्व का सूत्र मूल रूप में व्यापक ही है। व्यापक में ही एक-एक डूबा, भीगा, घिरा है। एक-एक के व्यापक से अलग होने की कोई व्यवस्था नहीं है, न यह अलग होता है। मानव अभी तक जो प्रयोग और यांत्रिक विधियों को अपनाया है, उनमें से ऐसी कोई विधि नहीं है जो वस्तु को व्यापक से बाहर कर दे। मानव को इस तथ्य को हृदयंगम करना ही एक मात्र उपाय है। इस से मानव चेतना उजागर होने, प्रगट होने और व्यवहार में प्रमाणित होने का सर्वशुभ सूत्र है।

मानव ''होने'' के साथ और ''होने'' के स्वरूप में जागृत होता है और प्रमाणित होता है। ''होने'' के प्रति भ्रमित रहना ही विगत में मानव की सारी करतूत के मूल में है। ''होने'' के प्रति भ्रमित रहना ही वर्तमान में मानव की सारी समस्याओं के मूल में है। मानव अपने में, से, के लिए ''होने'' के सम्बन्ध में भ्रमित रहने से ही संसार के साथ धोखाधड़ी हुई, फलस्वरूप मानव अनेक प्रकार की समस्याओं में फंस गया। हर समस्याएं मानव कृत हैं, न कि अस्तित्व सहज। अस्तित्व में कोई समस्या नहीं है। अस्तित्व के लिए कोई समस्या नहीं है। मानव के न रहने के बाद भी अस्तित्व रहता ही है।

अभी इस धरती के मानव तमाम विधा में भ्रमित रहते हुए, तकनीकी विधि से प्राप्त संचार यंत्रों के आधार पर अनेक मानव विहीन धरतियों को पहचान चुका है। अभी भी और धरतियों की खोज चल रही है। इस धरती से ज्यादा, इस धरती के समान, अथवा इस धरती से थोड़ा कम साधनों से संपन्न दूसरी धरती को खोजने की अपेक्षा में इस धरती की वस्तुओं को बरबाद कर रहा है। मानव इस समृद्ध धरती पर सुदूर विगत से अभी तक विधिवत् जीना सीखा नहीं है अपितु अनुकूल रूप में प्रस्तुत इस धरती को प्रतिकूल बनाते हुए शान, जश्न मनाता ही रहा है। इस विश्लेषण से मानव अभी ''कितने पानी में है'', या मानव का ''हैसियत'' अभी क्या है यह स्पष्ट हो जाता है।

मानव ने अपनी इस हैसियत से अपने लिए ही अड़चन पैदा किया है। इससे मानव के धरती पर बने रहने पर प्रश्न-चिह्न लग गया है। मानव द्वारा उपजाई हुई समस्याएं मानव के ही गले की फांसी हो गयी हैं। मानव अपने अस्तित्व के प्रति सशंकित होना शुरू हो गया है। इस

स्थिति का निराकरण ''चेतना विकास मूल्य शिक्षा'' विधि को अपनाना ही एक मात्र उपाय है। इसके लिए प्रस्ताव मानव सम्मुख प्रस्तुत हो चुका है। इसको परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक जाँचते हुए (समाधान के लिए पर्याप्त है या नहीं?) अपनाना ही सभी समुदायों के लिए शुभ-अवसर है।

सर्वशुभ हो!

(अप्रैल 2006, अमरकंटक)

## विज्ञान और मानव भाषा सूत्र

विज्ञान का प्रयोजन मानव चेतना विधि से मानव लक्ष्य और जीवन मूल्य प्रमाणित करने के लिए दिशा निर्धारित करना है।

विज्ञान में ''कालवादी ज्ञान'', ''क्रियावादी ज्ञान'' और ''निर्णयवादी ज्ञान'' के सार्वभौम सिद्धांत और नियमो का बोधगम्य होना आवश्यक है।

निर्णयकारी प्रवृत्ति में मानव भाषा सूत्र जीवित रहने की आवश्यकता है। मानव भाषा सूत्र को सार्वभौम रूप में, अर्थात् धरती पर सभी मानव के स्वीकारने योग्य भाषा को, कारण, गुण, गणित रूप में पहचाना गया है।

कारणात्मक भाषा में हर स्थिति, गति, घटना में निहित ''मूल ज्ञान'' स्पष्ट होता है। जैसे अस्तित्व ''होने'' के रूप में है। मानव संसार, जीव संसार, वनस्पति संसार और पदार्थ संसार ये चारों अवस्थाएं ''होने'' के आधार पर ही मानव में, से, के लिए समझ में आता है। ''नहीं होना'' मानव को समझ में आता नहीं है। ''नहीं होना'' होता ही नहीं है। ''तिरोभाव'' या ''मिट जाने'' का जो कल्पना दिया गया वह मानव परम्परा में प्रमाणित होना बना ही नहीं। इसका कारण यही है ''तिरोभाव'' या ''मिट जाना'' होता ही नहीं है। ''परिवर्तन'' होना पाया जाता है। परिवर्तित रूप अस्तित्व में होता ही है। इसे संगठन विघटन, रचना विरचना, या परिणाम परिवर्तन कहा जा सकता है। परिणाम परिवर्तन की अपनी स्थिति निश्चित है। परिवर्तित सभी वस्तु अपनी स्थिति में होते ही हैं। परिवर्तित स्थिति पूर्व स्थिति से भिन्न होते हुए भी ''होना'' समाप्त नहीं होता। किसी भी स्वरूप में होना, वह भी एक यथा स्थिति होना यह ''सदा-सदा होने'' की गवाही है।

गुणात्मक भाषा से सम, विषम और मध्यस्थ क्रियाकलाप स्पष्ट होता है। उद्‌भव क्रियाकलाप ''सम'' क्रिया के रूप में, प्रलय क्रियाकलाप को ''विषम'' क्रिया के रूप में

पहचाना जाता है। साथ ही, जो कुछ भी उद्भवित रहता है उसको बनाए रखने में जो भी कार्यकलाप है उसी का नाम ''मध्यस्थ'' है। अस्तित्व में चार अवस्थाओं का प्रगटन है। हर अवस्था का उसके वैभव को बनाए रखना मध्यस्थ क्रियाकलाप है।

मध्यस्थ क्रियाकलाप को मानव परम्परा के सन्दर्भ में देखें तो मानव परम्परा में शैशव, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़ और वृद्ध अवस्थाओं के रूप में परिलक्षित है। मानव परम्परा में ''व्यवहार'' इस के साथ सुस्पष्ट होता है। हर मानव संतान जन्म से ही न्याय का याचक होता है, सत्य वक्ता होता है और सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक होता है। मानव संतान का अपने अभिभावकों के साथ ''व्यवहार'' होता ही है। मानव संतान स्वाभाविक रूप में अपने अभिभावकों का अनुसरण अनुकरण करता ही है। इस व्यवहार का ''प्रयोजन'' है अभिभावकों द्वारा संतान में न्याय प्रदायी क्षमता स्थापित हो, सत्य का बोध हो और सही कार्य व्यवहार करना सिखाया जाए। ऐसा करना अभिभावकों का ''दायित्व'' है। इस दायित्व को पूरा करने के लिए अभिभावकों का पहले से उसके ''योग्य'' बने रहना आवश्यक है। इस प्रकार हर मानव सम्बन्ध में, दायित्वों को निर्वाह करने के लिए उसके लिए आवश्यक ज्ञान, विवेक, विज्ञान से संपन्न रहना आवश्यक है।

गणितात्मक भाषा समाधान, समृद्धि पूर्वक जीने की आवश्यकता के आधार पर गणना विधि पूर्वक ''वस्तु मूलक गणित'' को समझने के लिए है। मानव का अकेले में कोई कार्यक्रम नहीं है। अकेले मानव में कोई ''प्रमाण'' नहीं है। अकेले में कोई ''व्यवहार'' होता नहीं है। दो व्यक्ति से अधिक होने पर ही ''परिवार'' कहलाता है। परिवार में होने के बाद समाधान, समृद्धि का वैभव प्रमाणित होना आवश्यक हो जाता है। परिवार की आवश्यकताओं में ''समृद्धि'' से सम्बंधित जितनी भी बात है, उसमें गणित के आधार पर भी बात करना बनता है। वस्तु मूलक गणित मानव उपकारी होना पाया जाता है। मानवेत्तर प्रकृति के साथ मानव जितना भी कार्य करता है वह सर्वाधिक भाग गणित-ग्राही है।

(अप्रैल 2006, अमरकंटक)

## प्रचार माध्यमों की सार्थकता

आज सभी प्रचार माध्यम अपराध गतिविधियों को ज्यादा से ज्यादा प्रचारित किया करता है। प्रचार माध्यम का मूल स्वरूप सही-गलती को चेताने से है, अथवा स्पष्ट करने से है। इसमें से ''गलती'' का प्रचार हुआ लेकिन ''क्या सही है'' और ''क्या होना चाहिए'' इसका प्रचार नहीं हो पाया। इस कारण वश अपराध प्रवृत्तियाँ बुलंद हुई। सही पक्ष का पता नहीं

हो पाया।

किसी घटना को हम ''गलत'' मानते हैं तो उस मानने में ''सही'' की अपेक्षा समाहित ही रहती है। इस बात को हृदयंगम करने से पता लगता है कि प्रचार माध्यम अपनी विश्वसनीयता बनाए रखने के लिए हर ''गलत'' घटित घटना को बढ़ा-चढा कर बताने के स्थान पर, ''सही'' घटनाएं कैसे होना चाहिए इस तथ्य को उजागर करें। इस तरह मानव परम्परा में सुधार होना स्वयं स्फूर्त होगी। इस विधि से शुभ को चाहने वाले सभी प्रचार माध्यम अपनी सार्थकता, पूरकता और उपयोगिता को प्रमाणित कर सकते हैं। अपराधों का प्रचार करने से अपराध बढ़े हैं। धरती का बीमार होना मानव के अपराधों से हुआ है।

अपराध करने वाला व्यक्ति या समुदाय यह मान कर अपराध करता है ''सभी अपराधी हैं'' अथवा ''दूसरे लोग हमसे ज्यादा अपराधी हैं।'' इस मान्यता के साथ अपराध और मजबूत होता जाता है। अपराध करने वाले को सही दिशा, सही कार्य, सही प्रयोजन बोध कराने की स्थिति में अपराध प्रवृत्ति सुधरने की ओर दिशा मिलना स्वाभाविक हो जाती है। इसलिए यह उचित है की पत्र पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन और आज की स्थिति में इन्टरनेट भी सभी दिशाओं में ''सही पक्ष क्या होना चाहिए?'' इसे प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। इसके लिए प्रचार कार्यों में कार्यरत मेधावियों को ''सही पक्ष'' में पारंगत होने की आवश्यकता है। उनको सभी स्थितियों में ''सही'' और ''गलत'' की विभाजन रेखा को परखने की आवश्यकता है।

''सही'' और ''गलत'' की विभाजन रेखा जीव चेतना और मानव चेतना के मध्य में ही होता है। जीव चेतना विधि से कामोन्मादी, भोगोन्मादी और लाभोन्मादी प्रेरणाएं मिल रही हैं जो ''भ्रम'' का द्योतक है। मानव चेतना अपने स्वरूप में जीवन जागृति का द्योतक है। जागृति और भ्रम उजाले और अंधेरे जैसा ही है।

(अप्रैल 2006)

## विरोध पर विजय पाना सम्भव है

आदिकाल से आज तक युद्ध को सर्वजन मानस में आवश्यकता के रूप में स्वीकारा नहीं गया, एक ''मजबूरी'' के रूप में ही स्वीकारा गया। ऐसी मजबूरी के लिए तर्क यह दिया जाता है पड़ोसी देश जब सामरिक तंत्र को तैयार करता है, तब हमको करना ही पड़ेगा। ऐसे उदगार जो पहले तैयार करता है, वह भी देता है। बाद में जो तैयार करता है, वह भी यही तर्क देता है। ऐसे में किसको सही माने? तब यही एक निष्कर्ष निकलता है राज गद्दी में जो बैठने

को व्यक्ति तैयार होता है, उसके मन में सामरिक तंत्र भय और प्रलोभन के आधार पर तैयार हुआ ही रहता है। राज गद्दी पर बैठे हुए आदमी को गद्दी खिसकने का भय बना ही रहता है । इसलिए राज गद्दी में बैठकर पैसे को वितरित करने के ''दाता'' बने रहते हैं और गद्दी बनाए रखने के लिए कितने भी भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार समावेश करने के लिए प्रलोभित रहते हैं। एक निष्कर्ष निकलता है ''राज गद्दी रहेगा तो युद्ध कार्य रहेगा ही।''

इस प्रकार की स्थिति में इससे बचा कैसे जाए? इस पर सोचने के लिए विकल्पात्मक विधि की आवश्यकता हुई, जो अनुसंधान पूर्वक हमारे करतलगत हो गयी।

मानव चेतना विधि से हम यह पाये हैं विरोध का विरोध और विरोध का दमन के स्थान पर ''विरोध पर विजय'' पाना सम्भव है। यह समझदारी सहज रूप में लोकव्यापीकरण होना ही है। इसे पाने के लिए सूत्र रूप में ''चेतना विकास मूल्य शिक्षा'' विधि से पूरे देश में ''विरोध पर विजय'' पाने की मानसिकता को तैयार किया जा सकता है। विरोध पर विजय पाने के लिए ''सर्वतोमुखी समाधान'' ही एक मात्र उपाय है। ''सर्वतोमुखी समाधान'' समझदारी से ही मानव परम्परा में प्रमाणित होता है। इसके लिए सहअस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान इन तीनों में अध्ययनपूर्वक पारंगत होने के उपरांत ही अनुभव मूलक विधि से सर्वतोमुखी समाधान प्रगट करने का अधिकार हर व्यक्ति में होना पाया जाता है।

इस ओर हर शुभ चाहने वाले व्यक्ति को ध्यान देने की आवश्यकता पैदा हो गयी है।

(अप्रैल 2006, अमरकंटक)

## वर्तमान का विखण्डन नहीं किया जा सकता

वर्तमान का तात्पर्य है होना, रहना। होने-रहने में क्रियाशीलता सदा-सदा से स्थिति-गति रूप में, फल परिणाम रूप में वर्तता ही रहता है, अभी भी वर्त रहा है, आगे भी वर्तता रहेगा। इस प्रकार वर्तमान कहीं भी खंडित होना, या खंडित रहना किसी भी विधि से सम्भव नहीं है।

''ऋणात्मक विधि'' से वस्तु के अभावित होने की बात किया जाता है। ऐसे प्रयोगों को सर्वाधिक रूप में गणितीय विधि से संपन्न करना देखने को मिल रहा है। ऋणात्मक विधि से वस्तु स्थानांतरित होती है। कोई एक देश काल में वस्तु जो थी, वह दूसरे देश काल में चली गयी। उदाहरण रूप में: ''10-10 = 0'' ऐसा गणित में लिखा करते हैं। इससे मानव को संदेश रूप में जो स्वीकारने को सूत्र मिलता है ''वस्तु नहीं रहा।'' इस तरह गणितीय विधि जो सच्चाई

को उद्घाटित करने गया था, झूठाई में उलझाते चले गए।

''विखण्डन विधि'' से भी वस्तु और क्रिया के समाप्त होने की कल्पना दी जाती है। विखण्डन क्रम के लिए चाकू, छुरी, तलवार, पिसाई, घुटाई का प्रयोग किया जाता है। इसके बाद संख्यात्मक गणित का सहारा लिया जाता है। इस क्रम में एक वस्तु को हजार टुकड़ा किया, पुन: उसमें से एक टुकड़े को हजार टुकड़ा किया, इस प्रकार करते-करते टुकड़ा विधि से एक टुकड़ा बचा ही रहता है। जिसको गणितीय विधि में ''नगण्य'' मान लेते हैं, अथवा और टुकड़ा करने में दिलचस्पी ख़त्म हो जाता है, अथवा और टुकड़ा करने का आवश्यकता नहीं रहता। ऐसी थकी हुई मानसिकता की स्थिति में ''वस्तु समाप्त हो गयी'' ऐसा गणितीय विधि से स्वीकार लेते हैं। जबकि हर विखण्डन के पहले ''एक'' होना स्वीकारे ही रहते हैं। उसको हजार भाग में विभाजित करने के बाद एक भाग को पुन: विभाजित करना स्वीकारते हैं। शेष 999 भाग यथावत् रखा ही रहता है। इस क्रम को जोड़ने पर पता लगता है मानव भ्रमित करने को ही विखण्डन विधि गणित को अपनाए। विखण्डन विधि गणित को अपनाए। विखण्डन विधि गणित मानव को कुछ भी सकारात्मक वस्तु, उपलब्धि, घटना, अथवा ज्ञान देने में असमर्थ रहा। जबकि गणितीय भाषा को सर्वाधिक सत्य मान करके विज्ञान संसार उदय हुआ था!

''दबाव विधि'' से भी वस्तु और क्रिया के समाप्त होने की कल्पना दी जाती है। इसमें ''यांत्रिक दबाव'' और ''ऊष्मा दबाव'' के भेदों से प्रयोग संपन्न हुए। इन प्रयोगों में बहुत प्रकार के रसायन द्रव्यों के संयोग में ऊष्मा दबाव पैदा करते हुए देखा गया। एक पटाखा से लेकर बन्दूक तक, बन्दूक से लेकर तोप तक, तोप से लेकर आण्विक बम्ब तक विध्वंस क्रियाकलापों को करता हुआ देखा गया। इन सभी क्रम में ऊष्मा विधि से दबाव होना, उस दबाव से वातावरण में ध्वनि से लेकर कुछ न कुछ उपद्रव मचाने के रूप में निरीक्षण परीक्षण करके निर्णय लेते चले गए।

इन सभी विधियों में सर्वाधिक हानिप्रद ऊष्मा तंत्र प्रदूषण विकीरणीय धातुओं के परिष्करण पूर्वक मध्यांश का विखण्डन पूर्वक हुआ। यह सब जो मानव जाति के लिए नकारात्मक है उसका गुण-गायन आए दिन प्रचार माध्यमों द्वारा किया जाता है। इस प्रकार विज्ञान विधा में जो सर्वाधिक सम्मान पाते हैं वह सर्वाधिक विध्वंसकारी, मानव विरोधी और नियति विरोधी हैं। यह सब नाश और अड़चन का कारण बन चुकी है। सामरिक तंत्रों में, सामरिक विचारों में, सामरिक प्रयोगों में संलग्न विज्ञानियों को सर्वाधिक उपयोगी माना जाता है।

हर ईष्ट अनिष्ट घटनाएं वर्तमान में ही घटित होती हैं। इसमें से ईष्ट घटनाएं मानव को स्वीकार होती हैं, अनिष्ट घटनाएं मानव को स्वीकार नहीं होती। हम अपराध के लिए भले ही भय प्रलोभन वश सहमत हो गए हों, पर आज की स्थिति में मानव कुल में जीवित सर्वाधिक लोगों में अपराध अस्वीकृत है। इसलिए विकल्पात्मक विधि को सोचने की आवश्यकता है।

अपराध मुक्ति विकल्पात्मक विधि से ही सम्भव है, परम्परागत विधि से नहीं। भटकाव से मुक्ति पाने के लिए सहअस्तित्ववादी विकल्पात्मक विचार, शास्त्र, शिक्षा, व्यवस्था के प्रति पारंगत होना आवश्यक हो गया है। यह ''सर्वतोमुखी समाधान'' एक सहज मार्ग होना स्पष्ट हो चुका है।

(अप्रैल 2006, अमरकंटक)

## कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का प्रयोजन

मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता है यह सबको पता है। उल्लेखनीय और विचारणीय बात यह है 21वीं सदी तक ''कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का प्रयोजन क्या है?'', इस बात पर कोई मनोविज्ञानी, समाजशास्त्री, अर्थ शास्त्री ध्यान क्यों नहीं दे पाये? यह धर्म नीति और राज्य नीति संसार के विद्वानों के लिए और भी गंभीर रूप में सोचने का मुद्दा है।

मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का प्रयोजन क्या है? इस का सार संक्षेप उत्तर यही है (1) कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता मानव में ''नियति प्रदत्त'' है। सहअस्तित्व में ''प्रगटन विधि'' से मानव परम्परा धरती पर है। (2) मानव में प्रगट कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का ''तृप्ति बिन्दु'' पाना ही इस कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का प्रयोजन है। यही ''मानव लक्ष्य'' भी है।

मानव की परिभाषा है ''मनाकार को साकार करने वाला और मनः स्वस्थता को प्रमाणित करने वाला''। मानव ने अभी तक अपनी परिभाषा का आधा भाग ''मनाकार को साकार करना'' पूरा कर लिया है। इस क्रम में मानव परम्परा ने आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरदर्शन और दूरगमन संबन्धी वस्तुओं को प्राप्त कर लिया। यह मानव की कर्मस्वतंत्रता के फलस्वरूप ही हुआ। कल्पनाशीलता के साथ ही कर्मस्वतंत्रता प्रगट हुई है। मानव अपनी कल्पनाशीलता को कर्मस्वतंत्रता में परिवर्तित करता रहा जिससे उसने अपनी परिभाषा का आधा भाग प्रमाणित कर लिया। लेकिन उक्त वस्तुएं प्राप्त होने के बावजूद मानव का सुखी होना या मनः स्वस्थता प्रमाणित होना नहीं बन पाया। मानव कायिक, वाचिक,

मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित विधियों से जितने भी कर्म करता आया और आगे करने वाला है उन सबके फलन में मानव ''सुखी'' होना चाहता है, या मन: स्वस्थता को प्रमाणित करना चाहता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष में आते हैं कल्पनाशीलता में ही सुखी होने की आशा, अथवा अपेक्षा, अथवा इच्छा समाई है।

आशा, अपेक्षा और इच्छा जीवन सहज प्रक्रिया है। इस के साथ जीवन में स्मृतियाँ प्रभावित रहती ही हैं। हर मानव में विगत से स्मृतियाँ, वर्तमान में प्रमाण और भविष्य के लिए अपेक्षा होना स्पष्ट होता है।''सुख'' प्रमाण स्वरूप में वर्तमान में ही होता है। वर्तमान में आशा, अपेक्षा और इच्छा के तृप्त न होने के फलस्वरूप ही मानव भूत और भविष्य में अपने स्मरण को दौड़ाए रहता है। भूत और भविष्य ''सुख'' का आधार न होने के फलस्वरूप मानव ''मनमानी'' करता है।

मानव की ''मनमानी'' को रोकने के प्रयास करने के लिए दो ध्रुवों में ''भय'' और ''प्रलोभन'' का तंत्र प्रस्तुत हुआ। इसे कुछ इने-गिने लोग ही स्थापित किए। प्रलोभानात्मक तंत्र विभिन्न देश काल और समुदायों में विभिन्न प्रकार से ''धर्म गद्दी'' द्वारा प्रस्तुत हुआ। इसमें रहस्यमयी ईश्वर, अनुकरण न हो सकने वाले महापुरुष, अवतारी पुरूष, ईश्वर के संदेश-वाहक, सिद्ध-पुरुषों को केन्द्र में रख कर तरने-तारने का प्रलोभानात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। साथ ही ''पाप'' के प्रति भय और प्रायश्चित्त का कार्यक्रम दिया गया। इस प्रकार राज्य तंत्र द्वारा सामान्य व्यक्तियों को जान-माल की रक्षा करने का आश्वासन और उसके लिए सीमा सुरक्षा करने का कार्यक्रम रहा। इसके साथ ही राज्य तंत्र का स्पष्ट कार्यक्रम रहा गलती को गलती से रोकना, अपराध को अपराध से रोकना और युद्ध को युद्ध से रोकना। धर्म गद्दी और राज्य गद्दी का तंत्र यह सोचकर आरम्भ हुआ सामान्य व्यक्ति इन तंत्रों की मूल प्रवृत्ति को समझ नहीं पायेगा। 20वीं शताब्दी तक सर्वाधिक मानव इन तंत्रों की कलई को खुलते हुए देख लिया अथवा इन तंत्रों का प्रयोजन क्या है और क्या हो रहा है यह समझने के योग्य हो गया।

मानव अपनी कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के चलते जंगल युग से ग्राम कबीला युग में, ग्राम कबीला युग से राज्य युग में, राज्य युग से लोक तंत्र युग में पहुँच गया। लोकतंत्र में हर मानव, अथवा सर्वाधिक मानव ''नेतृत्व मानसिकता'' के लिए तत्पर रहा। कुछ लोगों को ही नेतृत्व पद मिल सकता है, इसलिए उसके लिए संघर्ष भावी हो गया। इसके साथ लोकतंत्र युग में राज्य युग में राजाओं के सुविधा संग्रह की सूचना सर्व मानव के लिए प्रस्तुत हो गयी। उस आधार पर राजाओं को जो सुविधा संग्रह उपलब्ध था, उससे ज्यादा पाने के लिए

नेतृत्व प्रवृत्तियाँ आंकलित होता हुआ देखा गया।

राज्य युग में आचार्य एक ''आदर्श'' रूप में गण्य होता था। राज गद्दी पर बैठा हुआ राजा अपने को ''आदर्श'' होना स्वीकार ही लेता था। राज्य गद्दी के ''आदर्श'' पूर्णतया सुविधा संग्रह और अय्याशी बदमाशी से भरा रहा। राज्य गद्दी के ढांचे-खांचे में ही जन प्रतिनिधि सर्वाधिक संख्या में उलझा हुआ दिखाई पड़ता है। जन प्रतिनिधि विधि से गण तंत्र प्रणाली राज्य युग के तुलना में ''पवित्र'' होना जनमानस में स्वीकृत रहा। लेकिन आज की स्थिति में जन प्रतिनिधि सर्वाधिक भ्रष्टाचार, अप्रत्याशित धूर्तता पूर्वक सुविधा संग्रह उपार्जित करता हुआ देखने को मिलता है। ''अप्रत्याशित'' से मतलब है जिस समय जनमानस निर्वाचन क्रिया करता है उस समय स्वीकृति रहती है कि जन प्रतिनिधि जन हित में कार्य करेगा। निर्वाचित होने के बाद ''जन हित'' भाषा में ही रह गयी। जन हित के लिए जो मुद्रा तंत्र था, वह जन प्रतिनिधि के द्वारा निक्षेपित होता गया।

इस तरह जिनको सामान्य लोग ''आदर्श'' या ''श्रेष्ठ'' स्वीकारते रहे उनका लक्ष्य केवल ''सुविधा संग्रह'' ही होता हुआ देखा गया। फलत: सभी ज्ञानी, अज्ञानी और विज्ञानी सुविधा संग्रह की ही कतार में हो गए। सर्वाधिक जनमानस जब भ्रष्टाचार के लिए तत्पर हो गया तो मानव के मनमानी के फलस्वरूप धरती बीमार हो गयी। मानव अनेक प्रकार के नए-नए रोगों में ग्रस्त होता गया। यह सब परिस्थितियाँ अत्याधुनिक वर्चस्व का फल परिणाम है। मानव परम्परा अपराध ग्रस्त हो चुकी है। ये परिस्थितयाँ मानव परम्परा के अपराधों के फल परिणाम हैं। 20वीं सदी तक जीव चेतना विधि से जीने के क्रम में मानव परम्परा में सुविधा संग्रह की लिप्सा बढ़ी, जिसके लिए सम्पूर्ण अपराध किए गए।

अपराध मुक्त मानव परम्परा के लिए हर व्यक्ति समाधान संपन्न होना और हर परिवार समाधान, समृद्धि संपन्न होना और उपकार करना आवश्यक है। उसके लिए मानव में ''चेतना विकास'' ही प्रधान मुद्दा है। मानव चेतना में जीवन सहज आशा, अपेक्षा और इच्छा ''वर्तमान'' में ही तृप्त रहती हैं। ''मनमानी'' को रोकने के लिए फिर ''भय'', ''प्रलोभन'' और ''आस्था'' पर आधारित तंत्रों की आवश्यकता नहीं रहती।

''चेतना विकास मूल्य शिक्षा'' का कार्यक्रम पैसे से नहीं है। उसके लिए समझदारी से संपन्न अर्थात् मानव चेतना, देव चेतना संपन्न अध्यापको, गुरुजनों, आचार्यों की आवश्यकता है। मानव चेतना में पारंगत हर मानव संबंधों को ''प्रयोजनों के आधार पर'' पहचानता है और उसके निर्वाह करने के क्रम में कृतज्ञता, गौरव, श्रृद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह जैसे मूल्यों को प्रमाणित करता है। यही ''न्याय परम्परा'' का मतलब है। इन उपलब्धियों

के आधार पर ''अखण्ड समाज'' और ''सार्वभौम व्यवस्था'' के साथ सर्व मानव का ''निरंतर सुखी'' होना बनता है। यही मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का ''प्रयोजन'' है।

जीवन में दृष्टा पद प्रतिष्ठा और जागृति सहज प्रमाणों का मानव परम्परा में होना आवश्यक हो गया है। क्योंकि मानव परम्परा अपराधों से मुक्त होना चाहता है और मानव परम्परा के अपराधों से मुक्त होने की आवश्यकता है।

(अप्रैल 2006, अमरकंटक)

## कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का स्त्रोत क्या है? क्यों है? और कैसा है?

कल्पनाशीलता के साथ कर्मस्वतंत्रता हर नर-नारी में, से, के लिए ''स्वाभाविक रूप'' में है। ''स्वाभाविक'' का मतलब ''नियति सहजता'' से है। ''नियति सहजता'' का मतलब सहअस्तित्व में प्रगटन क्रम में जो विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति है उससे मानव परम्परा धरती पर हुई। मानव परम्परा में शरीर रचना की मौलिकता में यह पाया गया कि जीवन सहज कल्पनाशीलता शरीर और जीवन के संयुक्त स्वरूप में प्रगट होता हुआ देखने को मिलता है। मानव परम्परा शरीर और जीवन के संयुक्त साकार रूप में प्रगट होता हुआ देखने को मिलता है। हर नर-नारी में, से, के लिए जीवन का स्वरूप, जीवन का कार्य, जीवन का प्रयोजन समान होना अध्ययनगम्य है। यह अध्ययन ''अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन'' क्रम में प्रगट और प्रमाणित है।

मानव अपने कल्पनाशीलता को कर्मस्वतंत्रता में परिवर्तित करता रहता है। कर्मस्वतंत्रता मानव परम्परा में प्रमाणित होती है। मानव चेतना पूर्वक जीवन सहज कल्पनाशीलता और मानव सहज कर्मस्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु स्पष्ट होता है। जीवन सहज कल्पनाशीलता का तृप्ति बिन्दु जीवन लक्ष्य सुख, शान्ति, संतोष, आनंद के स्वरूप में है। मानव सहज कर्मस्वतंत्रता का तृप्ति बिन्दु मानव लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व के स्वरूप में है। मानव लक्ष्य प्रमाणित होता है तो जीवन लक्ष्य भी प्रमाणित होता है। जीवन लक्ष्य प्रमाणित होता है तो मानव लक्ष्य भी प्रमाणित होता है। जीवन लक्ष्य मानव परम्परा में प्रमाणित होना अवश्यम्भावी है, क्योंकि मानव परम्परा जीव चेतना वश अनेक प्रकार से अपराध करने में प्रवृत्त हो चुका है। इसकी गवाही धरती के बीमार होने के रूप में प्रस्तुत है। जीवन सहज जागृति मानव परम्परा में ही प्रमाणित होती है। जिसके फलन में मानव का चारों अवस्थाओं के साथ संतुलन पूर्वक जीना, न्याय, धर्म, सत्य का प्रमाणित हो पाना, मानव परम्परा में, से, के लिए एक महिमा संपन्न

वैभव है। महिमा सम्पन्नता का तात्पर्य ''अपराध मुक्त परम्परा'' से है। यह सब कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के तृप्ति बिन्दु को पाने के क्रम में शोध और अनुसंधान पूर्वक अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुआ।

इस प्रकार कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता का स्त्रोत समझने के साथ-साथ इनकी ''सार्थकता'' भी समझ में आया। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता की सार्थकता मानव चेतना पूर्वक मन:स्वस्थता को प्रमाणित करने में है। मन: स्वस्थता अभ्युदय या सर्वतोमुखी समाधान के स्वरूप में है। इसके फलन में सम्पूर्ण मानव जाति को ''अखण्ड समाज'' के रूप में पहचानना बनता है। इस विधि से ''सार्वभौम व्यवस्था'' का स्वरूप स्पष्ट है। यह इस बात का उत्तर है कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता ''क्यों'' है? ''अखण्ड समाज'' और ''सार्वभौम व्यवस्था'' को प्रमाणित करने के लिए कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता है।

परिवार में हर सदस्य का समझदार होना, फलस्वरूप समाधान संपन्न होना और श्रम पूर्वक समृद्धि संपन्न होना आवश्यक है। समाधान, समृद्धि पूर्वक ही हर परिवार ''उपकार प्रवृत्ति'' में होना पाया जाता है। इस प्रकार ''सार्वभौम व्यवस्था'' का दश सोपानीय स्वरूप निकलता है। इस तरह ''कैसा'' प्रश्न का उत्तर मिलता है। सार्वभौम व्यवस्था के दश सोपानीय स्वरूप को हम अगले प्रसंग में देखेंगे।

(अप्रैल 2006 अमरकंटक)

## सार्वभौम व्यवस्था

आज मेरे वक्तव्य का मुद्दा है ''सार्वभौम व्यवस्था''। सार्वभौम व्यवस्था कैसे होती है? पिछले तीन दिनों में आपके सम्मुख प्रस्ताव रखा है कि 'विकल्प' स्वरूप में 'समझदारी' से संपन्न होने की आवश्यकता है। 'समझदारी' से संपन्न होने के बाद 'प्रमाणित' करने की आवश्यकता है। यह मानव के सामने 'आवश्यकता' के स्वरूप में रखा हुआ है। सन् 2000 तक ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी इस धरती पर जो कुछ भी सोचा, निर्णय लिया, किया उसके फल परिणाम में यह धरती बीमार होते हुए देखने को मिला। अपना पराया की दूरियाँ बढ़ते हुए देखने को मिला। देशों की सीमाओं पर विभीषिकाएँ बढ़ता हुआ देखने को मिला। इन सब को देखने पर मानव जाति में सोचने का मुद्दा उभरा ''हम सही कर रहे हैं, या गलत कर रहे हैं?''

उसके उत्तर में विकल्पात्मक स्वरूप में ''समझदारी'' का यह प्रस्ताव है। समझदारी को अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान और मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान के संयुक्त रूप में

अध्ययनगम्य कराने का व्यवस्था दिया। इसको अध्ययन करने वाले आज लगभग 2000 लोग तो हो चुके हैं। अब यदि आपकी इच्छा हो तो आप भी अध्ययन कर सकते हैं। यह आपको सूचना देना चाहा।

इस प्रकार यदि अध्ययन होता है तो मानव का ''मानव चेतना'' पूर्वक जीना बनता है। अभी तक मानव जाति ''जीव चेतना'' में जिया है यह समीक्षित हुआ। जीव चेतना में जीते हुए मानव ने जीवों से अच्छा जीने का प्रयत्न किया। इन्हीं प्रयत्नों के फलन में यह धरती ही बीमार हो गयी जिससे पुनर्विचार की आवश्यकता बन गयी। पुनर्विचार के लिए विकल्पात्मक रूप में ''समझदारी'' का प्रस्ताव है।

अस्तित्व दर्शन ज्ञान, जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान इन तीनों को छोड़ कर हम कभी भी ''समझदार'' नहीं होंगे। अभी भी नहीं, करोड़ों वर्ष के बाद भी नहीं। इस ज्ञान को परीक्षण करने और शोध करने का अधिकार हर व्यक्ति के पास रखा है। यह मैं अपने अनुभव से बता रहा हूँ।

ऐसे समझदारी से संपन्न होने पर हमको ''सर्वतोमुखी समाधान'' हासिल होता है। इस बात को मैंने अनुभव किया है, जिया है, प्रमाणित किया है। सर्वतोमुखी समाधान को मैं जी कर देखा हूँ, प्रमाणित किया हूँ इससे ''सुख'' मिलता है। प्रकारांतर से, आज पैदा हुआ आदमी, कल मरने वाला आदमी सभी सुखी होना चाहते हैं। मानव चेतना से संपन्न होने पर हरेक व्यक्ति के पास समाधान उपलब्ध होगा। समाधान पूर्वक हम सुखी होते हैं। समस्या पूर्वक दुखी होते हैं। ''सर्वतोमुखी समाधान'' यदि आप हासिल करना चाहते हैं तो उसके लिए ''मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद'' अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया है। उसको आप अध्ययन कर सकते हैं।

सहअस्तित्व में प्रगटन विधि पूर्वक मानव शरीर रचना धरती पर प्रगट हुई। इस प्रगटन में किसी भी मानव का कोई भी हाथ नहीं है। मानव शरीर रचना को प्रकृति स्वयं स्फूर्त विधि से प्रस्तुत कर दिया। जागृति को प्रमाणित करने योग्य शरीर धरती पर बन चुकी है।

समझदारी के बिना हम समाधान संपन्न होंगे नहीं। मानव जाति समाधान संपन्न होने के बाद न सीमा सुरक्षा रहेगी, न अपने-पराये की दूरियाँ रहेगी, न ''भ्रम'' रहेगा।

''भ्रम'' का स्वरूप क्या है? जीवन ही शरीर को जीवंत बना कर रखता है। जीवंत बनाने के फलस्वरूप शरीर में संवेदनाएं व्यक्त होती हैं। संवेदनाओं को देख कर जीवन ही

भ्रमित होता है और शरीर को जीवन मान बैठता है। यही भ्रम है। यह भ्रम रहने तक जीवन शरीर के मरने और जीने को अपने साथ जोड़ लेता है। शरीर को जीवन मानना ही भ्रम का मूल स्वरूप है।

विकल्पात्मक मध्यस्थ दर्शन का अध्ययन करने से मानव ''सर्वतोमुखी समाधान'' संपन्न होता है। सभी विधा में समाधान प्रस्तुत करने योग्य होता है। अध्ययन के बारे में बताया हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। अध्ययनपूर्वक वस्तु साक्षात्कार होना, बोध होना, अनुभव होना। अनुभव होने के बाद प्रमाण होना। इस तरह मानव अस्तित्व में अध्ययन कर सकता है, अनुभव कर सकता है और अनुभव को जी कर प्रमाणित कर सकता है।

सर्व मानव सुख चाहते ही हैं। सुख पूर्वक जीना चाहते ही हैं। वे एक शरीर यात्रा में ही कैसे समझदार हों, समाधानित हों, प्रमाणित हों उस चौखट में पूरे अध्ययन की व्यवस्था है। एक ही शरीर यात्रा में! अनेक शरीर यात्राओं की बात नहीं है। एक ही शरीर यात्रा में ''सम्पूर्ण बात'' का अध्ययन कर सकते हैं।

''सम्पूर्ण बात'' है सहअस्तित्व स्वरूप में अस्तित्व का अध्ययन हो जाए और स्वयं का अध्ययन हो जाए। तब सम्पूर्ण अध्ययन हुआ। इसमें से एक भी भाग को छोड़ दें तो सम्पूर्ण अध्ययन नहीं हुआ।

अभी जो शिक्षा प्रचलित है वह केवल सुविधा संग्रह करने के लिए है, अपराध करने के लिए है, दूसरों को बुद्धू बनाने के लिए है। अभी मानव जाति के पास जो भी विद्वता है वह इन तीन जगह में ले जाने के लिए ही कामयाब है। अभी तक मानव जाति के पास जो भी विद्वता है वह समाधान प्रस्तुत करने में असमर्थ है। न्याय प्रस्तुत करने में असमर्थ है। सत्य प्रस्तुत करने में असमर्थ है।

अध्ययन कराने को लेकर हम प्रतिज्ञा किए हैं कि ''ज्ञान व्यापार'' और ''धर्म व्यापार'' हम नहीं करेंगे। अध्ययन के लिए कोई दक्षिणा उगाहने की बात नहीं है। अध्ययन के लिए कोई शुल्क नहीं रखा है। ज्ञान जीवन सहज अपेक्षा है। ज्ञान को टुकड़ा करके बेचा नहीं जा सकता। अभी जो ''बुद्धि-जीवी'' कहलाये जाते हैं वे अपने ज्ञान को ''बेच'' रहे हैं। उनसे पूछने पर ''ज्ञान को कैसे बेचोगे? 'ज्ञान' को तुम क्या जानते हो?'' उनसे कोई उत्तर मिलता नहीं है। इस बात का कोई उत्तर देने वाला हो तो मैं उसको फूल माला पहना करके सुनूंगा! ज्ञान को ''बेचने की विधि'' को मुझे बताने वाला आज तक मिला नहीं है। अभी ज्ञान

व्यापार और धर्म व्यापार में कितने लोग लगे हैं, उसका आंकडा रखा ही है। सारी दरिद्रता, सारी अपराध प्रवृत्ति धर्म व्यापार और ज्ञान व्यापार से ही है।

समझदार होने के बाद हम धर्म व्यापार करेंगे नहीं, ज्ञान व्यापार करेंगे नहीं। मैं यदि ''धर्म'' को समझता हूँ तो मैं अपने बच्चे को उसके योग्य बनाऊँ, अपने अड़ोस-पड़ोस के व्यक्तियों को उसके योग्य बनाऊँ, अपने संपर्क में आने वाले व्यक्तियों को उसके योग्य बनाऊँ यही बनता है। मैं वही कर रहा हूँ। मेरे संपर्क में आने वाले व्यक्तियों के बीच मैं काम कर रहा हूँ। व्यापार से मुक्त धर्म और ज्ञान का बोध कराने की मैंने व्यवस्था कर दिया।

समझदार व्यक्ति व्यवस्था में जीता है। समझदार व्यक्ति सर्वप्रथम परिवार में समाधान, समृद्धि पूर्वक व्यवस्था में जीता है। ऐसे परिवार में नर-नारियों में समानता रहता है। इस प्रकार परिवार में सुख, शान्ति पूर्वक जीना बनता है। सभी परिवार ऐसे सुख, शान्ति पूर्वक जीने वाले होने पर ''अखण्ड समाज'' होता है। सभी परिवार समाधान, समृद्धि संपन्न होने पर अखण्ड समाज का गठन होता है। उससे कम में अखण्ड समाज होने वाला नहीं है। ऐसे समाज में हम अभय संपन्न होते हैं। भय मुक्त होते हैं। अभी इसके अभाव में कौन क्या कर देगा यह आशंका बना ही रहता है। मानव जाति का सारा इतिहास इस बात की गवाही है। सभी बातें आपके सम्मुख है।

अभय संपन्न होने के बाद हम ''सार्वभौम व्यवस्था'' के पक्ष में जाते हैं। चारों अवस्थाओं का परस्पर संतुलन ही सार्वभौम व्यवस्था है। इसमें नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीना प्रमाणित होता है। इन प्रमाणों के साथ मानव सुख, शान्ति, संतोष, आनंद पूर्वक जीने की स्थिति में आता है। सुख, शान्ति, संतोष और आनंद जीवन सहज अपेक्षा है।

समाधान, समृद्धि, अभय और सहअस्तित्व ये चार स्तर हैं।

(1) व्यक्ति के स्तर पर समाधान।

(2) परिवार के स्तर पर समाधान, समृद्धि।

(3) समाज के स्तर पर समाधान, समृद्धि अभय।

(4) समग्र व्यवस्था के स्तर पर समाधान, समृद्धि अभय सहअस्तित्व।

समाधानित होने के लिए ''अध्ययन'' है। अध्ययन कराने का शुरुआत मैंने किया है।

''सार्वभौम व्यवस्था'' हो जाने पर क्या होगा?

सार्वभौम व्यवस्था में हम ''सत्य'' को प्रमाणित करते हैं। सहअस्तित्व परम सत्य है। सहअस्तित्व को हम व्यवस्था में प्रमाणित करते हैं। इस तरह मानव प्रकृति सहज विधि से, अस्तित्व सहज विधि से, सहअस्तित्व सहज विधि से जीता है। इसको हर व्यक्ति सोच सकता है, समझ सकता है, जी सकता है, प्रमाणों को प्रस्तुत कर सकता है।

सार्वभौम व्यवस्था में हम पाँच आयामों में बहुत अच्छी तरह जी पाते हैं। ''सार्वभौम व्यवस्था'' में मानव के जीने के पाँच आयाम हैं:

(1) शिक्षा-संस्कार

(2) न्याय-सुरक्षा

(3) स्वास्थ्य-संयम

(4) उत्पादन-कार्य

(5) विनिमय-कोष

शिक्षा-संस्कार से मानव परम्परा में ''समाधान'' उपलब्ध होगा।

इससे सबके लिए न्याय सुलभता हो ही जायेगी। समझदार परिवार में संबंधों में न्याय होता ही है।

समझदारी के बाद न्याय में जीना होता है।

भ्रमित रहते तक न्याय में जीना होता नहीं है।

समझदारी के बाद संबंधों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन और उभय तृप्ति होने पर न्याय होता है।

''न्याय'' का हम अध्ययन कराते हैं। जबकि इस धरती पर जितने भी न्यायपालिका हैं उनमें न्याय का अता-पता नहीं है। सभी देशों के संविधानों के तीन ही कायदे हैं गलती को गलती से रोको, अपराध को अपराध से रोको, युद्ध को युद्ध से रोको। इन तीन कायदों के रहते उनसे न्याय कहाँ मिलेगा? इन तीन कायदों के अलावा ये कोर्ट ''जन सुविधा'' की बात करते हैं। सुविधा का कोई तृप्ति बिन्दु ही नहीं है। सबके लिए सुविधा संग्रह की चाहत को पूरा

करने की सम्भावना ही नहीं है।

न्याय-अन्याय की बात मानव परस्परता में ही होती है। न्याय की अपेक्षा मानव परस्परता में ही होती है। न्याय सुलभता का आधार है ''संबंधों की पहचान''। संबंधों के नाम सबको विदित हैं। सभी भाषाओँ में संबंधों के नाम तो हैं। लेकिन संबंधों के प्रयोजनों का ज्ञान नहीं है। संबंधों के प्रयोजनों को निर्वाह करने का अधिकार बना नहीं है। जैसे ''माता'', ''पिता'' नाम सुदूर विगत से भाषा में हैं। किंतु माता-पिता के साथ न्याय कैसे होगा, क्यों होगा, क्या प्रयोजन होगा इसके बारे में कोई बात न शिक्षा में हैं, न व्यवस्था में है, न आचरण में है। अभी जितने भी समुदाय परम्पराएं हैं किसी में भी नहीं है। इस कारण ''अनुसंधान'' करना पड़ा। अनुसंधान पूर्वक प्राप्त वस्तु को विकल्पात्मक स्वरूप में रखना पड़ा। उसको अभ्यास में लाने के लिए उपक्रम करना पड़ा।

उसी ''उपक्रम'' में यह सम्मलेन भी है। अपनी-अपनी जगह में हम सब शुभ के लिए कार्य कर रहे हैं। हम शुभ के लिए क्या कार्य किए, आप क्या कार्य किए इसे सम्मेलन में परस्पर सुन कर हम उत्साहित होते हैं। अगले वर्ष पिछले वर्ष से ज्यादा शुभ के लिए कार्य करते हैं। इस ढंग से होते-होते हम यहाँ तक पहुँचे हैं।

यह जो इतनी बात आपको बताया, उसमें कुछ पूछना हो तो आपका स्वागत है।
(4 अक्टूबर 2009, हैदराबाद)

## सहअस्तित्व नित्य वर्तमान, सहअस्तित्व नित्य प्रभावी

आज यहाँ मुझे ''सहअस्तित्व नित्य वर्तमान सहअस्तित्व नित्य प्रभावी'' इस मुद्दे पर अपने अनुभव को प्रस्तुत करने को कहा गया है।

सहअस्तित्व में हम सब हैं। सब कुछ अणु, परमाणु, तृण, काष्ठ सभी का सभी सहअस्तित्व में है। इसको मैंने देखा है, समझा है, जिया है। इन तीनों भागों में किसी को भी शंका हो तो उसको आप मुझसे पूछ सकते हैं, समझ सकते हैं।

''सहअस्तित्व नित्य वर्तमान है'' इसको मैंने देखा। अस्तित्व में एक व्यापक वस्तु है। व्यापक वस्तु जड़ प्रकृति के लिए साम्य ऊर्जा स्वरूप में होना समझा। व्यापक वस्तु को ही मानव में ''ज्ञान'' स्वरूप में समझा। साम्य ऊर्जा सभी भौतिक रासायनिक वस्तुओं को प्राप्त है। इसका प्रमाण है सभी भौतिक रासायनिक वस्तुएं क्रियाशील हैं। साम्य ऊर्जा में भीगे रहने, संपृक्त रहने के आधार पर हर वस्तु ऊर्जा संपन्न है। उसके बाद जीव संसार में यह ऊर्जा ''जीने

की आशा'' के स्वरूप में प्राप्त है। उसके बाद मानव में यह ऊर्जा ''कल्पनाशीलता'' के स्वरूप में प्राप्त है।

मानव में कल्पनाशील होने के आधार पर ''ज्ञानशील'' होने का व्यवस्था बना हुआ है। हर मानव में कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता वर्तमान है। कल्पनाशीलता के प्रयोग से ही हम ''तदाकार तद्रूप विधि'' से ज्ञान संपन्न होते हैं। ज्ञान संपन्न होने का विधि यही है। आज तक जितने भी व्यक्ति ज्ञान संपन्न हुए हैं, इस विधि से हुए हैं। आगे ज्ञान संपन्न होंगे तो भी इस विधि से होंगे। ज्ञान संपन्न होने का अवसर इस तदाकार तद्रूप विधि से है।

सहअस्तित्व को मैंने ''नित्य प्रभावी'' स्वरूप में देखा। ''नित्य प्रभावी'' का मतलब है नित्य प्रगटनशील! सहअस्तित्व नित्य प्रगट होता ही रहता है। सहअस्तित्व कब तक प्रगट होता है? इसका उत्तर है जब तक सहअस्तित्व अपने प्रतिरूप को प्रगट न कर दे! सहअस्तित्व का प्रतिरूप होने का मतलब है अस्तित्व में प्रमाणित हो जाना। सहअस्तित्व प्रगटनशील होने का प्रयोजन है सहअस्तित्व प्रमाणित हो जाए। इतनी ही बात है। मूल सिद्धांत इतना ही है। इस आधार पर सहअस्तित्व के नित्य प्रगटनशील होने का प्रयोजन मुझको समझ में आया। मानव जागृत होने पर सहअस्तित्व का प्रतिरूप है। सहअस्तित्व ज्ञान को जी कर प्रमाणित करने वाला केवल मानव ही है।

सहअस्तित्व ज्ञान में ही ''जीवन ज्ञान'' समाहित है। जीवन एक गठनपूर्ण परमाणु है। जीवन में दस क्रियाएं होती हैं। जिनमें से मानव भ्रमवश साढ़े चार क्रिया में जीता है। शेष साढ़े पाँच क्रियाएं सुप्त रहते हैं। उन साढ़े पाँच क्रियाओं को व्यक्त करना ही ''जागृति'' है। साढ़े चार क्रिया में जीना ही ''भ्रम'' है। ऐसा मुझको समझ में आया।

समाधान, समृद्धि पूर्वक जीने से सुविधा संग्रह की प्रवृत्तियाँ विलय हो जाती हैं। इसको मैंने जी कर देखा है। मेरे पास संग्रह नहीं है लेकिन मैं समृद्ध हूँ। मैं समृद्धि पूर्वक जीता हूँ, अपने बलबूते पर मैं कहीं भी जाता हूँ, अपना काम पूरा करता हूँ। मेरी सारी समृद्धि की वस्तुएं शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति के लिए हैं। समृद्धि के लिए वस्तुओं का उत्पादन आवश्यक है। ये वस्तुएं सामान्याकंक्षा (आहार, आवास, अलंकार) और महत्वाकांक्षा (दूरश्रवण, दूरदर्शन और दूरगमन) संबंधी होती हैं। इसमें से आहार, आवास, अलंकार संबन्धी वस्तुएं शरीर पोषण और संरक्षण के अर्थ में हैं। समाज गति के लिए दूरश्रवण, दूरदर्शन और दूरगमन संबन्धित वस्तुओं का उपयोग किया जा सकता है। आहार, आवास, अलंकार संबन्धी वस्तुओं के उत्पादन करने में मैंने परिश्रम किया हुआ है। दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन संबन्धी वस्तुओं के उत्पादन को लेकर परिश्रम करने के लिए आप आगे परीक्षण कर सकते हैं।

सहअस्तित्व में जीना = समुदाय चेतना से छूट कर मानव चेतना में परिवर्तित हो कर जीना। इसे ''गुणात्मक परिवर्तन'' कहा।

व्यक्तिवादी चेतना का हसरत है ''भोग''!

समुदायवादी चेतना का हसरत है ''झगड़ा'' या संघर्ष!

संबंधों की पहचान

सहअस्तित्व में जीते समय संबंधों को पहचानने की बात होती है। मानव का मानव के साथ सम्बन्ध और मानव का मानवेत्तर प्रकृति के साथ सम्बन्ध इन दो तरह से संबंधों को पहचाना। मानवेत्तर प्रकृति के साथ सम्बन्ध को ''उपयोगिता'' और ''कला'' (सुन्दरता) मूल्य के आधार पर पहचानते हैं। मानव मानव सम्बन्ध को जीवन मूल्य (सुख, शान्ति, संतोष, आनंद) के आधार पर, मानव मूल्य (धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा) के आधार पर, स्थापित मूल्य (कृतज्ञता, गौरव, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, सम्मान, स्नेह, ममता, वात्सल्य) के आधार पर पहचानते हैं। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए हम सात मानव संबंधों से पहचानते हैं। सातों संबंधों को इस प्रकार पहचान कर हम ''समाज की रचना'' को पहचानते हैं। इस पहचान के लिए यदि हम सटीक स्वरूप में अध्ययन करते हैं तो हम भागीदारी कर सकते हैं।

संबंधों को पहचानने का प्रयोजन है सहअस्तित्व में जीना। सहअस्तित्व में जीने का अर्थ है ''जीने देना, जीना''। यह आवश्यक है या नहीं आप सोचिये। हर व्यक्ति इस पर सोच सकता है, शोध कर सकता है। ''जीने देना, जीना'' विधि से हम अपराध मुक्त हो सकते हैं इस बात को मैंने अनुभव किया। यदि ''जीने देना, जीना'' में हस्तक्षेप करते हैं तो हिंसा के अलावा और कुछ होता नहीं है।

''सम्बन्ध'' का परिभाषा दिया पूर्णता के अर्थ में प्रतिज्ञा। पूर्णता के अर्थ में निर्वाह करने का नाम है सम्बन्ध! पूर्णता क्या है ''क्रिया पूर्णता'' और ''आचरण पूर्णता''। इन दो पूर्णताओं की बात कही। इसके पहले गठनपूर्णता पहले से जीवन में है ही। गठनपूर्णता के आधार पर ही जीवन ''अमर'' है। जीवन परमाणु में से कोई प्रस्थापन-विस्थापन होता नहीं है। परमाणु गठनपूर्ण होने पर ''जीवन पद'' में संक्रमित होता है।

क्रिया पूर्णता होने पर मानव का सहअस्तित्व में जीना बनता है। जीने देकर जीना बनता है। इस तरह मानवेत्तर प्रकृति के साथ नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक जीना बनता है। मानव

के साथ न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीना बनता है। इन 6 आयामों में जीने से हम ''सामाजिक'' हो पाते हैं। इससे कम में कोई सामाजिक होता ही नहीं है।

इस प्रकार हम ''सहअस्तित्व नित्य प्रभावी और सहअस्तित्व नित्य वर्तमान'' के बारे में स्पष्ट होते हैं। इस स्पष्टता के अभाव में व्यक्तिवाद, समुदायवाद ही रहेगा। व्यक्तिवाद और समुदायवाद भोग के लिए, संघर्ष के लिए और युद्ध के लिए ही है। इससे ज्यादा इनसे कुछ होता नहीं है। संघर्ष के साथ शोषण निश्चित है। आज जैसे एक देश दूसरे देश का शोषण करने का सोचता है, एक परिवार दूसरे परिवार का शोषण करने का सोचता है, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण करने का सोचता है वह सब इस समझ से हर व्यक्ति में समाप्त हो जाता है। इस समझ के साथ ''समाधान, समृद्धि'' पूर्वक जीना बन जाता है।

समझदारी से समाधान मिलता है।

श्रम से समृद्धि मिलता है।

समाधान, समृद्धि पूर्वक जीने के क्रम में हम व्यवस्था में जी पाते हैं।

सहअस्तित्व में ही हम ''अखण्डता'' और ''सार्वभौमता'' को अनुभव करते हैं।

अखण्डता को अनुभव करने का मतलब है ''सर्व मानव एक ही जाति है, सर्व मानव एक ही धर्मी है'' इसको अनुभव करना। जीवन में धर्म का व्यवस्था है। शरीर में रचना का व्यवस्था है।

जीवन के आधार पर ''धर्म'' की पहचान है। सर्व मानव का एक ही धर्म है। मानव धर्म सुख है। सुख की चाहत से मानव को अलग नहीं किया जा सकता। जीवन में जागृति पूर्वक सुख होता है।

शरीर रचना के आधार पर ''जाति'' की पहचान है। सर्व मानव एक ही जाति है। सभी मानवों में चाहे वे गोरे हों, काले हों, भूरे हों सभी में शरीर रचना की वस्तुएं एक ही हैं। खून की प्रजातियाँ एक ही हैं। हड्डियों की रचना एक ही है। मांस पेशियों की रचना एक सी हैं। रसों की व्यवस्था एक सी है। इन सब आधारों पर हम मानव को ''एक जाति'' के रूप में पहचान सकते हैं।

मानव के आहार, विहार और व्यवहार को सुसंगत स्वरूप को इस तरह पहचाना जा सकता है, फिर जिया जा सकता है। इससे पहले आदर्शवाद और भौतिकवाद द्वारा मानव का

अध्ययन नहीं हो पाया था। मानव का अध्ययन न हो पाने के कारण मानव मनमानी विधि से जीता रहा। मनमानी विधि से जीते हुए अपने संरक्षण के लिए समुदाय रचना आवश्यक हो गयी। इस ढंग से हम फंस गए। सभी अपराधों को ''विधि'' मान लिए। अंततोगत्वा धरती बीमार होने पर हम पुनर्विचार के लिए बाध्य हो गए हैं।

''सार्वभौमता'' से आशय है चारों अवस्थाओं में संतुलन।

पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था और ज्ञान अवस्था में यदि निरंतर संतुलन बना रहता है तो वह ''सार्वभौमता'' है। यदि इनमें संतुलन बना नहीं रहता है तो वह व्यवस्था नहीं है। यह आपको स्वीकार होता है या नहीं मैं नहीं कह सकता। यह समझ में आता है तो यह मानव को स्वीकार होता है संतुलन के लिए मानव को नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक ही जीना पड़ेगा। मानवेत्तर प्रकृति का ''त्व सहित व्यवस्था'' का स्वरूप जो बना हुआ है, वह मानव ने नहीं बनाया है, वह सहअस्तित्व स्वयं प्रगटनशील होने की विधि से बना हुआ है। मानव के नियम नियंत्रण, संतुलन, विधि से जीने से मानवेत्तर प्रकृति संतुलित रहता है। मानव के न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक जीने से मानव प्रकृति संतुलित रहता है। ऐसी सार्वभौमता की आवश्यकता है या नहीं इसको हमें देखना होगा। इसके बाद इस प्रस्ताव के अध्ययन/शोध पूर्वक हम ''उपकार'' करने की स्थिति में आ जाते हैं।

मानव के सहअस्तित्व में जीने के लिए ''मानसिकता'' में परिवर्तन एक मात्र आशा है। सहअस्तित्व में जीना केवल ''कार्य'' में परिवर्तन पूर्वक नहीं है। कोई यंत्र सहअस्तित्व को प्रमाणित नहीं करेगा। सहअस्तित्व को मानव ही जागृति पूर्वक प्रमाणित कर सकता है।

सहअस्तित्व में जीना नितांत आवश्यक है। सहअस्तित्व में जीने के लिए पूरा समझना आवश्यक है। पूरा समझने की वस्तु सहअस्तित्व ही है। सहअस्तित्व में ही जीवन है। सहअस्तित्व में ही मानवीयतापूर्ण आचरण है। सहअस्तित्व में ही विवेक है। सहअस्तित्व में ही विज्ञान है। सहअस्तित्व को छोड़ कर हम कुछ भी सोच नहीं सकते।

यह सब मुझसे सुनने के बाद आपको जो कोई भी शंका हो, उसको आप मुझसे पूछ सकते हैं।

**प्रश्नः मानव ''सहअस्तित्व का प्रतिरूप'' हो जाए इसका क्या अर्थ है?**

**उत्तरः** ''सहअस्तित्व नित्य वर्तमान है'' यह ज्ञान होने पर मानव सहअस्तित्व में जी सकता है। वही ''सहअस्तित्व का प्रतिरूप'' का अर्थ है। सहअस्तित्व ज्ञान से संपन्न होने का

''अधिकार'' मानव को है। मानव जब उस अधिकार का प्रयोग करता है, सहअस्तित्व की प्रगटनशीलता को समझता है, तो उसके प्रमाण में सहअस्तित्व में जीता है।

**प्रश्नः ''गरीबी-अमीरी में संतुलन'' से क्या अर्थ है?**

**उत्तरः** गरीबी-अमीरी में संतुलन समाधान, समृद्धि पूर्वक जीने वाली परिवार मूलक विधि से होता है। समझदारी से समाधान होता है। श्रम से समृद्धि होती है।

**प्रश्नः अध्ययन के साथ ''अनुकरण'' की क्या भूमिका है?**

**उत्तरः** प्रौढ़ व्यक्तियों को अनुकरण करने को कम कहा है। बच्चों के लिए ज्यादा कहा है। एक आयु के बाद व्यक्ति अपने को समझा हुआ मान लेता है। ऐसे व्यक्ति को समझाने के लिए यह मान कर चलते हैं ''थोड़ा समझाने के बाद वे विचार पूर्वक समझ जायेंगे''। उनका ''सम्मान'' यही है। यही ''गंभीरता'' भी है। ''न्याय'' भी यही है।

बच्चों में अपने अभिभावकों का अनुकरण की बात सर्वाधिक है। भाषा का अनुकरण बच्चे करते ही हैं। कार्य, व्यवहार और रहन-सहन का अनुकरण बच्चे करते ही हैं। अभी की स्थिति में ''समझदारी'' को लेकर अभिभावक अनुकरणीय नहीं बन पा रहे हैं। अभिभावकों को स्वयं समझदारी का पता नहीं है तो बच्चों को क्या अनुकरण करायेंगे। इसकी पूर्ति के लिए अभिभावकों को समझदार होना ही पड़ेगा।

किसका अनुकरण किया जाए? इसका उत्तर है ''मानवीयतापूर्ण आचरण'' को प्रमाणित करने वाले व्यक्ति का (समाधान समृद्धि पूर्वक जीते हुए व्यक्ति का) का अनुकरण किया जाए।

कब तक अनुकरण किया जाए?

इसका उत्तर है पूरा समझने तक, पूरा हृदयंगम होने तक, पूरा प्रमाणित होने तक। ऐसे अनुकरण करने से अध्ययन में मदद मिलती है।

अनुकरण करने का मतलब है ''मजबूरन'' कुछ करना नहीं है। ''सही'' को हम सहमति पूर्वक स्वीकार के अनुकरण कर सकते हैं। यदि हम ''अपराध'' के लिए सहमत हो कर उसका अनुकरण कर सकते हैं, तो ''सही'' के लिए सहमत हो कर अनुकरण करने में क्या तकलीफ है?

**प्रश्नः समझने के लिए सुगमता का ''आयु'' से कोई संबंध है?**

**उत्तरः** मेरे सर्वेक्षण के अनुसार जागृति आगे की पीढ़ी (बच्चे) के लिए बहुत सुगम है। युवा पीढ़ी को उसकी तुलना में थोड़ा मुश्किल है। प्रौढ़ पीढ़ी को काफी तकलीफ है। वृद्ध पीढ़ी को महा-तकलीफ है। किसी आयु के बाद हम अपने को समझदार ''मान'' लेते हैं इसलिए यह तकलीफ है।

(अक्टूबर 2009, हैदराबाद)

## विकल्पात्मक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान का शिक्षा में समावेश

मेरे बंधुओं!

मैं स्वयं को आप सभी के बीच पा करके सुख का अनुभव कर रहा हूँ। बहुत दूर-दूर से आप आए हैं। बहुत ध्यान लगा कर एक दूसरे की बात समझ रहे हैं। कहीं न कहीं अन्तिम निष्कर्ष निकलेगा ही, ऐसा विश्वास करके मैं उत्सवित हूँ।

विकल्पात्मक अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान शिक्षा में किस प्रकार पहुँचेगा? उसको सुनने के लिए यहाँ इच्छा व्यक्त किया गया है। आप सब बहुत जिज्ञासा से इस बात को सुनना चाह रहे हैं, ऐसा मेरा स्वीकृति है।

मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह से परखा हूँ, किसी आयु के बाद हर व्यक्ति चाहे नर हो या नारी हो अपने आप को ''समझदार'' मानता ही है। अभी तक की सोच से कुछ ऐसा निकलता है ''पैसा पैदा कर सकने वाला समझदार है। पैसा पैदा नहीं कर सकने वाला समझदार नहीं है।'' इसके पहले ''बलशाली'' को समझदार मानते रहे। उसके पहले ''रूपवान'' को समझदार मानते रहे। ''बल'' और ''रूप'' के आधार पर समझदारी को पहचानने की कोशिशों को आदमी नकार चुका है। लेकिन ज्यादा ''धन'' और ''पद'' अर्जन करने वाले को ज्यादा समझदार आज भी मानते रहे हैं। ''धन'' और ''पद'' एक दूसरे के पूरक हो गए। पद से धन और धन से पद मिलने की बात हो गयी। रूप, बल, पद और धन के आधार पर हम समझदारी को पहचान नहीं पायेंगे। यह हमारा निष्कर्ष निकला। मानव चेतना पूर्वक जीना समझदारी है यह निष्कर्ष निकला।

मानव चेतना को मानव परम्परा में लाने के लिए मैंने शिक्षा विधि को शोध किया। शिक्षाविदों को समझाने का कोशिश किया। वह कोशिश होते-होते आज छत्तीसगढ़ राज्य शिक्षा संस्थान इस प्रस्ताव को अध्ययन करने के लिए तैयार हो गया। वह बुद्धि, समय और

साधन लगा कर अध्ययन कर रहा है। यह आपको सूचना देना चाहा।

इस अध्ययन की क्या वस्तु है?

इस अनुसंधान के फलस्वरूप ''मानव व्यवहार दर्शन'' नामक पुस्तिका तैयार हुआ जिसको ''शोध ग्रन्थ'' भी कह सकते हैं। मानव व्यवहार दर्शन में मानव चेतना विधि से व्यवहार का क्या स्वरूप होता है? न्याय का क्या स्वरूप होता है? इसका वर्णन है। उसको अध्ययन कराते हैं। ''मानव व्यवहार दर्शन'' में मानव के कर्तव्य और दायित्व को तय किया। मानव का कर्तव्य और दायित्व तय होना जरूरी है या नहीं है इस पर आप ही निर्णय लीजिये। यह निर्णय लेना हर व्यक्ति का अधिकार है।

''मानव कर्म दर्शन'' में मानव के करने-योग्य और न करने-योग्य कर्मों का विभाजन होता है। इसकी भी आवश्यकता या अनावश्यकता पर आप अच्छे से विचार कर सकते हैं। यदि यह हमारी आवश्यकता बनता है तो उसके लिए हम तत्पर हो ही जाते हैं। जिसकी आवश्यकता हम स्वीकार नहीं करते, उसके लिए हम तत्पर नहीं हो पाते हैं।

''मानव अभ्यास दर्शन'' में व्यवहार और व्यवसाय में अभ्यास कैसे करेंगे इसका निर्धारण किया गया है।

''अनुभव दर्शन'' में प्रमाणित होने के अधिकार को ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट किया गया है।

इन चारों भागों की आवश्यकता है या नहीं है इसको सभी परिशीलन कर सकते हैं, समझ सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं।

दर्शन के बाद आता है ''वाद''। वाद में चारों अवस्थाओं के साथ कैसे हम जी पायेंगे यह वर्णन किया है।

पहला समाधानात्मक भौतिकवाद। भौतिक वस्तुएं कैसे समाधान के अर्थ में काम कर रहे हैं, इसका बोध कराते हैं।

दूसरा व्यवहारात्मक जनवाद। मानव व्यवहार में जागृति को कैसे प्रमाणित करता है, इसका बोध कराते हैं। मानव का व्यवहार मानव के साथ न्याय, धर्म और सत्य पूर्वक होता है। मानव का व्यवहार मानवेत्तर प्रकृति के साथ नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक होता है। इसको स्पष्ट किया है।

अनुभवात्मक अध्यात्मवाद में अध्यात्म (व्यापक) में समाई सम्पूर्ण जड़ चैतन्य प्रकृति का हमको अनुभव होता है। फलस्वरूप मानव सहअस्तित्व में सहअस्तित्व को प्रमाणित करने वाला हो जाता है। पदार्थ न हो, केवल व्यापक वस्तु हो उसका कोई अनुभव नहीं है। केवल पदार्थ हो, व्यापक न हो तब भी मानव के अनुभव करने का कोई रास्ता नहीं है।

अनुभव के लिए प्रकृति और व्यापक वस्तु साथ-साथ में होना आवश्यक है। ज्ञान अवस्था की प्रकृति ही व्यापक वस्तु को अनुभव करता है। फलस्वरूप परम सत्य को प्रमाणित करता है। इसको मैंने अनुभव किया है। उसी अनुभव के आधार पर ही पूरे बात को प्रस्तुत किया है।

उसके बाद आते हैं ''शास्त्र''। शास्त्र में पहला है मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान। ''चेतना'' का मतलब है ज्ञान। ''संचेतना'' का मतलब है सत्य को प्रगट करने वाला ज्ञान। मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान में मानवीयता पूर्वक प्रमाणित होने वाले 122 आचरणों को बताया गया है। इन आचरणों के आधार पर मानव व्यवस्था में जी पाता है।

व्यवहारवादी समाजशास्त्र में मानव संचेतना के व्यवहार में प्रमाणित होने की बात है।

आवर्तनशील अर्थशास्त्र में उत्पादन के लिए नियोजित होने वाले प्राकृतिक ऐश्वर्य के स्त्रोत को बनाए रखते हुए उत्पादन और विनिमय व्यवस्था के स्वरूप को बताया गया है।

इन सब की आवश्यकता है या नहीं इसको आप शोध कर सकते हैं, समझ सकते हैं, स्वीकार सकते हैं, नकार भी सकते हैं। जो आपकी ''इच्छा'' हो आप वही करिए। आप यही स्वीकारो ऐसा मेरा कोई ''आग्रह'' नहीं है। किंतु है ऐसा ही! ऐसा बताने की ''धृष्टता'' कर रहे हैं। या ''साहस'' कर रहे हैं। या ''अनुग्रह'' कर रहे हैं। इन तीन में से जो आप स्वीकारें वही ठीक है।

इस ढंग से दर्शन, वाद और शास्त्र का प्रयोजन स्पष्ट हुआ। अभी तक हमारे साथ जितने भी लोग अध्ययन किए हैं इसकी अत्यन्त आवश्यकता है, ऐसा मान कर स्वीकारे हैं। आगे यहाँ कैसे होगा और जगहों पर कैसे होगा, धरती पर और राज्यों पर कैसा होगा इसको आगे भविष्य बतायेगा।

मानव संचेतना पूर्वक मानव मानव के साथ न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक प्रगट होता है और मानवेत्तर प्रकृति के साथ नियम नियंत्रण, संतुलन, पूर्वक प्रगट होता है। नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म और सत्य इन 6 भागों में हर समझदार व्यक्ति प्रगट होता है। इसमें कोई

''झगड़ा'' करने की जगह है या नहीं इसको हर व्यक्ति शोध कर सकता है, हर व्यक्ति समझ सकता है, हर व्यक्ति जी सकता है, हर व्यक्ति प्रमाणित हो सकता है। यह ऐसा ''इच्छा'' होने पर ही सम्भव है। जीव चेतना में ही जिसके जीने की इच्छा हो तो वह इस बात पर ध्यान भी नहीं देगा, इसको करेगा भी नहीं। ''इच्छा'' हो तो हर व्यक्ति इस प्रस्ताव को समझ कर, जी कर प्रमाणित कर सकते हैं। ''इच्छा'' हो तो आप इसको देख सकते हैं, अध्ययन कर सकते हैं। मेरी स्वीकृति है यहाँ हम जितने भी लोग हैं, वे समझने के अर्थ में ही एकत्र हुए हैं, समझा हुआ को प्रगट करने के अर्थ में ही एकत्र हुए हैं।

इस प्रकार दर्शन, विचार और शास्त्र जो तैयार हुए उसको शिक्षा में देने का स्वरूप दिया ''चेतना विकास मूल्य शिक्षा''।

दर्शन, विचार, शास्त्र के साथ ''मानवीय आचार संहिता स्वरूपी संविधान'' लिख कर दिया। ''मानवीयतापूर्ण आचरण'' के स्वरूप के आधार पर यह संविधान लिखा। उसको भी आप लोग देख सकते हैं।

शिक्षा में इस विकल्पात्मक प्रस्ताव के ''अध्ययन'' की बात रहेगी।

अध्ययन का मतलब है अधिष्ठान के साक्षी में, अर्थात् अनुभव के साक्षी में स्मरण पूर्वक हम जो कुछ भी क्रिया करते हैं वह सब का सब अध्ययन है।

अनुभव कहाँ रहता है? अध्ययन कराने वाले के पास रहता है। अध्ययन कराने वाले के अनुभव की रौशनी में हम जो कुछ भी सोचते हैं, समझते हैं, स्वीकारते हैं वह सब का सब अध्ययन है।

अध्ययन कैसे कराते हैं?

यहाँ जितने भी लोग बैठे हैं, सभी को ''पठन'' करना आता है ऐसा मैं मानता हूँ। पठन भर करने से काम नहीं चलता है। अध्ययन करना जरूरी है। अध्ययन के लिए प्रस्तावित किया है हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। अस्तित्व में वस्तु को हम समझ लेते हैं, तो हमने अध्ययन किया। वस्तु का साक्षात्कार होने से हम अध्ययन किया। यदि वस्तु का साक्षात्कार नहीं हुआ मतलब हमने अध्ययन नहीं किया। यह बात स्पष्ट हुआ। इस प्रकार हमने अध्ययन किया या नहीं किया उसको हर दिन हम सोच सकते हैं, समझ सकते हैं, स्वीकार सकते हैं, प्रमाणित कर सकते हैं।

यह कैसे होता है? कहाँ पर होता है? इसका उत्तर है यह कल्पनाशीलता से होता है। हर

व्यक्ति में बच्चे से बूढ़े में कल्पनाशीलता समाई है। कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता के योगफल में ''तदाकार तद्‌रूप विधि'' आती है। तदाकार तद्‌रूप विधि से मानव द्वारा अस्तित्व में वस्तु को पहचानना बनता है। तदाकार विधि से मानव में वस्तु की पहचान होती है। तद्‌रूप विधि से मानव प्रमाणित होता है। तद्‌रूप विधि से प्रमाण आत्मा (गठनपूर्ण परमाणु का मध्यांश) में अनुभव होने के बाद है। इस विधि से अध्ययन कराते हैं।

छत्तीसगढ़ में राज्य शिक्षा के अधिकारियों और अध्यापकों के साथ हम एक कार्य गोष्ठी किए। उस कार्य गोष्ठी का मूल मुद्दा था ''वेतन भोगी क्या वास्तविक रूप में प्रमाणित हो सकता है या नहीं?'' इसका उत्तर मैंने दिया वेतन भोगी ''प्रमाण'' नहीं हो सकता। वेतन भोगी दूसरा वेतन भोगी को ही तैयार करेगा दूसरा कुछ भी नहीं करेगा। प्रमाणित व्यक्ति ही प्रमाणित व्यक्ति को तैयार करेगा। वेतन भोगी ''प्रेरक'' हो सकता है।

मध्यस्थ दर्शन के वाङ्गमय के मूल प्रबंधों (दर्शन, वाद, शास्त्र) को स्नातक कक्षा में पढ़ाने का सोचा जा रहा है। उसके पहले दसवीं कक्षा तक पाठ्य-पुस्तकों को तैयार किया जा रहा है। कक्षा-1 से कक्षा-5 तक की पाठ्य पुस्तकों को तैयार करके राज्य शिक्षा को दे दिया है जिसको वे छपवाने के काम में लगे हैं। अगले वर्ष तक वह प्रभावशील हो जायेगी। इस ढंग से इस प्रस्ताव को शिक्षा में समावेश करने की एक प्रक्रिया चल रही है, अध्ययन चल रहा है, कार्य चल रहा है, प्रयत्न चल रहा है।

यह तो बच्चों तक इस बात को पहुँचाने की बात थी। अब सवाल आता है बड़े-बुजुर्गों का क्या करोगे? उनको भी तो इस शिक्षा की जरूरत है। उसका उत्तर है ''लोक शिक्षा''। इस पूरी बात को ''लोक शिक्षा'' विधि से हम बड़े-बुजुर्गों को विदित करायेंगे। विदित कराने का कार्यक्रम अभी शुरू नहीं किए हैं। वह एक आवश्यकता है।

**प्रश्नः इस ज्ञान के अर्थ में शिक्षा कब तक सम्भव हो पायेगी?**

**उत्तरः** समझने पर सम्भव हो पायेगी। ज्ञान के आधार पर हमको जीना है या नहीं जीना है उसको तय करिए। जीव चेतना में समस्या पूर्वक जीना होता है। मानव चेतना में समाधान पूर्वक जीना होता है। आपको कैसे जीना है? आप सोचिये। जीव चेतना में समस्या के अलावा कुछ होता नहीं। मानव चेतना में समाधान के अलावा कुछ होता नहीं। जो करना है, वही करिए।

धरती का बीमार होना मानव की करतूत से हुआ या और कोई भूत किया? इसको भी सोचिये। यदि आपको यह स्वीकार होता है यह मानव ने किया तो आप यह भी स्वीकार सकते

हैं कि मानव ने जीव चेतना वश यह अपराध किया। इस बात को स्वीकारना या नहीं स्वीकारना आपके हाथ में है। इसमें मेरा कोई ''आग्रह'' नहीं है। जैसा आपका विचार हो वैसा ही करिए।

''कब तक, कितनी देर में समझेंगे'' वाली बात के उत्तर में यह सब सकल कुकर्म करने में जिसमें धरती को बरबाद किया, उसमें इतना दिन लगा है। अब इस प्रस्ताव को पूरी शिक्षा में समावेश होने में भी कुछ समय तो लगेगा।

**प्रश्नः ''अध्ययन'' और ''अध्यापन'' को समझाइये।**

**उत्तरः** अध्ययन और अध्यापन संयुक्त रूप में होता है। अध्ययन करने वाले और अध्यापन कराने वाले के योग में अध्ययन होता है। (अध्यापक के) अनुभव की रौशनी में विद्यार्थी जितनी भी समझने की प्रक्रिया करते हैं उसका नाम है ''अध्ययन''। उसके समर्थन में बताया हर शब्द का अर्थ होता है। अर्थ के स्वरूप में अस्तित्व में वस्तु होता है। वस्तु का साक्षात्कार होने से हम अध्ययन किए।

अध्ययन ''तदाकार विधि'' से होता है। तदाकार कैसे होता है? हर व्यक्ति के पास कल्पनाशीलता और कर्मस्वतंत्रता स्वत्व के रूप में रखा है। आज पैदा होने वाले बच्चे में भी, कल मरने वाले वृद्ध में भी। कल्पनाशीलता के प्रयोग से तदाकार होता है। चाहे जीव चेतना में चोरी-डकैती का काम सिखाना हो वह भी तदाकार विधि से सम्भव होता है। मानव चेतना का न्याय, धर्म, सत्य समझाना हो वह भी तदाकार विधि से सम्भव होता है।

**प्रश्नः अध्यापक में क्या योग्यताएं आवश्यक हैं?**

**उत्तरः** अध्यापक समझा हुआ और समझदारी को प्रमाणित किया हुआ व्यक्ति होता है। समझदारी को मानव चेतना विधि से प्रमाणित करता है। ऐसा व्यक्ति हर मानव संतान को स्वीकार होता है। समझदारी से कम में कोई ''अध्यापक'' होता नहीं है। उससे पहले होता है वही समस्या पैदा करने वाला। जीव चेतना में जीने वाला अध्यापक समस्या के लिए ही आधार बनेगा, दूसरा कुछ भी नहीं। मानव चेतना में जीने वाला अध्यापक समाधान का ही आधार बनेगा, दूसरा कुछ भी नहीं। जो आपकी इच्छा हो वही करिए।

**प्रश्नः अध्यापक की भौतिक रासायनिक आवश्यकताएं कैसे पूरी होंगी?**

**उत्तरः** समाधान पूर्वक जीने के क्रम में ''समृद्धि'' का उपाय निकलता है। मैं एक सामान्य परिवार का आदमी हूँ। मैं जब समाधान पा गया तो मुझसे समृद्धि का उपाय निकल

गया। कृषि करता हूँ, गो पालन करता हूँ, आयुर्वेद को मैं जानता हूँ, सामान्य औषधियों को पहचानता हूँ उसके आधार पर चिकित्सा करता हूँ। इन तीन कामों को मैं करता हूँ। इनके चलते मेरा कोई काम रुका नहीं है। मैं हर जगह अपने हाथ पैरों से पहुँचता हूँ। मैं पराधीन नहीं हूँ।

भौतिक वस्तुओं के प्रयोजन को मैं इस तरह पहचाना हूँ परिवार में जितने भी लोग रहते हैं, उनके शरीरों का पोषण और संरक्षण (घर-बार) और उसके साथ 'समाज गति' में भागीदारी करने के लिए भौतिक साधनों की आवश्यकता होती है। समझदारी पूर्वक इस आवश्यकता का निश्चयन होता है। उस ''निश्चित आवश्यकता'' से अधिक उत्पादन कर लेने से मैं समृद्धि का अनुभव करता हूँ।

अभी पैसा इकट्ठा करके आदमी क्या करता है, आप सब लोग वह जानते ही हैं। कुल मिला कर ''भोग'' और ''संघर्ष'' के लिए पैसा इकट्ठा करता है। ''स्वस्थ रहना चाहिए'' इस बात को अभी के समय में कहा जाता है। स्वस्थ क्यों रहना है? इसका उत्तर तलाशने जाते हैं तो वही है ''भोग'' के लिए स्वस्थ रहना है, या ''संघर्ष'' के लिए स्वस्थ रहना है।

भोग और संघर्ष के लिए ''पैसा इकट्ठा करना'' और ''स्वस्थ रहना'' सही है या ''शरीर पोषण, संरक्षण, समाज गति के लिए श्रम पूर्वक उत्पादन करना'' और ''समाधानित रहना'' सही है? आप ही सोचिये! आप सोच कर अपने आप निर्णय लीजिये।

**प्रश्न: समझदारी को प्रमाणित कौन करेगा? समाज या व्यक्ति?**

**उत्तर:** समझदारी के बाद हर व्यक्ति परिवार के रूप में ''संस्कृति'' और ''सभ्यता'' को वहन करता है; तथा सभा के रूप में ''विधि'' और ''व्यवस्था'' को वहन करता है। उसी के आधार पर ''परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था'' का प्रगटन है। ''समझदार परिवार'' मानवीय सभ्यता और संस्कृति का वहन करता है। ''समझदार परिवार सभा'' मानवीय विधि और व्यवस्था का वहन करता है।

परिवार ही पूरा प्रमाण का आधार है।

परिवार में प्रमाणित होने के बाद ही हम संसार में प्रमाणित होते हैं। इस तरह प्रमाणित होना हर समझदार व्यक्ति का माद्दा है, अधिकार है, प्रवृत्ति है।

**प्रश्न: अभी इतनी गरीबी, सामाजिक असंतुलन के बीच खड़ा आदमी ''स्वावलंबन'' के बारे में कैसे काम करे?**

**उत्तर:** आपकी बात को स्वीकारा जा सकता है। यह स्थिति व्यक्ति के साथ कब तक रहेगा? इसका उत्तर है जब तक समझदार नहीं बनेगा, तब तक रहेगा। समझदार होने के बाद स्वावलंबी होने के लिए अपने आप जगह बनता है। मैंने आपको अपना उदाहरण बताया था। मैं कोई बहुत धनाढ्य व्यक्ति नहीं हूँ। भक्ति विरक्ति विधि से मैंने साधना किया। भक्ति विरक्ति में कोई संग्रह होता नहीं है। समाधान संपन्न होने के बाद मैंने तीन उपायों (कृषि, गौ पालन और आयुर्वेद चिकित्सा) को समृद्धि के लिए अपनाया। इन तीन के अलावा तीस और उपाय मेरे पास हैं, जिनको मैं क्रियान्वयन कर सकता हूँ। समाधान के बाद समृद्धि संपन्न होने का उपाय निकाल लेना हर व्यक्ति के माद्दे की बात है। बिना ''समझ'' के किसी के पास न साधन अनुकूल होता है, न परिस्थितियाँ। समझ या समाधान के बाद सारी परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं, जितना साधन होता है वह आवश्यकता से अधिक होता है।

श्रमशीलता हमारा प्रधान साधन है। अभी पैसे को ''प्रधान साधन'' मान रहे हैं। उसके स्थान पर यहाँ कह रहे हैं हमारी श्रमशीलता ही हमारा प्रधान साधन है। श्रम शीलता सबके पास है। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो श्रमशीलता से रिक्त हो। गूंगे, लूले, लंगड़े सभी के पास श्रमशीलता रहता है।

देखिये ''बातें करने'' से कुछ नहीं होता। ''जीने'' से होता है। बातें हम बहुत ज्यादा कर सकते हैं उससे कोई फायदा नहीं है। ''जीने'' से फायदा है। ''जीना'' समाधान के बिना होता नहीं! समाधान के बिना कोई ''जी'' ही नहीं सकता! यह मैंने देख लिया। अपराध कोई ''जीना'' नहीं है। अनर्थ कोई ''जीना'' नहीं है। झूठ बोलना कोई ''जीना'' नहीं है।

समाधान पूर्वक ''जीना'' है।

समृद्धि पूर्वक ''जीना'' है।

न्याय, धर्म, सत्य पूर्वक ''जीना'' है।

नियम नियंत्रण, संतुलन, पूर्वक ''जीना'' है।

ऐसे जीने के लिए समझना ही पड़ेगा। मैंने समझने में 25-30 वर्ष लगाए। आप इसको समझने के लिए 25 हफ्ते तो लगाइए! 25 महीने तो लगाइए! 25 महीना तो आप लगा सकते हैं न? यदि लगायेंगे तो आप समझ जायेंगे। समझाने की व्यवस्था हमने कर दिया है।

**प्रश्न: ''मोक्ष'' क्या है?**

**उत्तर:** भ्रम मुक्ति ही मोक्ष है। भ्रम मूलत: शरीर को जीवन मानना है। शरीर को जीवन मानने वाला जीवन ही है। जीवन ही जीवंत शरीर में होने वाली संवेदनाओं के आधार पर ऐसा मान बैठता है। फलस्वरूप दु:ख भोगता है। शरीर को जीवन मान लेना ही ''भ्रम'' है। भ्रम से मुक्त होना ही ''मोक्ष'' है। भ्रम मुक्ति = अतिव्याप्ति, अनाव्यप्ति, अव्याप्ति दोषों से मुक्त होना।

सबको धन्यवाद! शुभाशीष! प्रणाम! और नमन!

(2 अक्टूबर 2009, हैदराबाद)

# ग्रंथ

**''अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन''**
**बनाम**
**''मध्यस्थ दर्शन सहअस्तित्ववाद''**

## दर्शन (मध्यस्थ दर्शन)

- ★ मानव व्यवहार दर्शन
- ★ मानव कर्म दर्शन
- ★ मानव अभ्यास दर्शन
- ★ मानव अनुभव दर्शन

## वाद (सहअस्तित्ववाद)

- ★ व्यवहारात्मक जनवाद
- ★ समाधानात्मक भौतिकवाद
- ★ अनुभवात्मक अध्यात्मवाद

## शास्त्र (अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन)

- ★ व्यवहारवादी समाजशास्त्र
- ★ आवर्तनशील अर्थशास्त्र
- ★ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

## संविधान

- ★ मानवीय आचार संहिता रूपी मानवीय संविधान सूत्र व्याख्या

## परिभाषा

- ★ परिभाषा संहिता

## अन्य

- ★ विकल्प
- ★ अध्ययन बिंदु
- ★ आरोग्य शतक
- ★ जीवन विद्या योजना
- ★ मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना
- ★ परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना

**:: मध्यस्थ दर्शन आधारित उपयोगी संकलन ::**

**परिचयात्मक संकलन**

★ जीवन विद्या एक परिचय

**सहयोगी संकलन**

★ संवाद - भाग-1

★ संवाद - भाग-2

**पुस्तक प्राप्ति संपर्क एवं निःशुल्क PDF डाउनलोड के लिए**

Website : www.madhyasth-darshan.info

Email. : books@madhyasth-darshan.info